GP - 06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

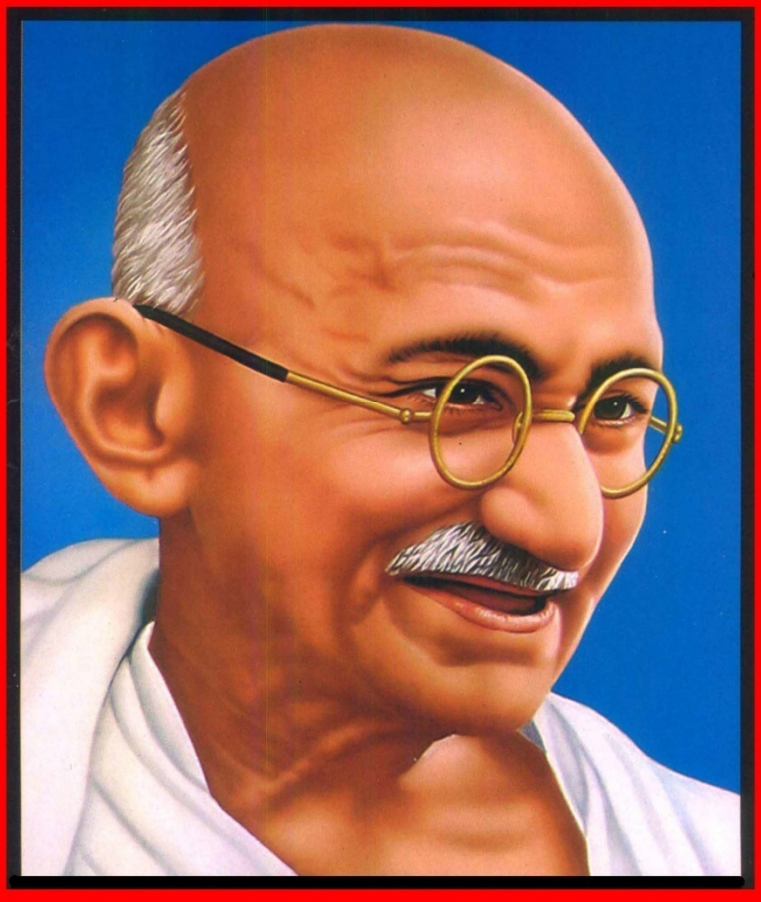

गाँधी एवं समकालीन विश्व

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी एवं समकालीन विश्व

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
निवृत्तिमान कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ.) एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. के.एस. भारती
विभागाध्यक्ष(गांधी एवं विचार) टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

प्रो. एन. राधाकृष्णन्
पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. आर.एस. यादव
विभागाध्यक्ष(राजनीतिक विज्ञान) एवं निदेशक, गांधी अध्ययन केन्द्र
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. पी. मोटियानी
शांति एवं संदर्भ निवारण विभाग गुजरात विद्यापीठ,अहमदाबाद गुजरात

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई संख्या	इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. बी. अरुण कुमार सह आचार्य,राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	1,2,3,4	**डॉ. राधाकृष्ण** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, साभरलेख	9
डॉ. प्रेम आनन्द मिश्रा सहायक आचार्य, शान्ति शोध संस्थान गुजरात विद्यापीठ,अहमदाबाद	5	**डॉ. एल.आर. गुर्जर** सह आचार्य, राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	10
डॉ. पंकज गुप्ता व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एल.बी.एस. राजकीय महाविद्यालय, कोटपुतली	6	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया** आचार्य(सेवानिवृत्त) वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	12,13
डॉ. हुकमा राम सुथार व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, बाड़मेर	7	**प्रो. एन. राधाकृष्णन्** पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति राजघाट, नई दिल्ली	14
डॉ. राजेश शर्मा सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	8	**डॉ. संतोष बकाया** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एस.एस.जे. राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर	
डॉ. फूल सिंह गुर्जर व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़	9		
प्रो. प्रदीप सुहानी अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, मंडसौर, मध्य प्रदेश	10		

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) विनय पाठक	**प्रो. (डॉ.) बी.के. शर्मा**	**प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	निदेशक,क्षेत्रीय सेवाएं
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रैल 2013 ISBN - 13/978-81-8496-378-6

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

गाँधी एवं समकालीन विश्व

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता	6–18
इकाई - 2	भूमण्डलीकरण एवं गाँधी	19–32
इकाई - 3	आतंकवाद की समस्या एवं गाँधी	33–41
इकाई - 4	मानवाधिकार तथा गाँधी	42–54
इकाई - 5	स्वतन्त्रता, अधिकार एवं कर्तव्य और गाँधी	55–63
इकाई - 6	समानता पर गाँधी के विचार	64–82
इकाई - 7	गाँधी एवं सामाजिक न्याय	83–105
इकाई - 8	गाँधी एवं नारी विमर्श	106–120
इकाई - 9	गाँधी और साम्प्रदायिक सद्भाव	121–130
इकाई - 10	भ्रष्टाचार की समस्या और गांधी	131–141
इकाई - 11	गांधी एवं राष्ट्रीय एकीकरण	142–160
इकाई - 12	विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं गाँधीवादी दृष्टिकोण	161–178
इकाई - 13	ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और गाँधी	179–189
इकाई - 14	स्थिर विकास एवं पर्यावरण और गाँधी	190–204
इकाई - 15	अहिंसात्मक संघर्ष निवारण एवं गाँधी	205–215

इकाई 1

गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समकालीन विश्व की समस्याएं

1.3 आधुनिक संसार के लिए गाँधीवाद का अर्थ

1.4 गाँधीजी के शब्दों में

1.5 वैश्विक समस्याएं और गाँधीवादी समाधान

- 1.5.1 मनुष्य का आत्मबल
- 1.5.2 अहिंसा का अमोघ अस्त्र
- 1.5.3 गाँधीवादी आर्थिक सिद्धान्त
- 1.5.4 वैज्ञानिक मशीनीकरण और गाँधी
- 1.5.5 पर्यावरणीय चुनौतियां और गाँधी
- 1.5.6 राष्ट्रों का आपसी अविश्वास
- 1.5.7 सत्याग्रह और गाँधी
- 1.5.8 वसुधैव कुटुम्बकम
- 1.5.9 गाँधी और उनके सिद्धान्तों का सिनेमा में चित्रांकन
- 1.5.10 महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार और दिवस
- 1.5.11 गाँधी की विचारधारा पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव
- 1.5.12 अन्तराष्ट्रीय व्यक्तित्व और गाँधी

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- वैश्विक समस्याओं के बारे में जान सकेंगे।
- गाँधीवाद को समझ सकेंगे।
- महात्मा गाँधी के विचारों की वैश्विक प्रासंगिकता की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

बिना किसी प्रयास के गाँधीवादी दर्शन स्वतस्फूर्त भाव से पूरे विश्व में प्रसारित हो रहा है। महात्मा गाँधी की वैश्विक स्वीकार्यता तथा लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है। इसका कारण यह है कि विश्व की मौजूदा समस्याओं के समाधान के जितने भी तौर तरीके है, उनकी सीमाएं

तथा निस्सहायता बार बार, हो रही है। आज संसार जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, वह नानारूप लिये हुए है। जहाँ भ्रष्टाचार एवं शासन समस्याओं ने राजनीतिक क्षेत्र में दखल दिया है वहीं भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याएं आर्थिक क्षेत्र में गई है। अनैतिकता तथा हिंसा ने मानवीय मूल्यों तथा संवेदनाओं पर कुठाराघात किया है, वहीं जातीय संघर्षों ने मनुष्यों के सामाजिक सरोकारों को जकड़ने में कोई कसर नहीं छोडी है। ये समस्याएं केवल आज की नहीं है। 19वीं तथा 20 वीं शताब्दी से इनका अस्तित्व निरंतर बना हुआ है। आज वैज्ञानिक विकास तथा तकनीकी ज्ञान के कारण इन समस्याओं में और वृद्धि हुई है।

ऐसे में गाँधी की वैश्विक छवि और उनके दर्शन की उपयोगिता तथा प्रासंगिकता स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है। गाँधीवादी विचारों की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वे हमें अनिश्चय तथा निस्सहायता की स्थिति में भी प्रेरित करते है। वे हमें निर्भयता, आत्मशक्ति, आत्मोत्सर्ग की नैतिक शुचिता, शांति की सार्वभौमिकता तथा अंतिम रूप से उसकी जीत, सत्य और अहिंसा के साथ ही अंतिम रूप से मानव आत्मा की अजेयता की शिक्षा देते है।

1.2 समकालीन विश्व की समस्याएं

आज के दौर ने मानवता के सामने अनेक चुनौतियां खड़ी कर दी है। मनुष्यों के बदलते जीवन स्तर ने व्यापक रूप से हमारे नैतिक मूल्यों, दृष्टिकोण तथा विश्वास की जड़ो को खोखला करना शुरू कर दिया है। मनुष्य भौतिकवादी व्यवस्थाओं के इतना अधीन हो गया है कि मानवीय मूल्यों के अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है। भौतिकवाद ने मनुष्य को इतना जकड़ लिया है कि इस बंधन से बाहर आने का मार्ग भी दिखाई नहीं दे रहा है। विश्व समुदाय के सामने समस्याओं और चुनौतियों की एक ऐसी लम्बी फेहरिस्त है, जो मनुष्य को मनुष्यत्व से विलग करने का प्रयत्न कर रही है। वैश्विक आतंकवाद और जलवायु परिवर्तन जैसे खतरे विश्व समुदाय के लिए बहुत पुराने नहीं है किंतु इन खतरों का प्रभाव अत्यधिक व्यापक तथा दीर्घ है। साथ ही जातीय संघर्षों का विस्तार, पर्यावरण का हास, गरीबी, लिंग असमानता, बेरोजगारों की बढ़ती संख्या, पर्यावरण के ह्रास से उत्पन्न स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे, युद्ध, लोगों का विस्थापन, बार बार होने वाला ऊर्जा संकट आदि ऐसे संकट है जो विश्व के किसी एक देश के लिए नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय है अर्थात उपर्युक्त सभी समस्याएं वैश्विक चिंताएँ है।

समकालीन समय तथा समाज की ऐसी चुनौतिपूर्ण स्थिति ने मनुष्य के जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा नैतिक सभी पक्षों को अत्यधिक प्रभावित किया है। जैसे-जैसे मनुष्य प्रगति और विकास की ओर बढ रहा है, इन चुनौतियों का आवरण भी उतना ही विस्तृत होता ' रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति तथा व्यक्तिगत विकास की इच्छा ने मनुष्यों के पारस्परिक आत्मीय संबंधों पर कुठराघात किया है। हिंसा तथा आतंकवाद के इस दौर में मनुष्य शांति की लालसा तो अवश्य ही रखता है किंतु शांति प्राप्त करने के प्रयासों को लेकर दिग्भ्रमित है।

इस संकटों से भी अधिक समस्याजनक बात इन चुनौतियों के निपटने के तौर ' की सीमाएं है। प्रभाव असीमित हो सकते है किंतु उपायों की सीमा है और उसी सीमा में हमें

समाधान खोजने का भी करना चाहिये किंतु मनुष्य का आधिपत्यवादी दृष्टिकोण इन सीमाओं को समझने को तैयार नहीं है। तकनीकी क्षमताएं मनुष्यों को तथाकथित अजेयता का आभास करा रही है किंतु हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि सैकड़ों सीमाओं को खत्म कर देने पर भी आतंकवाद तथा प्रतिहिंसा के सहारे आतंकवाद को खत्म करके शांति को स्थापित नहीं किया जा सकता।

आज विश्व समुदाय के सामने इस बात का अत्यधिक दबाव है कि वह जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले कार्बन उत्सर्जन को सीमित करें। ऐसे साधन-संसाधनों का प्रयोग करें जो जलवायु परिवर्तन को भी कम कर सके, साथ ही जलवायु परिवर्तन से होने वाले दुष्प्रभावों को भी कम कर सके। लेकिन विश्व की बढ़ती आबादी और बढती आबादी की बढती इच्छाओं और लालसाओं के कारण विश्व के सीमित संसाधन विश्व समुदाय को जलवायु परिर्वतन से होने वाले दुष्प्रभावों से सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त नहीं है।

विश्व में विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार के संघर्ष हो रहे है। प्रतिदिन किसी न किसी रूप में मानवता शर्मसार हो रही है। सम्पूर्ण विश्व भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी चुनौतियों से सामना कर रहा है। गरीबी और भूख से प्रताड़ित व्यक्ति असहाय होकर कहीं न कहीं गलत मार्ग का चयन करने के लिए मजबूर हो रहा है। ऐसे में हिंसा को साधन के रूप में अपनाने से भी उसे कोई हिचकिचाहट नहीं हो रही है। छोटे तथा स्थानीय स्तर की हिंसा ही परिवर्तित होकर धीरे-धीरे आतंकवाद का रूप धारण कर लेती है। आतंकवादी गतिविधियों के संचालन में प्राकृतिक संसाधनों का हास तो हो ही रहा है, साथ ही मनुष्यों के बीच कभी न खत्म होने वाली कटुता भी जन्म ले रही है। जातीय संघर्ष इस हद सीमा तक बढ़ चुके है कि विश्व का कोई भी देश इन संघर्षों से अपने आप को मुक्त नहीं रख पा रहा है। इन संघर्षों का प्रभाव मनुष्यों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टिगोचर है। संकीर्ण मानसिकता के दायरे में मनुष्य छोटी-छोटी चुनौतियों का सामना करने में भी सक्षम नहीं हो रहा है जबकि खाद्य संकट, ऊर्जा संकट तथा मानवाधिकारों का उल्लंघन जैसी समस्याएं विश्व समुदाय के सामने सुरसा की तरह मुंह खोले खड़ी है।

आतंकवाद, ऊर्जा तथा खाद्य संकट, जलवायु परिवर्तन, गरीबी, भूख, बेरोजगारी, मानवाधिकार उल्लंघन, जातीय संघर्ष आदि इन सभी समस्याओं में कुछ बातें सामान्यत: अन्तर्निहित है। पहली बात जो इन सभी में सामान्य है वह यह है कि ये सभी वैश्विक चिंताएँ है। दूसरी बात यह है कि इन सभी समस्याओं के केन्द्रीय तत्व में मानव जाति है, फिर चाहे वह लक्ष्य के रूप में हो या कारण के रूप में। तीसरी महत्वपूर्ण बात है महात्मा गाँधी, क्योंकि इन सभी समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण एक बेहतर समाधान प्रस्तुत करता है। गाँधीजी के दृष्टिकोण का चाहे हम किसी भी रूप में विश्लेषण करें, हमें ज्ञात होगा कि सार रूप में उनका लक्ष्य सदैव मानव हित ही रहा है।

1.3 आधुनिक संसार के लिए गाँधीवाद का अर्थ

महात्मा गाँधी ने अपने नाम के साथ कभी भी किसी 'वाद' की स्थापना में विश्वास नहीं किया किंतु फिर भी उनकी विचारधारा से उत्पन्न अद्भुत प्रभावों ने उनकी विचारधारा को

'गाँधीवाद' नाम दे दिया। 20 वीं शताब्दी से ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं में सुधारों की बात चल रही है। कई संगठन तथा धाराएं इस दिशा में कार्य भी कर रही है किंतु कोई भी उपाय वैश्विक स्तर पर चिरस्थायी शांति स्थापित करने में सफल नहीं हो पाया। परिणामस्वरूप, इस वर्तमान शताब्दी में गाँधीवाद की प्रासंगिकता निर्विवाद बन गई है। गाँधीवाद का केन्द्रीय मूल्य अहिंसा है जिसका प्रथम और अंतिम उद्देश्य विश्व में शांति की स्थापना करना है वैश्विक शंकाओं तथा वाद-विवादों के इस युग में गाँधीवाद की सिर्फ प्रासंगिकता नहीं है बल्कि समस्याओं के समाधान के रूप में यह दर्शन एक अनिवार्य आवश्यकता भी बन गया है। मानव समाज की आधारभूत समस्याओं के लिए गाँधी आधारभूत समाधान प्रस्तुत करते है। गाँधीवाद मानवीय समस्याओं का हल प्रस्तुत करने के कम में एक शाश्वत सत्य है। इसलिए इन चुनौतियों का सामना तथा समस्याओं का निदान दोनों ही मनुष्य के ही उत्तरदायित्व है।

कुछ लोग इस बात का भी तर्क देते है कि आधुनिक समस्याओं को आधुनिक उपायों से भी हल किया जा सकता है, फिर गाँधीवादी तरीके में अलग क्या है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इन समस्याओं का आधुनिक हल भले ही मानव केन्द्रित हो किंतु ये समस्त उपाय मनुष्यों के बाहरी नियंत्रण पर केन्द्रित है जबकि गाँधीवादी उपाय मनुष्यों के आंतरिक परिवर्तन पर केन्द्रित है। गाँधीवादी तरीके से समस्या का दीर्घकालिक तथा स्थायी उपाय खोजा जा सकता है।

गाँधीवाद का सार तत्व है मानवीय आचरण तथा प्रकृति के सभी आयामों के बारे में गाँधी की गहरी समझ। गाँधी मनुष्यों के महान वैज्ञानिक थे। उचित नैतिक विकास का अभाव मनुष्य में कई कमियों को जन्म देता है लेकिन साथ ही भविष्य में सुधार की संभावनाओं को भी साथ लेकर चलता है। यदि मनुष्य अच्छे से बुरे की ओर फिसल सकता है तो बुरे से अच्छी दिशा की ओर बढ़ने की संभावना भी उतनी ही सशक्त है। व्यक्तियों के लिए नैतिक सुधार की ये संभावना ही गाँधी का मुख्य भरोसा है। उनके लिए सामाजिक पुनर्रचना का प्रारंभिक बिंदु व्यक्ति है।

1.4 गाँधीजी के शब्दों मे

महात्मा गाँधी ने 1942 में कहा- ' 'सर्वप्रमुख विचारणीय मनुष्य है और किसी भी मामले में अपेक्षित भी। अत: मानव समुदाय की प्रसन्नता और उसका पूरा मानसिक तथा नैतिक विकास होना चाहिये। मनुष्यों में आत्मज्ञान की मौलिक इच्छा का संतुलन समाज की सेवा करने की भावना से किया जाना चाहिये। "व्यक्तिवाद की निंदा करते हुए उन्होंने 1939 में कहा था कि - ' 'स्वछंद व्यक्तिवाद जंगली जानवरों के कानून जैसा है। " यद्यपि गाँधी सामाजिक समूहवाद के भी खिलाफ थे क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा उसके विकास का गला घोंट देता है। वास्तव में गाँधी समाज तथा व्यक्तियों के बीच पूर्ण एकीकरण के पक्षधर थे। उन्होंने 1946 मे सामाजिक एकीकरण के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा था - ' 'यह (भावी वैश्विक समाज) एक महासागरीय वृत की तरह होगा जिसके केन्द्र में ऐसा व्यक्ति होगा जो हमेशा अपने गाँव के हित में निजी प्राथमिकताओं को समाप्त करने को तैयार होगा और वे गाँव अपने आसपास के गाँवों के समूह की प्राथमिकताओं को सर्वोपरि रखने को तत्पर होंगे और यह काम इसी तरह से वृहत्तर इकाईयों की ओर बढता जायेगा जब तक कि पूरा समुच्चय एक

ऐसी सजीव इकाई के रूप में न स्थापित हो जाए जिसका संघटन व्यक्तियों से हुआ होगा। जो कभी अपनी अहम्मन्यता में आक्रामक नहीं होंगे बल्कि विनम्रता से उस महासागरीय घेरे की महत्ता में हिस्सेदार तथा अविभाज्य अंग होंगे। नैतिक व्यक्ति, नैतिक समाज की गाँधी की धारणा जातीय संघर्षों को हल करने के दिशा एक सफल संकेत देती हैं।

1.5 वैश्विक समस्याएं तथा गाँधीवादी समाधान

गाँधीवादी व्यवहार तथा दर्शन में विश्व की समस्याओं का समाधान निहित है। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि गाँधीजी द्वारा सुझाए गए मूल्यों तथा मार्गो को अपनाया जाए, वह भी सत्य तथा ईमानदारी के साथ। यद्यपि वैश्विक स्तर पर हो रहे कुछ नकारात्मक विकास गाँधीवादी सिद्धान्तों के लागू होना में गंभीर बाधा डालते है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में भी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे है। देशों के बीच हथियारों की होड और पूंजीवादी मानसिकता समाज में अराजकता तथा असमानता उत्पन्न कर रही है। तथापि यह भी निश्चित है कि वैश्विक व्यवस्था को बनाने तथा शांति के मुद्दे को सुलझाने के प्रतिमान के रूप में विश्व के सामने गाँधीवाद की वैश्विक प्रासंगिकता को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

1.5.1 मनुष्य का आत्मबल

महात्मा गाँधी ने मानव जीवन के बारे में एक समेकित अवधारणा प्रस्तुत की है। इस अवधारणा के अनुसार व्यक्ति न केवल अपने आप में पूर्णरूप से संगठित होगा बल्कि वह अपने आस पास के वातावरण से भी एकाकार होगा। गाँधी के अनुसार कोई भी सामाजिक परिवर्तन तभी संभव तथा दीर्घकालिक हो सकता है जब मनुष्य में आंतरिक बदलाव हो। उन्होंने पाया कि समाज का आधार शांति तथा प्रेम है ना कि हिंसा। हिंसा और घृणा पर आधारित कोई भी समाज दीर्घजीवी नहीं हो सकता। गाँधी के अनुसार यह विश्व यदि निरंतर अस्तित्वमान है तो इसका कारण किसी भी प्रकार का शारीरिक बल नहीं है, बल्कि सत्य, दया तथा आत्मा की शक्ति पर आधारित बल की महत्ता ही मानव समाज को चलायमान बनाए हुए है।

1.5.2 अहिंसा का अमोघ अस्त्र

विविध प्रकार के संघर्षों, हिंसा तथा आतंकवाद से पीड़ित आधुनिक समाज के लिए गाँधी के विचारों की क्या प्रासंगिकता है? क्या हम बल प्रयोग करके इन समस्याओं से खुद को मुक्ति दिला सकते है? मानवता का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनमें बल और हिंसा का प्रयोग किए जाने पर और ज्यादा प्रतिहिंसा तथा घृणा ने जन्म लिया। बल प्रयोग से ऊपरी तौर पर राहत जरूर मिल सकती है किन्तु इन समस्याओं का हल नहीं निकाला जा सकता है। गाँधी दुनिया को इस बात से सहमत करने की कोशिश करते दिखते है कि युद्धों से किसी समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता है। इसके विपरीत समझौते और सहमति की राह से मानवता की अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। यह सभी समस्याएं मानवीय है जिनकी जडें लोगों के दिमाग में है अत: इनका समाधान भी लोगों के दिमाग में ही ढूँढ़ा जाना चाहिए। अकारण या गलत समझ के कारण भी अन्याय का अहसास होने की स्थिति में

समझाना और दिमाग बदलने की कोशिश की रणनीति, हिंसा का सहारा लेने की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है। हिंसा का सहारा तो सत्य के लिए लिया जाना भी न्याय संगत नहीं हो सकता है।

संघर्षों के समाधान के लिए अहिंसा का सहारा लेने की गाँधीवादी अपील को प्राय: अव्यावहारिक कह कर ठुकरा दिया जाता है। किंतु अहिंसा के सफल व्यावहारिक प्रयोग के प्रमाण गाँधी ने न केवल विदेशी धरती (दक्षिणी अफ्रीका) पर, बल्कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के समय भारतीय धरती पर भी प्रदान किये। यदि शांति और अहिंसा का मार्ग अव्यावहारिक होता तो, अभी तक संघर्ष और आतंकवाद का स्थायी समाधान देने वाले अन्य विकल्प अवश्य ही ढूंढ लिये गए होते और विश्व में चहुं ओर शांति ही शांति स्थापित होती। वर्तमान आधुनिक कानूनी और सैन्य तौर-तरीको से तो समस्याओं के और अधिक बढने का खतरा है। इसलिए, इस दिशा में गाँधी आखिरी रास्ते के रूप में सामने आते है। एक टिप्पणीकार (गांगल) ने गाँधी के सुझाए तौर तरीकों का विश्लेषण करते हुए पाया कि नैतिक चेतना की उन्नति ही विभिन्न संघर्षों का स्थायी समाधान है, ना कि हिंसा और ताकत।

1.5.3 गाँधीवादी आर्थिक सिद्धान्त

नव उदारवाद की तरफ बढ़ते विश्व के सभी देशों में आर्थिक प्रतिस्पर्धा अत्यधिक बढ़ गई है। जहां आर्थिक रूप से विपन्न देश विकासशील बनने के कम में है, वहीं विकासशील देश विकसित बन जाने के लिए हर प्रकार की प्रकिया अपना रहे है । विकसित देश भी विकास के नये पायदानों को छूने के प्रयास में रत है। सुनने और समझने में ये सभी तथ्य व्यावहारिक जान पड़ते है किंतु विकास की इस अंधी दौड़ ने विश्व के सामने अनेक आर्थिक चुनौतियां प्रस्तुत कर दी है। आय, सम्पत्ति और भोजन की विषमताएं, गरीबी तथा बेरोजगारी, अत्यधिक उत्पादीकरण तथा औद्योगिकीकरण में लुप्त होता मनुष्य का अस्तित्व, अमानवीय आर्थिक प्रतिस्पर्धाएं अत्यन्त जटिल परिदृश्य उत्पन्न करते है। इस सन्दर्भ गाँधीवादी आर्थिक सिद्धान्त नई उम्मीद को जन्म देते है।

उपभोक्तावादी संस्कृति के इस युग में गाँधीवादी आर्थिक दर्शन समृद्धि, सामाजिक न्याय तथा संतुलित विकास का मार्ग है। आर्थिक आत्मनिर्भरता, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, अनपेक्षित आवश्यकताओं को सीमित रखना और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन आदि गाँधी के विचारों को अपनाकर विश्व की आर्थिक समस्याओं का हल खोजा जा सकता है। त्याग तथा नैतिक दर्शन पर आधारित न्यासधारी (ट्रस्टीशिप) होने का विचार आर्थिक वितरण की समस्याओं का हल करने के साथ ही समाजवाद की स्थापना का मार्ग भी सुझाता। गाँधी कभी भी नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को अलग करने की कोशिश नहीं करते क्योंकि नैतिक रूप से अस्वस्थकर अर्थव्यवस्था कभी भी अच्छी नहीं हो सकती। गाँधी के स्वदेशी तथा स्वराज के सिद्धान्त वर्तमान पूंजीवादी विकास के प्रारूप के रोगों का इलाज करने में सक्षम है।

1.5.4 वैज्ञानिक मशीनीकरण और गाँधी

महात्मा गाँधी पर आरोप लगाया जाता है कि वे पश्चिमी वैज्ञानिक विकास तथा आधुनिक मशीनों के विरोधी थे। किंतु इस प्रकार के आरोप उन लोगों द्वारा लगाये जाते है जो गाँधी के की आधी अधूरी जानकारी रखते है। वस्तुत: गाँधी मशीनों के विरोधी नहीं थे, बल्कि वे मनुष्य द्वारा मशीनी संस्कृति की दासता के विरोधी थे। गाँधी का विरोध मनुष्य के अनियंत्रित लालच, असीमित भौतिक लालसाओं की पूर्ति प्रयास और मानवीय गरिमा तथा स्वतंत्रता की कीमत पर बेरोकटोक आर्थिक तथा वैज्ञानिक विकास के प्रति। इस सभ्यता के विपरित गाँधी एक ऐसी सच्ची सभ्यता का खाका खींचते है जिसमें लोग नैतिक मूल्यों के पर अपने दायित्वों का निर्वाह करते है। चारों ओर व्याप्त भौतिकवाद, उपभोक्तावादी संस्कृति और नास्तिकवादी यही वे प्रविष्टियां है जिनके खिलाफ गाँधी आजीवन संघर्ष करते रहे और गाँधी का यही संघर्ष आज की इन 'के सन्दर्भ में प्रासंगिक भी बन जाता है।

1.5.5 पर्यावरणीय चुनौतियां और गाँधी

आर्थिक चुनौतियों के समान ही पर्यावरणीय चुनौतियां भी सम्पूर्ण विश्व के लिए चिंता का विषय बनी हुई है जो विश्व को विभिन्न प्रकार के विनाशों, खाद्य तथा ऊर्जा संकट और सामाजिक तनावों तथा संघर्षों की ओर ले जा रही है। जलवायु परिवर्तन इस चुनौती का सर्वाधिक प्रत्यक्ष उदाहरण है। वर्तमान विकास कम में कार्बन उत्सर्जन एक विकट समस्या है जिसको नियंत्रित करने के लिए मशीनों का प्रयोग अनेक नयी समस्याओं को जन्म दे रहा है। तथ्य यह है कि मानव समाज ने संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन ही नहीं किया है बल्कि मनुष्य तथा प्रकृति के बीच के मौलिक संबंध को भी तोड़ दिया है। किंतु गाँधी इस अन्तसंबंध के प्रति सजग थे। उन्होंने चेतावनी दी थी कि यदि आधुनिक सभ्यता प्रकृति का ध्यान नहीं रखती है और प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर अपनी इच्छाओं को घटाने को तैयार नहीं होता है तो अनेक प्रकार की। स्थितियाँ जैसे - सामाजिक-राजनैतिक उथलपुथल, पारिस्थितिकीय विनाश आदि जन्म लेंगी। गाँधी के अनुसार पृथ्वी सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है किंतु मनुष्यों को अपने लालच को छोड़कर नैतिकता के साथ प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना होगा। लोगों, समाजों तथा सरकारों, सभी पक्षों द्वारा प्रकृति के प्रति नैतिक दायित्वों का निर्वहन करना होगा।

गाँधीजी ने चेतावनी दी थी कि आधुनिक उद्योगवाद विश्व को टिड्डी दल द्वारा मैदान साफ किए जाने के समान साफ कर देगा। यह बात किसी भी तर्क से नहीं समझाई जा सकती कि मानव समाज की लगातार बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की स्थिति बरकरार रहते हुए भी हम आसन्न पर्यावरणीय महाविनाश को रोक पाने में सक्षम हो सकेंगे। हमारे पास गाँधी की ओर लौटाने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। आखिर, वहनीय विकास क्या है? यह विकास की अवधारणा के साथ प्रेरित तथा भावी पीढ़ियों के प्रति गाँधीवादी नैतिक दायित्वों को मिलाने से ही तो बना है। इस नैतिक दायित्व के अभाव का लोगों समाजों और सरकारों द्वारा निर्वहन हुए बिना वहनीय विकास का विचार सफल नहीं हो सकता। इसके बिना आम लोगों के आम संसाधनों के संरक्षण के लिए चल रहे प्रयास भी

केवल कानूनी तथा वित्तीय सहायताओं के भरोसे सफल नही हो सकते। इसके लिए नैतिक दायित्वों को अपनाने की भावना सभी पक्षों में उजागर होना आवश्यक है। इसीलिए विश्व भर में सभी स्थानों पर बहुत से लोग और संगठन पर्यावरणीय न्याय पाने के लिए गाँधीवादी सिद्धान्तों को अपना रहे है। जिनमें श्रीलंका के सर्वोदय आन्दोलन के प्रणेता डी.एटी. आरियारत्ने थाईलैंड स्पिरिट इन एजुकेशन मूवमेंट के अग्रणी सुलाक शिवरक्षा अमेरिका में जान फ्रांसिस, फोरन ऑन रिलीजन एंड इकोलॉजी की सह संस्थापक मेरी एक्लीन टकर, क्लाइमेट कैम्पेन के संस्थापक बिली पैरिश आदि कुछ उल्लेखनीय उदाहरण है। समकालीन पर्यावरण संकट का हल तलाशने में गाँधीवादी सिद्धान्तों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करते हुए डायना कालथोर्प रोज ने लिखा कि ' 'विश्व को ग्लोबल वार्मिंग की समस्या के हल के लिए जो शक्ति चाहिए वह है सत्याग्रह की शक्ति।..... जलवायु आन्दोलनों को गाँधी से बहुत कुछ सीखना है। "

1.5.6 राष्ट्रों का आपसी अविश्वास

अधिकांश राजनैतिक समस्याओं का आधार राज्यों तथा राष्ट्रों के बीच विश्वास की कमी है। यह अविश्वास राष्ट्रों के बीच संघर्षों को उत्पन्न कर देता है। तत्काल आवश्यकता इस बात की है राष्ट्रों के बीच इस प्रकार के संघर्षों को गाँधीवादी अहिंसात्मक तरीकों के प्रयोग से सुलझाया जाए। इनके बीच आपसी विश्वास के लिए नयी संस्थानिक व्यवस्थाओं का विकास किया जाए। संबद्ध देशों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाए तथा उनमें सद्इच्छा निर्माण का प्रयत्न किया जाए। गाँधीवादी तरीके से व्यक्ति के व्यक्ति से संबंध को महत्वपूर्ण मानकर विश्वास की इस छोटी इकाई को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक विस्तृत किया जाए। इस प्रयत्न से इस बात की संभावना अवश्य ही होती है कि स्थायी शांति की दिशा में हम एक और कदम उठा रहे है।

1.5.7 सत्याग्रह और गाँधी

महात्मा गाँधी के जीवन के मुख्य आधारों में से एक था सत्याग्रह अर्थात् सत्य का आग्रह। सत्य का अर्थ सच्चाई है, वहीं आग्रह में दृढ़ता का भाव समाहित है। दक्षिणी अफ्रीका में हो रहे जातीय भेदभावों के विरूद्ध महात्मा गाँधी ने इस शब्द का प्रयोग किया था। सत्याग्रह गाँधी के लिए केवल सीखने-सिखाने का शब्द भर नहीं था। गाँधी ने इस शब्द के सम्पूर्ण अर्थ - को जीवन में चरितार्थ भी किया। सत्याग्रह गांधीजी के लिए आत्मिक शक्ति भी थी। उन्होने अनेक उदाहरण स्थापित करके विश्व को यह बताने का प्रयास किया कि सत्याग्रह को अपनाकर विश्व और अधिक अच्छी अवस्था में आ सकता है। गांधी कहते है कि सत्याग्रह हिंसा का हिंसा द्वारा प्रतिकार का विरोध करता है। यह विरोधी की आत्मा की शुद्धि का शान्तिपूर्ण प्रयास है जिसे कोई भी अपना सकता है चाहे स्त्री, पुरूष हो या बच्चे अथवा अकेला व्यक्ति या कोई समुदाय। आवश्यकता सिर्फ आत्मा के शुद्धिकरण की तथा सत्य पर अडिग रहने की है। दृढ़ता के साथ किया गया सत्य का अहिंसक आग्रह किसी ' भी विरोधी को झुकाने का प्रभावशाली माध्यम है।

गाँधी ने सत्याग्रह को स्वयं तथा विरोधियों को शुद्ध करके सत्य की खोज के प्रवास के रूप में तैयार किया था। वस्तुत: गाँधी का सत्याग्रह अहिंसक साधनों के द्वारा शांति निर्माण का एक प्रभावशाली यंत्र है। युद्ध और संघर्ष, विरोधी पर विजय प्राप्ति के वह तरीके है जिसमें विरोधी के प्रति घृणा, शत्रुता तथा ईर्ष्या उत्पन्न होती है किंतु एक सत्याग्रही दया, करूणा, प्रेम और क्षमा जैसे मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण होता है। वह अन्याय का प्रतिरोध तो करता है किंतु साथ ही विरोधी के प्रति सम्मान तथा सहानुभूति भी प्रकट करता है। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के हितों के लिए सत्याग्रह, चंपारण, खेड़ा और बारदोली में आर्थिक कारणों से सत्याग्रह, ब्रिटिश शोषण के प्रति सत्याग्रह के अचूक प्रभावों से इस गाँधीवादी अहिंसात्मक प्रतिरोध (सत्याग्रह) की वैश्विक प्रासंगिकता निर्विवाद ही स्थापित हो जाती है।

आज विश्व जब हिंसा और अशान्ति के नये प्रतिमान छू रहा है। लालसाओं की बढ़ती दर में व्यक्ति एक दूसरे का शत्रु बन गया है, ऐसे में सत्याग्रह विश्व को शान्ति की ओर ले जाने का एक अचूक अस्त्र है, और सत्याग्रह की यही वैश्विक मांग गांधी को वैश्विक चरित्र का दर्जा भी प्रदान करती है।

1.5.8 वसुधैव कुटुम्बकम

जब हम गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता की चर्चा करते है तो निश्चय ही स्पष्ट हो जाता है कि गाँधी एक व्यक्ति नहीं थे। वह एक संस्था थे, एक दर्शन थे। एक ऐसा दर्शन जो की भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। गाँधी जब सर्वजनहिताय की बात करते है तो उनकी व्यापक दृष्टि में विश्व का प्रत्येक मनुष्य समाहित हो जाता है। विश्व के सभी मनुष्यों के लिए शांति, सुख, समृद्धि तथा कल्याण की भावना के कारण गाँधी वसुधैव कुटुम्बकम के प्रेरक बन गए है।

1.5.9. गाँधी और उनके सिद्धान्तों का सिनेमा में चित्रांकन

गाँधी एक शान्ति पुरूष तथा अहिंसा के पुजारी थे। किसी भी देश ने सक्रिय परिवर्तनों का ऐसा दौर कभी नहीं देखा जैसा गाँधी के आने के बाद दिखाई पड़ता है। गाँधी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के तीन सिद्धान्तों में उनका सम्पूर्ण जीवन तथा पूरे विश्व के लिए प्रभावशाली सीख सम्मिलित है। महात्मा गाँधी ने कष्टपूर्ण जीवन जीकर विश्व के सामने एक जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया। हिंसा के इस युग में शान्ति की खोज करते विश्व के लिए गाँधी की सोच स्वत: ही प्रासंगिक हो जाती है। गाँधी की विचारधारा आज इसलिए भी प्रासंगिक है क्योंकि उनकी सोच, उनके विचार और उनके सिद्धान्त मानवीय मूल्यों से सम्बंधित है। इसलिये गाँधीवादी विचारधारा को संचार माध्यमों के माध्यम से प्रचारित और प्रसारित किया जा रहा है। इसी कडी में सिनेमा भी गाँधी के विचारों को सामने लेकर आया। यह गाँधी के विचारों और सिद्धान्तों की वैश्विक प्रासंगिकता' ही थी जिसने सिनेमा के माध्यम से गाँधी को विश्व के सामने लाने की आवश्यकता अनुभव की, जिससे तकनीकी युग में जी रही पीढ़ी गाँधी की विजय और शहादत का सही तथा सटीक रूप ग्रहण कर सके।

सन् 1982 में रिचर्ड एटेनबरो द्वारा निर्मित फिल्म ' 'लाइफ ऑफ गाँधी' ' एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त फिल्म थी जो गाँधी की उपलव्यियों तथा उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर ले आयी। फिल्म लुईस फिशर की किताब 'द लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी' पर आधारित थी। गाँधी पर एटेनबरो की इस फिल्म ने इस महान शख्सियत को पश्चिम के देशों में फिर से प्रस्तुत किया। इसी प्रकार हिमांशु राय की ' 'अछूत कन्या' ' देवकी बोस की 'चंडीदास', महाकवि सत्यजीत राय की 'सद्गति, विमल रॉय की 'सुजाता', जानु बरूआ की ''मैने गाँधी को नहीं मारा', व्यावसायिक रूप से बनी फिल्म 'लगे रहो मुन्नाभाई' 2005 में बनी 'वाटर' जो विधवाओं के मार्मिक जीवन को प्रस्तुत करती है, 2007 में आयी फिल्म 'गाँधी माई फादर' ' सरीखी कितनी ही फिल्में गाँधी के जीवन और उनके मूल्यों को सिनेमाई माध्यम से चरितार्थ करती है तथा इस बात की ओर संकेत करती है कि गाँधी की प्रासंगिकता सदैव रहेगी क्योंकि मनुष्य जीवन की जिन उलझनों से सामना कर रहा है, उस प्रत्येक पक्ष को गाँधी ने बारीकी से समझा और उनकी इसी समझ के आगे विश्व नतमस्तक है।

1.5.10. महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार और दिवस

महात्मा गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी को भी गाँधी के विचारों और व्यक्तित्व के वैश्विक होने में किसी प्रकार का संशय होना चाहिए। गाँधी के प्रभाव तथा विचारों की पहुँच विश्व समुदाय पर एकदम स्पष्ट है। विश्व अनेकानेक संघर्षों से जूझ रहा है जो घर जैसी छोटी इकाई से प्रारम्भ होकर प्रत्येक देश के अस्तित्व को झकझोरने का प्रयत्न कर रहे है। ऐसे समय में शान्ति, सहनशीलता प्रेम, स्थायित्व, सम्मान, अहिंसा, सत्य, विश्वास जैसे मूल्य ही समाज को मानवता की ओर उज़ख कर सकते है। ये तथा इन जैसे अनेक मूल्यों के धनी गाँधी को इसीलिए विश्व नमन करता है। गाँधी की प्रेरणा से विश्व को एक नयी शिक्षा प्राप्त हो सके इसलिए सन् 2003 में महात्मा गाँधी के नाम पर Mahatma Gandhi International Award for Peace and Reconciliation (MAGI Award) प्रारम्भ किया गया जो शान्ति और सौहार्द के लिए कार्यरत लोगों और संस्थाओं को महात्मा गाँधी की याद में प्रतिवर्ष दिया जाता है।

इतना ही नहीं विश्व समुदाय ने 2007 में उनका जन्मदिवस अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। इसी प्रकार यूनेस्को ने अक्टूबर 2009 में अपने 35वें अधिवेशन के दौरान भारत में महात्मा गाँधी इंस्टीट्यूट ऑव एजुकेशन फॉर पीस एण्ड सस्टेनेबल डेवलपमेंट स्थापित करने का निर्णय लिया। यह पूरे एशिया में यूनेस्को का एकमात्र श्रेणी-1 का संस्थान है।

महात्मा गाँधी के नाम पर और उनकी याद में स्थापित हो रहे ये अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता को निर्विवाद रूप में स्थापित करते है।

1.5.11 गाँधी की विचारधारा पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव

महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने एक बार कहा था कि आने वाली पीढ़ियों को विश्वास नहीं होगा कि हाड-माँस का बना ऐसा कोई इंसान (गाँधी) कभी इस पृथ्वी पर वास्तव में था। हमारे

काल की आम धारणा है कि गाँधी वैश्विक है। यह धारणा उनके विचार और कृतित्व की तीन व्यापक विधाओं को रेखांकित करती है। पहली कि गाँधी के विचारों के स्त्रोत का चरित्र वैश्विक है क्योंकि उन्होने बहुत सारे लोगों, स्थानों और धाराओं से विचार ग्रहण किए थे। अगर टाल्सटॉय की पुस्तक 'किंगडम ऑव गॉड इज विदिन' यू ने अहिंसा में उनके विश्वास को दृढ़ता प्रदान की तो रस्किन की पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' ने उनके आर्थिक विचारों को प्रभावित किया। हेनरी थोरी के शासन विरोधी ग्रंथ 'सिविल डिसोबिडिएंस ने उनके सत्याग्रह के विचार पर गहरा प्रभाव डाला। न्यू टेस्टामेंट के 'दि सरमन आन माउंट' ने उन पर विशेष प्रभाव डाला क्योंकि इसमें अच्छाई और सत्यपरकता के महान सिद्धान्त समाहित थे। थॉमस कार्लाइल की पुस्तक 'हीरोज एड हीरो वर्शिप' ने भी उन्हे गहराई से प्रभावित किया था। गाँधी इसमें वर्णित पैगम्बर की महानता, बहादुरी और तपस्वी जीवन के विचारो से प्रेरित हुए थे। एडविन आर्नोल्ड द्वारा गीता के अनुवाद 'द सांग सेलेस्टियल' को पढ़ने के बाद ही गाँधी अनासक्त कर्म की अवधारणा को समझ पाए थे। अत: गाँधी के प्रति वैश्विक आकर्षण का कारण उनके विचारों का वैश्विक स्त्रोतों से होना है। फिर भी गाँधी के विचारों का आधार सनातन भारतीय विचार और सिद्धान्त थे। वैश्वीकरण फी प्रक्रिया शुरू होने से काफी पहले ही वे बाहरी विचारों तथा प्रभावों को ग्रहण करने के लिए उत्सुक थे। वे कहते भी है कि ' मैं अपने घर की सभी खिड़कियों को खुला रखना पंसद करूंगा ताकि सभी दिशाओं से ताजा हवा का प्रवाह हो सके किन्तु इन हवाओं को मैं अपने पैर नहीं उखाड़ने दूंगा।

1.5.12. अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व और गाँधी

गाँधी की वैश्विक स्वीकार्यता तथा उनके जादुई व्यक्तित्व का प्रभाव निरंतर बढता जा रहा है। पूरा विश्व उनके विचारों से सम्मोहित है। गाँधी की वैश्विक छवि के समर्थको की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है और यह एक स्वतस्फूर्त प्रक्रिया है। एक समाचार (एनआरआई वर्ल्ड 2010) के अनुसार गाँधी की आवक्ष मूर्तियों की मांग विश्व के सभी हिस्सों में लगातार बढ रही है। उनके आदर्श और आदर्शों को जीवन लें उतारने में उनकी सफलता इतनी आकर्षक है कि आज दुनियां के सभी कोनों में उनके स्थानीय प्रतिरूप खडे हो चूके है। अमेरिकी गाँधी मार्टिन लूथर किंग तथा अफ्रीकी गाँधी नेल्सन मंडेला तो विश्वव्यापी स्थापना पा चुके है। अमेरिकी गांधी डॉ. मार्टिन लूथर किंग ने अमेरिका में अश्वेतों के साथ होने वाले अन्यायों के विरूद्ध संघर्ष के अहिंसा तथा सत्याग्रह के गाँधीवादी सिद्धान्तों को अपनाया था। एक टिप्पणीकार लिखते है कि ' 'डॉ. मार्टिन लूथर किंग मताधिकार और एकीकरण हेतु अपने अभियानों के लिए महात्मा गांधी की विरासत अहिंसा की प्रभावोत्पादकता को पहचानते थे।..... अमेरिका में अश्वेतों के उत्थान हेतु संघर्ष के लिए गाँधी के बताए सत्याग्रह को अपनाकर वह गाँधी के सबसे बड़े शिष्य बन गए थे। यहाँ तक कि किंग की ' 'व्यक्तिवाद' की अवधारणा जो मनुष्य के व्यक्तित्व में अन्तिम वास्तविकता की तलाश करती है, और कुछ नहीं मनुष्य की अच्छाई में अगाध आस्था के गाँधी के सिद्धान्त का विस्तार भर है।

मंडेला तथा लूथर किंग को अफ्रीकी तथा अमरीकी गांधी कहे जाने की स्थिति को इस प्रकार समझा जा सकता है। महान कवि नाटककार कालिदास की रचनाओं की श्रेष्ठता साबित करने के लिए जैसे उन्हें शेक्सपीयर कहा जाता है और प्राचीन भारतीय चिंतक कौटिल्य को भारतीय मैकियावली पुकारा जाता है अर्थात् श्रेष्ठ की तुलना सर्वश्रेष्ठ से की जाकर प्रतिष्ठा को स्थापित किया जाता है। उसी प्रकार गाँधी एक आदर्श है प्रत्येक श्रेष्ठ के साथ जुड़ने हेतु चार्ली चैपलिन अपनी आत्मकथा में गाँधीजी से डाकस्ट्रीट लंदन में अपनी मुलाकात का विवरण लिखते है और 1936 में उनके विचार से प्रेरित होकर उन्होने मशीन मनुष्य के रिश्तों पर आधारित 'मार्डन टाइम्स' का निर्माण किया।

इस प्रकार गाँधी के विश्व समुदाय के साथ जुड़े होने के प्रमाण स्वत: ही उनके वैश्विक प्रासंगिकता को सिद्ध कर देते है।

1.6 सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय गाँधीवादी मूल्य जैसे अहिंसा, सत्य, न्याय, शोषण का न होना, मानवीय करूणा और शांति, समय एवम् स्थान की सीमाओं से परे है। वैश्विक व्यवस्थाओं में परिवर्तन होने के बावजूद ये मूल्य प्रासंगिक बने रहेंगे। समकालीन विश्व अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है जिसकी प्रकृति राजनैतिक, आर्थिक तथा मानवतावादी है और इन समस्याओं का समाधान गाँधीवादी दर्शन को अपनाकर किया जा सकता है। यद्यपि गाँधीवाद को व्यवहार में लाना चुनौती भरा कार्य है। द्विपक्षीय तथा वैश्विक शांति की प्राप्ति में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न, शक्ति प्रतिमान, हथियारों की दौड़ और नरसंहार के हथियार इत्यादि मुद्दे भटकाव की स्थिति उत्पन्न करते है। फिर भी इस सन्दर्भ में बिना नकारात्मक भाव लाए राज्यों को गाँधीवादी मूल्यों को केन्द्र में रखकर विश्वास की प्रकिया को बनाए रखना होगा। मानवता का अधिकाधिक विकास कर शांति की संस्कृति को अपनाना ही होगा। परिणाम चाहे शीघ्र दिखाई न दे, परन्तु विश्व में शांति स्थापना और अन्य वैश्विक चुनौतियों के समाधान में गाँधीवादी मूल्य सदैव आधार का काम करते रहेंगे। समकालीन विश्व जिन समस्याओं से पीड़ित है, उनके निवारण के लिए गाँधीवादी मूल्यों की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी। ब्रिटिश इतिहासकार अर्नोल्ड टायनबी के शब्दों में - ' 'अब यह स्पष्ट हो रहा है कि यदि मानव जाति को आत्मघाती अंत से बचना है तो जिस अध्याय का प्रारंभ पश्चिमी विचारों के साथ हुआ था उसका अंत भारतीय विचारों (गाँधीवाद) के साथ होगा। मानव इतिहास की इस अत्यधिक खतरनाक गति पर मानव जाति के उद्गार का एकमात्र रास्ता भारतीय रास्ता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीवाद से आप क्या समझते है?
2. समकालीन विश्व जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उनका उल्लेख कीजिए।
3. गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता को समझाइये।
4. महात्मा गाँधी कौन-कौन से अन्तर्राष्ट्रीय स्त्रोतों से प्रभावित हुए, उल्लेख कीजिए।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम के. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1997
2. एम.के. गाँधी, सर्वोदय; नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2012
3. परेल, ऐंथॉनी, हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिग्न्स ऑफ एम. के. गाँधी, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,केम्ब्रिज़, 1997
4. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
5. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1966।
6. मिश्र, अनिल दल, चेलेनजेस ऑफ 21 रट सेंचुरी गाँधीयन ऑल्डरनेटिक, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2003
7. मिश्र, अनिल दत्त, गाँधीयन अप्रोच टू कन्टेम्पोररी प्रोब्लमन्, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996

इकाई-2

भूमण्डलीकरण एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण की अवधारणा

2.3 भूमण्डलीकरण के विविध आयाम

2.3.1 आर्थिक भूमण्डलीकरण

2.3.2 राजनीतिक भूमण्डलीकरण

2.3.3 सामाजिक व सांस्कृतिक भूमण्डलीकरण

2.4 भूमण्डलीकरण एक समीक्षा

2.5 भूमण्डलीकरण एवं गाँधी

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी :-

- भूमण्डलीकरण की अवधारणा को ठीक तरह से समझ सकेंगे।
- आर्थिक के साथ-साथ उसके राजनीतिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक व धार्मिक प्रभाव को जान सकेंगे।
- गाँधी के राष्ट्रवादी विचारों का सही विश्लेषण कर सकेंगे।
- गाँधी चिंतन के संदर्भ में भूमण्डलीकरण की पुन:समीक्षा कर सकेंगे।

2.0 प्रस्तावना

समूचे विश्व में आज भूमण्डलीकरण की हवा चल रही है। इसके अन्तर्गत न केवल विकसित, विकासशील तथा अर्द्ध-विकसित राष्ट्र आर्थिक, व्यापारिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दृश्टि से जुड़ रहे हैं, बल्कि पूर्व और पश्चिम का भेद भी लगातार घटता नजर आ रहा है। सूचना, संचार, यातायात, व्यापार, उद्योग, पूंजी, शिक्षा व श्रम के क्षेत्र में जो प्रवाह है उससे राष्ट्रों के बीच दूरियाँ कम होती जा रही हैं। सोवियत संघ के विघटन ने भूमण्डलीकरण को और अधिक गति प्रदान की है। विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में ' प्रगति से दुनिया सिमट सी गई है और यह कहा जाने लगा है कि समूचा विश्व “Global Village” हो गया है। परन्तु पिछले कुछ वर्षो में भूमण्डलीकरण ने नये आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरण संबंधी संकटों को जन्म

दिया है। भूमण्डलीकरण के बारे में अपना मत निर्माण करने से पूर्व इसके विविध आयाम को " तरह जानना जरूरी है।

2.1 भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण की अवधारणा

आमतौर पर ज्यादातर लोगों के मन में यह मिथ्या धारणा है कि भूमण्डलीकरण की शुरूआत बीसवीं शताब्दी में सोवियत संघ के विघटन तथा साम्यवादी गुट के बिखराव से है क्योंकि इसी के बाद विश्व एक ध्रुवीय व्यवस्था की ओर बढ़ने लगा। इसी के बाद विकसित राष्ट्र, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से विश्व व्यवस्था पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करने लगे। परंतु वास्तव में यह एक अचानक उत्पन्न प्रक्रिया नहीं है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो भूमण्डलीकरण का बीजारोपण तब हुआ जब पाँच सौ साल पहले नाविकों ने सुदूर पश्चिम में अमरीका तथा पूर्व में भारत की खोज करके इनके साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किये। प्राचीन भारत में भी जब राजसत्ता लोकतांत्रिक नहीं थी, तब भी राजदूतों, व्यापारियों तथा भिक्षुकों आदि का आदान प्रदान विभिन्न उद्देश्यों के लिए होता था और ये लोग भूमण्डलीकरण के वाहक थे। नब्बे के दशक में संचार माध्यमों, कम्प्यूटर, उपग्रह चैनलों ने उत्पादन, निवेश, पूंजी, श्रम संगठन, मनोरंजन, बैंकिंग, बीमा, पर्यटन को वैश्विक स्वरूप प्रदान कर दिया। परन्तु भविष्य में इसका स्वरूप क्या होगा, इस बारे मे निश्चित तौर पर अभी कुछ नही कहा जा सकता है।

सामान्य रूप में भूमण्डलीकरण का अर्थ एक ऐसा अर्थतंत्र तथा बाजार का निर्माण है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को अनिवार्यत: जुड़ना है। नि:संदेह इस प्रक्रिया से व्यापक लाभ हुए है और मुक्त बाजार व्यवस्था में पूंजी, सूचना, तकनीक, आदि का सुविधाजनक आदान प्रदान सम्भव हो पाया है। बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बेरोकटोक व्यापार के अवसर प्राप्त हुए हैं, उपभोक्ता को अनेक विकल्प मिले हैं और लाइसेंस राज का नियंत्रण समाप्त हुआ है। परंतु इसके साथ ही एक उपभोक्तावादी संस्कृति का उदय हुआ है जो पूरी तरह लाभ और भौतिकतावाद पर आधारित है, जिसमें व्यक्तिवाद का वर्चस्व है और सर्वजनहिताय का लोप हो चुका है। पूंजी का वैश्वीकरण होने से उसका आवागमन तो आसान हो गया हैं परन्तु विकास की तीव्र महत्वाकांक्षा के कारण विकासशील राष्ट्र अपनी स्वतंत्र नीति का समझौता करने के लिए मजबूर हो गये है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों (MNCs) ने विकासशील देशों के बाजार व सस्ते श्रम को आधार बनाकर पूरे विश्व पर अपना कब्जा बना लिया है, और सरकारें भी इन पर नियंत्रण स्थापित करने में अपने आप को कमजोर महसूस कर रही है। उदार ऋणदाता बनकर विकसित राष्ट्रों ने जरूरतमंद राष्ट्रों को तकनीक, मशीनें, पूंजी आदि तो प्रदान की है परंतु साथ ही ये राष्ट्र अपनी आय का एक फीसदी से भी कम खर्च करके तीसरी दुनिया के इन देशों के भाग्य नियंता बन गए है। डेनिस स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Globalization the hidden agenda" में लिखा है कि भूमण्डलीकरण प्रकट रूप में तो व्यवसायिक हित तथा सामग्री संधान में वृद्धि को प्राथमिकता देता है परंतु उसका गर्भित ऐजेण्डा विकसित राष्ट्रों की सामर्थ्य को बनाये रखना, राजनीतिक वर्चस्व बनाये रखना तथा राजनयन और आर्थिक राजनीतिक समीकरणों को अपने पक्ष में बनायें रखना है।

प्रथम विश्वयुद्ध से साम्यवाद पूंजीवाद का विकल्प बनकर उभरा जिससे लगा कि उनकी समतामूलक व्यवस्था में सामाजिक व आर्थिक विषमताओं का कोई स्थान नही होगा। परन्तु हथियारों की होड़ मे दो-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का ढांचा ध्वस्त हो गया और भूमण्डलीकरण का रास्ता और आसान हो गया। सोवियत संघ के विघटन से विश्व अर्थव्यवस्था पर अमरीकी नियंत्रण स्थापित होने लगा क्योंकि अधिकतर विश्व आर्थिक संगठन अमरीका द्वारा ही नियंत्रित थे। तीसरी दुनिया के राष्ट्र, जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद स्वतंत्र हुए प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से तो समृद्ध थे परंतु तकनीकी ज्ञान के अभाव में कृषि, पेटेंट व सेवा क्षेत्र बहुपक्षीय समझौते करने को मजबूर हो गए। 1970 के दशक में तेल निर्यातक देशों के संगठन (OPEC) के द्वारा मूल्य वृद्धि से विकासशील देशों के तेल बिलो मे व्यापक वृद्धि हुई और पुराने कर्ज को चुकाने के लिए नया कर्ज लेना इनकी मजबूरी बन गया। यहाँ खाद्यान्न तथा उर्जा का संकट मंडराने लगा; गरीबी, कुपोषण, भुखमरी, साक्षरता की दशा में भी ज्यादा सुधार नहीं आया।

भूमण्डलीकरण स्वहित का पोषक हैं, व्यक्तिवाद को वरीयता देता है। यहीं योग्यतम की विजय (survival of the fittest) की अवधारणा महत्व रखती है। अनुभव बताता है कि कुछ सफल लोगों के पीछे लाखों लोगो का खून, पसीना व श्रम होता है जिन्हें उसका उचित देय भी प्राप्त नही होता। आज भी वैश्वीकरण में दावा राष्ट्र हित का किया जाता है जबकि लाभान्वित बहुराष्ट्रीय कम्पनी हो रही है जिनकी दुनिया भर मे संख्या साठ हजार के लगभग है। ये कम्पनियाँ भारी मात्रा में विकासशील व गरीब देशों के प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों का इस्तेमाल अपने लिए करके मुनाफा कमा रहीं है। इनका लोकतांत्रिक नियंत्रण महज एक दिखावा है और वैश्विक प्रतिस्पर्धा स्थापित करने मे इनका कोई योगदान नही है, बल्कि ये बाजार में प्रतिस्पर्धा के स्थान पर एकाधिकार जमाना चाहते है, विविधता खत्म करना चाहते है। स्वयं अपने देश में तकनीकी प्रशिक्षित मानवीय सम्पदा महंगी होने के कारण ये गरीब देशों की सस्ती, उत्कृष्ट मानवीय सम्पदा का उपयोग अपने लाभ के लिए करते है। इसलिए आज विकास मॉडल का मुख्य संकेतक राष्ट्रीय पूंजी नहीं, निजी उद्यम, स्वतंत्र बाजार निर्णय तथा राष्ट्रीय भौगोलिक सीमाहीन विश्व व्यवस्था बन गई है और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व 'बैंक ऐसे भूमण्डलीकरण के प्रचारक बन गए हैं।

2.3 भूमण्डलीकरण के विविध आयाम

भूमण्डलीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसके आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आदि विभिन्न पक्ष हैं।

2.3.1 आर्थिक भूमण्डलीकरण

आज अर्थव्यवस्था निर्यातोन्मुख हो रही हैं आयात-निर्यात नीति में भी वैश्विक व्यापार के अनुरूप निर्णय लिए जा रहे हैं - पूंजी के आवागमन के प्रतिबंध समाप्त हो रहे है, विदेशी विनियोग की मात्रा, दिशा व संरचना में व्यापक परिवर्तन हुए है तथा कम्पनियों के अधिग्रहण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला है। आर्थिक भूमण्डलीकरण की नींव उदारीकरण तथा वैश्वीकरण पर टिकी है। एडम स्मिथ स्वयं आर्थिक उदारीकरण और स्वतंत्र व निर्बाध बाजार के समर्थक थे।

उनका विचार था कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी प्रकृति का है और ऐसे में जब स्वतंत्र बाजार का संचालन होगा तो लाभ पूरे समाज को मिलेगा।

भूमण्डलीकरण पर विद्वानों के मत अलग-अलग रहे है। मैक्स वेबर के अनुसार पूंजी के विकास के साथ सामाजिक व धार्मिक परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। समाज में श्रेष्ठ व्यक्तियों ने अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए तथा धर्म महन्तो ने अपना वर्चस्व बनाए रखने को पूंजी का सहारा लिया है। शहरीकरण और औद्यौगिकरण में मेहनती, कुशल व योग्य व्यक्ति का अहम् योगदान रहा है तथा इससे कार्य व मुद्रा के नये संबंधों का उदय हुआ है। डब्लू. डब्लू. रोस्टव के मतानुसार सतत् आर्थिक विकास के लिए तकनीक, बचत, उद्यमिता तथा सही राजनीतिक व्यवस्था जरूरी है क्योंकि उसी से ही आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

वैश्वीकरण को समझने के लिये 'निर्भरता सिद्धान्त' मे विश्व का विभाजन किया गया है। इसमें समृद्ध राष्ट्र वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के नियंत्रक है तथा गरीब राष्ट्र सहायक। समृद्ध, गरीब राष्ट्रों के सस्ते श्रम, कच्चे माल व विस्तृत बाजार पर निर्भर करते हुए अपने लाभ का विस्तार करते है। अत: विकसित राष्ट्रों का विकास ही गरीब राष्ट्रों के अर्द्ध विकास का कारण है। गुन्डर फ्रैंक का तर्क है कि अर्द्ध-विकास एक चरण नहीं, स्थायी बिन्दु है जिससे बचाव केवल सम्पूर्ण पूंजीवाद से बचाव में निहित है। 'गरीब राष्ट्र गरीब क्यों हैं', इस विषय पर पाले ब्रिटेन, डॉस सेन्तोस व समीर अमीन आदि का मत एक ही है-पूंजीवादी व्यवस्था, प्रतिस्पर्धा की नहीं एकाधिकार की पोशाक है गरीब राष्ट्रों को अपने बाजारों को सम्पन्न राष्ट्रों के शोषण पूर्ण संबंधों से बचाना होगा क्योंकि इन दोनों के बीच संबंध साम्राज्यवादी हैं जिस कारण गरीब राष्ट्र सस्ती वस्तु बनाने को मजबूर हैं।

जर्मनी के फोल्कर फ्रोबल, ओते कैथी आदि भूमण्डलीकरण पर अपनी प्रतिक्रिया करते हुए कहते है कि तकनीकी आदान-प्रदान व पूंजी व निवेश के नियम सरल करने के पीछे उद्देश्य भलाई का नही, निजी स्वार्थ व लाभ का है। विकसित राष्ट्रों से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने प्लांट बंद करके विकासशील देशों में विनियोजन कर रही है। क्यों? क्योंकि स्वयं अपने देश में श्रम सुरक्षा नियम और मापदंड कड़े है और ऐसे में वही अपनी गतिविधियाँ संचालित करते रहना लाभप्रद नहीं। इसके चलते विकासशील देशों में शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है जिससे शहरों में मूलभूत सुविधाओं का संकट उत्पन्न हो रहा है। इन उद्योगों में लोग किसी भी पारिश्रमिक पर कार्य करने को बाध्य है जिससे शोषण व बेरोजगारी बढ रही है कुशल और अकुशल श्रमिक की आमदनी का फासला बढ़ता जा रहा है, पूंजी का केन्द्रीकरण हो रहा है, निर्माण उद्योग की बजाय सेवा क्षेत्र का विकास हो रहा हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया से इन राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था डगमगा रही है, कर का दायरा सिकुड रहा है और सरकार को दीर्घकालीन वित्तीय घाटा उठाना पड़ रहा हैं। बाजार में साख क्षमता (credit worthiness) का निर्धारण सट्टा बाजार के व्यापारी कर रहे है, वैश्विक प्रबंधन में स्थानीय जनता व सरकार की निर्णायक भूमिका समाप्त हो रही है और पूरी प्रक्रिया मे व्यक्ति कही गायब हो गया है। इसी संदर्भ में लंदन स्कूल ऑफ इकनोमिक्स के प्रोफेसर लेसली स्केलेयर ने कहा है कि बढते हुए वैश्वीकरण में अर्थव्यवस्था, संस्कृति तथा

राजनीति को अत्याधिक महत्व दिया जा रहा है जिससे भूमण्डलीकरण का पूरा विचार भ्रामक होता जा रहा है।

2.3.2 राजनीति भूमण्डलीकरण

गत दो दशकों में सोवियत संघ के बिखराव तथा साम्यवादी गुट के बिखराव ने विश्व व्यवस्था का एक नया चेहरा प्रस्तुत किया है। वैश्वीकरण के दबाव में राज्य कमजोर पड़ता जा रहा है, यहाँ तक की राष्ट्र की प्राथमिकता निर्धारण में भी उसकी भूमिका सीमित हो गई है। आज आमजन बेहतर आय, रोजगार और सुरक्षा की मांग कर रहा है, पर राज्य अपने को असहाय महसूस कर रहा है क्योंकि आर्थिक भूमण्डलीकरण राजनीतिक भूमण्डलीकरण का आधार बन गया है। सच यह है कि वैश्वीकरण के इस दौर में हम अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सीमाओं पर पूंजी व आयात-निर्यात के निर्बाध आवागमन का तो पूरजोर समर्थन कर रहे है पर यह सुविधा मनुष्य के लिए स्वीकार करने को तैयार नहीं है जब कोई व्यक्ति रोजगार के बेहतर विकल्प के लिए दूसरे राष्ट्र जाना चाहता है तो पासपोर्ट, वीसा आदि की रूकावट का निदान कोई नही चाहता। राजनीतिक समाजशास्त्री रजनी कोठारी भी वैश्वीकरण के नाकारात्मक प्रभाव को स्वीकारते हुए कहते हैं कि आज राज्य अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। एक तरफ पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी के बीच की दीवार ढह चुकी है तो दूसरी तरफ राष्ट्रीय उग्रवाद, क्षेत्रवाद और आतंकवाद जैसी समस्याओं से जूझना पड रहा है। भारत में ही कभी पष्थक सिख-राज्य खालिस्तान की मांग उठती है तो कभी तमिल ईलम के नाम पर तमिल राष्ट्र की, तो कभी विकास और भाषा के नाम पर तेलंगाना, विदर्भ और पूर्वांचल / बुदेलखंड की मांग होती है। विडम्बना यह कि वैश्विक समस्याऐं, भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर, सामूहिक निदान की मांग करती है। आज हम वही खडे है जहाँ न तो राजनीतिक सीमाओं को पूरी तरह समाप्त किया जा सकता है और नही भूमण्डलीकरण के बढते कदमों को रोक पाना सम्भव है।

आज हमारे पास जो भी राजनीतिक विकल्प है उनमें लोकतंत्र को ही सबसे बेहतर माना जाता है क्योंकि उदारवादी लोकतंत्र ही सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के लिए बेहतर विकल्प है। लोकतंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता, उसके अधिकार सुरक्षित है और शासन भी जनता के प्रति जवाबदेह है। निश्चित अवधि पर चुनाव तथा प्रतिनिध्यात्मक शासन के कारण सरकार उत्तरदायी है। विश्वयुद्धों के बाद उत्पन्न ध्रुवीय व्यवस्था ने विश्व व्यवस्था को पूंजीवाद बनाम साम्यवाद में बांट दिया और दोनो सैद्धान्तिक तौर पर अपने प्रभाव क्षेत्र को बढाने में प्रयासरत रहे। परन्तु व्यवहार में इस राजनीतिक भूमण्डलीकरण की आड में बाजार आधारित व्यवस्था को पूरी दुनिया में फैलाना जारी रहा। विकसित राष्ट्रों ने कभी प्रौद्योगिकी ज्ञान, आर्थिक मदद तो कभी सुरक्षा हेतु हथियारों की आपूर्ति के द्वारा दूसरे राष्ट्रों को उपभोक्तावाद का हिमायती बना लिया। इस बाजारोन्मुख लोकतंत्र ने स्थानीय लोकतंत्र को पूरी तरह से कमजोर और अप्रभावी बना दिया है। इससे निर्णय और सत्ता के विकेन्द्रीकरण में जनसहभागिता का लोप हो रहा है।

2.3.3 सामाजिक व सांस्कृतिक भूमण्डलीकरण

वर्तमान समय इन्टरनेट, असंख्य सैटेलाइट टेलीविजन चैनल्स तथा साइबर स्पेस का है। इन सारी सुविधाओं से समाचारों का आदान प्रदान आसान हो गया है, कम्प्यूटर के एक क्लिक पर सूचनाओं का अथाह सागर उपलब्ध है। विश्व भर में बसे भारतीय सैटेलाइट चैनल्स के द्वारा भारतीय टीवी. सीरियल का मजा ले सकते है और साथ ही पश्चिमी प्रोगाम का ये चैनल भारतीय संस्कृति के वाहक है जो हमारे संस्कारों को विदेशी में बसे परिवारों तक पहुँचाने का काम करते है। मोबाइल व सैटेलाइट फोन की सुविधाओं ने विभिन्न देशों के बीच की दूरी को कम कर दिया है। याहू जी-मेल स्काईप से विडियो के द्वारा परिवार लगातार सम्पर्क में बने रह सकते हैं। ऐसे में भू-क्षेत्रीय सीमाओं तथा राष्ट्रीय सम्प्रभुता को नये सिरे से परिभाषित करने की जरूरत महसूस हो रही है। साइबर स्पेस के इस युग में ट्वीटर ब्लॉग आदि के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति, जिनका आदान-प्रदान, प्रसार तथा प्रतिक्रिया जानना आसान हो गया है। विचारों 'को मिली यह स्वतंत्रता ही विश्व भर में क्रान्ति के लिए जिम्मेदार है फिर चाहे वो शिया और ट्यूनीशिया में लोकतंत्र की मांग हो या फिर भारत में भ्रष्टाचार या महिला उत्पीडन के विरूद्ध आन्दोलन। ये वो माध्यम है जिसने हर उस, वर्ग व लिंग के लोगों को एकजुट होकर अपने हक के लिए खडे होने का आधार प्रदान किया है। इन पर न तो किसी राष्ट्र या उनकी सरकारों का नियंत्रण पूरी तरह संभव है और न ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का। स्पष्ट है व्यक्ति के अभिव्यक्ति के अधिकर पर स्थापित वर्जनाएं टूट रही है।

भूमण्डलीकरण का प्रभाव न केवल यहाँ तक है बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक भी हैं जिससे उपभोक्ताओं के एक समूह का प्रभाव विश्वव्यापी हो जाता है। आज पिज्जा, मैक्डोनाल्ड कोका व के.एफ.सी. की संस्कृति उसी का परिणाम है, वहीं पाश्चात्य पाकशालाओं में भारतीय तथा अन्य विधाओं का भी इसी वैश्वीकरण की प्रक्रिया की देन है। जींस व टीशर्ट आज आम पहनावा बन गया है जिसमें न तो लिंग भेद है और न ही राष्ट्रीयता का। समाज में 'लिव-इन रिलेशन' या विवाह पूर्व सम्बन्ध सभी पाश्चात्य वैश्वीकरण का नतीजा है। दुनिया भर में खान-पान रहन-सहन पहनावे, रीति-रिवाज, संस्कार व सभ्यता में एकरूपता आती जा रही है। भ्रमण तथा पर्यटन संस्कृति के वाहक बन गये हैं और संचार माध्यमों से इस पूरी प्रक्रिया को काफी गति मिली है। संक्षेप में, दूसरे को प्रभावित करने के लिए उन पर पूर्ण भौतिक कब्जे की आज आवश्यकता नहीं है। भूमण्डलीकरण उपनिवेशिक व्यवस्था का ही आधुनिक रूप है जो व्यक्ति और स्थानीयता के स्थान पर पूरे विश्व पर अपना एकाधिकार जमाना चाहता है।

2.4 भूमण्डलीकरण एक समीक्षा

मुड़कर देखे तो दो सदी के औद्योगीकरण तथा पिछले दो दशकों के वैश्वीकरण के परिणाम सार्थक नहीं रहे है। इसने असमानता के अर्थशास्त्र को बढ़ावा दिया है जिससे अमीर व गरीब की आमदनी के बीच अंतर का अनुपात बढा है। कमरतोड़ मेहनत के बावजूद दुनिया की अधिकांश जनता को निम्नस्तरीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। आज भी विश्व की 80 प्रतिशत जनता विकासशील देशों में रह रही है और अपनी ही जेब से विकसित राष्ट्रों की 20

प्रतिशत जनता के उत्तरदायित्व हीन व्यवहार का परिणाम भुगत रही है। व्यापार में प्रतिस्पर्धात्मक निर्यात उद्योगों का निरन्तर उदय हो रहा है तथा सृजन की दृश्टि से देखें तो महिलाओं को भी रोजगार के अवसर मिल रहे हैं। उनकी निर्यात क्षेत्र के हिस्सेदारी नब्बे प्रतिशत, तो कुल औद्योगिक श्रम में उनका प्रतिशत चालीस प्रतिशत है। सेवा क्षेत्र जैसे-नर्सिंग, कॉल-सेंटर, रिसेप्शन, टूर-ऑपरेटर, गाइड, बुकिंग व बैंकिंग में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ी है। फिर भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कैसे इन्हें उपेक्षा, अलगाव व शोषण से बचाया जाये।

दो दशकों के आर्थिक वैश्वीकरण ने विश्व को एक छोटे गाँव(Global Village) में परिवर्तित कर दिया है जिसका प्रभाव पूरे विश्व पर महसूस भी हो रहा है। एक तरफ जहाँ जीवन स्तर तथा उसकी गुणवत्ता में वृद्धि हुई है और सांस्कृतिक सहभागिता बढी है, वहीं शोषण, कुपोषण, एड्स, पर्यावरण असंतुलन, ग्लोबल वार्मिंग व प्रदूषण जैसी समस्याऐं बढ़ी है जिनका केवल मिल जुलकर ही सामना किया जा सकता है। एक अध्ययन के अनुसार वैश्वीकरण के अपने विरोधाभास है यह कुछ का पोषक है तो अन्य का शोषक। यह सार्वजनिक लाभ के स्थान पर व्यक्तिगत लाभ से ही प्रेरित है। परिणाम यह है कि यद्यपि पहले की अपेक्षा खाद्यान्नों का उत्पादन तो दो गुना हुआ है यहाँ तक की दुनिया की सारी जनता का पेट दो बार भरा जा सके, परन्तु फिर भी आज पहले से ज्यादा लोग भूखे व नंगे है और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। अन्न का उचित दाम न मिलने पर समृद्ध देशों द्वारा या तो जानवरों को खिला दिया जाता है या समुद्र में फेंक दिया जाता है या फिर भण्डारण की सही व्यवस्था न हो पाने के कारण खाद्यान्न खुले में स्टेशन आदि पर सड़ता है। निष्कर्ष यह है कि 'मुक्त बाजार' की व्यवस्था वैश्विक भुखमरी का कारण है।

कृषि उत्पादन के क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन आये है। सरकार द्वारा 'सेज- (SEZ : Special Economic zone) की स्थापना करने से कृषि योग्य भूमि में निरन्तर कमी आई है। कई स्थानों पर नंदीग्राम व सिंगूर (प. बंगाल) तथा कलिंग नगर (ओडिसा) में किसानों ने इस का विरोध किया है। खेती में पैदावार घट रही है और उत्पादन का सही मूल्य न मिल पाने या फिर सही उपज के अभाव में किसान आत्महत्या कर रहे है। खेती का कार्य जैविक विविधता तथा पशुओं पर निर्भर होने की बजाय रसायन व मशीनों पर निर्भर होता जा रहा है। अवसरों की कमी से गांव से शहर की ओर पलायन बढ रहा है, जिस कारण शहरी सुविधाओं के तंत्र पर दबाव बढ़ गया है। रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध न होने से अपराधवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई है सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। वर्तमान अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका सामान के आवागमन के संसाधनों की (Logistic) भी है। आज हम उन वस्तुओं का उपयोग करते है जिनका उत्पादन हमसे आधी दुनिया दूर हुआ है। हाल में हुआ एक अध्ययन बताता है कि अमरीका में ' खाने का एक ग्रास' व्यक्ति के मुख तक पहुँचने से पहले लगभग 1300 मील की दूरी तय कर चुका होता है।

निष्कर्ष यह है कि व्यापार का गणित इतना बिगड़ चुका है कि स्थानीय स्तर के उत्पादन का मूल्य, निर्यातित वस्तु के मूल्य से ज्यादा है। पूरी व्यवस्था इतनी बिगड़ चुकी है कि हम उन्हीं वस्तु का आयात करते हैं जिसका हम निर्यात भी करते हैं। इसलिए विश्व स्तर

पर खाद्यान्नों की सम्प्रभुता के लिए आवाज उठने लगी है, लोग मांग कर रहे है कि खाद्य व्यवस्था पर उनका नियंत्रण हो।

वर्तमान में कई ऐसे लेख और रिपोर्ट आ रहे हैं जिनमें इस बात का उल्लेख है कि भूमण्डलीकरण असफल हो गया है, उसका प्रभाव कम हो रहा है और वो पीछे की ओर लौट रहा है। विकासशील राष्ट्रों में से कुछ जैसे- इक्वाडोर और बोल्वियाया, वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए स्थानीय स्तर पर अपने वैकल्पिक प्रयास कर रहे है। ऐसे में जरूरत हैं भूमण्डलीकरण के विचार की पुनर्समीक्षा की क्योंकि यह प्रक्रिया अपने आप में बुरी नही, परंतु जिस रूप में इसे अपनाया गया वो उचित नहीं। गाँधी स्वयं एक वैश्विक ' समाज की कल्पना करते थे 'वसुधैव कुटुम्बकम: से उनका दर्शन अनुप्राणित था। अत: आवश्यकता है भूमण्डलीकरण को गाँधी के नजरिये से देखने की।

2.5 गाँधी एवं भूमण्डलीकरण एक समीक्षा

गाँधी जी वास्तव में वैश्विक थे: अपनी सोच में, अपने विचारों की अभिव्यक्ति मे तथा उनकी व्यवहारिकता में। स्वयं इसी वैश्विक प्रवृति की उत्पत्ति थे; उनका जन्म भारत मे हुआ और उच्च शिक्षा के लिए वे लंदन गये और उनका प्रारंभिक कार्यस्थल दक्षिण अफ्रीका रहा। भारतीय नागरिकों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह का पहला प्रयोग भी उन्होने वही किया और बाद में भारत आकर यही के स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े। विदेशों में हुए विभिन्न अनुभवों ने उन्हे आने वाली परिस्थितियों के लिए तैयार करने मे काफी हद तक मदद की। उनके विचार टाल्सटॉय, थोरो और रस्किन जैसे लोगों से प्रभावित थे।

गाँधी ने स्वीकार किया है कि भूमण्डलीकरण एक पुरानी अवधारणा है ब्रिटिश से पहले, ग्रीक और हुण भी भारत आये थे परंतु अंत में वे यही का हिस्सा बन कर रह गए। गाँधी के अनुसार भारतीय समाज मे विविध सभ्यताओं का आपस मे सम्मिश्रण किसी भी रूप मे हमारे संस्कारों व संस्कृति के लिए खतरा नही बनेगा। हिन्द- स्वराज मे उन्होने कहा, 'मैं अंग्रेजों को भारत से नही भगाना चाहता हूँ पर अंग्रेजी सभ्यता व मानसिकता को भारत से बाहर करना चाहता हूँ। अंग्रेजी सभ्यता भौतिकतावाद से अनुप्राणित है जो सही नहीं है। उसका स्थान भारतीय सभ्यता को ले लेना चाहिये क्योंकि यह एक ऐसी सोच पर आधारित है जहाँ आध्यात्मिक विकास को मूल माना गया है। गाँधी के विचार है कि हमारा सबसे बड़ा शत्रु न तो बाहर है और न ही अजनबी, हम स्वयं, हमारी इच्छाएँ ही हमारी सबसे बड़ी शत्रु हैं। ऐसी सभ्यता जो हमे आत्मकेन्द्रित बना दे गलत है। 'सभ्यता' इच्छाओं व भौतिक तत्वों के गुणा-जोड़ में नही बल्कि जानबूझ कर स्वाभाविक रूप में अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने में है, उसी में सर्व कल्याण निहित है।

वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सही संदर्भों में देख और समझा जाना चाहिए। आज की हकीकत यह है कि लोगों को वैश्विक बनने की दिशा में प्रेरित नही किया जा रहा है वरन् प्रयास यह है कि व्यापार और निर्यात के मार्ग में आने वाली बाधाओं को समाप्त कर दिया जाये जिससे बिना रोक टोक के पूंजी का एक जगह केन्द्रीकरण हो सके। इसलिए गाँधी की सार्थकता और कभी शायद उतनी नही होती जितनी आज है। समय की बदलती गति के साथ

हम परमाणु संघर्ष से विनाश तथा पर्यावरण असंतुलन के ओड़ अधिक करीब आते जा रहे है। घटते संसाधन, बढती प्रतिस्पर्धा, आर्थिक व सामाजिक अन्याय, भय व असुरक्षा की बढ़ती भावना तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद वो समस्याऐं है जिनकी उपज तो भूमण्डलीकरण में है परंतु जवाब उसके पास नही। वैश्विक स्तर पर संसाधनों की उपलब्धता मानव जीवन की उत्कृष्टता को नष्ट कर रही है, गरीबी को बढ़ावा दे रही है और अन्यायपूर्ण कार्यशैली का निर्यात कर रही है, यह संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को प्रेरित कर रही है भोजन को वस्तु तथा खेती को उद्योग का रूप दे रही है। यह सब जल अनुपलब्धता, जल व वायु प्रदूषण तथा रसायनिकता को बढा रहा है। सरकारी व्यवस्था वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित नही कर पाती और यह सब टैक्स बढाने पर मजबूर करता है जो अंत में हिंसा व संघर्ष को जन्म देता है।

समय के साथ गाँधी के सामाजिक पुननिर्माण व आर्थिक नियोजन पर विचारों की बार-बार समीक्षा हुई है। वे स्वयं अर्थशास्त्र के ज्ञाता नही थे पर उनके आर्थिक विचार, व्यक्ति और समाज पर उनके विचार से प्रभावित थे। आध्यात्मिकता गाँधी के चिंतन में शाश्वत है और गाँधी का समाजवाद उसे से प्रेरित है। उनका कथन था 'जिस प्रकार मानव शरीर मे सिर शीर्ष पर होने के कारण ऊँचा नहीं और पैर, क्योंकि जमीन से छूते हैं, नीचा नहीं माना जा सकता, उसी तरह समाज में प्रत्येक व्यक्ति बराबर है। उनका समाजवाद मानव जीवन तथा सामाजिक संबंधो के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण रखता है और अपने आप में एक सम्पूर्ण व्यवस्था है। उन्होंनें विश्व समस्याओं का हल नही बल्कि उनसे जूझने का मार्ग बताया। वे उन लोगो के लिए प्रेरणा के स्त्रोत है जो वाकई कार्य करके बदलाव लाना चाहते हैं जिससे आगे व्यवस्था बेहतर हो।

गाँधी के विचारों में बहुत कुछ ऐसा है जिससे आज को जीवन के सुखमय व शांतिपूर्ण बनाने के लिए बहुत कुछ सीखा जा सकता है। दशकों पहले गांधी ने कहा था 'यह धरती सभी मनुष्यों की आवश्यकता पूरी करने मे समर्थ पर किसी के भी लालच को पूरा नही कर सकती। गाँधी का यह कथन बताता है कि वे मशीनीकरण के विरोधी थे, जबकि वास्तविकता यह है कि उन्होंनें कहा, 'मैं मशीनों का नही, मशीनीकरण की अंधी दौड़ का विरोधी हूँ क्योकि मशीनीकरण से हम श्रम से बच जाते है पर उसके परिणामस्वरूप हजारों लाखों लोग बेरोजगार हो कर सडक पर आ जाते हैं और भुखमरी के हालात पैदा हो जाते है। मशीनें कुछ लोगो को लाखों के सिर पर सवारी का अवसर प्रदान करती है और इससे पूंजी की केन्द्रीकरण होता है। गाँधी किसी भी ऐसी व्यवस्था के विरोधी थे तो शोषणवादी हो या व्यक्तिगत लाभ से प्रेरित हो। उनका गाँवों में कुटीर उद्योगों का समर्थन इसीलिए था क्योंकि वह गाँवों का आत्मनिर्भर बनाता है तथा सभी को रोजगार दिला कर शोषण से मुक्ति देता है वे न केवल विदेशी मिलों पर भारत की निर्भरता कम करना चाहते थे वरन् गाँवों की स्वदेशी कारखानों पर निर्भरता को सीमित करना चाहते थे। उन्हे मालूम था कि छुपी हुई राजकीय सहायता बड़े पूँजीपतियों और उद्योगों की मदद करती है और कुटीर उद्योगों के विकास में बाधक है। उन्होंनें हमेशा अर्थ को नैतिकता के साथ जोड़कर देखा। जब स्वदेशी से भारत का हर ग्राम आत्मनिर्भर व पूर्ण होगा, और केवल उन वस्तुओं का आदान प्रदान करेगा जिनका स्थानीय स्तर पर उत्पादन सम्भव नहीं, तब ही सही मायने में विकास होगा।

कई बार गाँधी के स्वदेशी के विचारों को पृथकतावादी तथा विदेशी तत्वों के प्रति घृणा रखने वाला माना जाता है, जो गलत है। सही संदर्भ में देखे तो आज सम्पूर्ण वैश्वीकरण की अवधारणा स्वयं विविधता व बहुलता से मेल नही खाती। वैश्वीकरण विविधता का नाश करती हैं पूरी तरह एकाकी नियंत्रण स्थापित कर स्वतंत्रता व स्वायत्ता को खत्म करती है। किसी भी जाति विशेष का समूल नाश और नैतिक मापदंडों का हास भूमण्डलीकरण की देन है। इसने न केवल मनुष्य को उसकी न्यूनतम सुरक्षा से वंचित कर दिया है बल्कि जीवन में घृणा, द्वेष व संदेह के बीज बो दिये हैं। इसके विपरीत स्वदेशी एक आत्मनिर्भर, सुरक्षित व आत्मस्वाभिमानी व्यवस्था है जो अपने आप में आत्मसंतुलन बनाये रखना जानती है।

ऐसा नही कि गाँधी हर उस वस्तु के विरोधी थे जो विदेशी है, उन्होंनें कहा I want the cultures of land to be blown above us freely as possible, but i refuse to be below of my feet क्योंकि वे भारतीय संस्कृति व परम्पराओं के घोर समर्थक व संरक्षक थे। उनका पाश्चात्य सभ्यता का विरोध शायद इसलिए था क्योंकि हम हर पश्चिम से आई चीज को श्रेष्ठ व उचित मानकर स्वीकार कर रहे थे जबकि भारतीय विकल्प भी उतने ही सही थे। आज अगर गाँधी होते तो वे उपभोक्तावाद की पश्चिमी संस्कृति का निश्चित तौर पर विरोध करते क्योंकि यह विचार आज पूरे समाज, विशेषकर शहरी मध्यमवर्ग को लील रहा हैं। बीसवीं शताब्दी में विश्व समुदाय विशेषकर भावी पीढ़ी, भूमण्डलीकरण की 'diet coke, flat screen TV and super express highways' वाली संस्कृति का हिस्सा है। व्यक्ति औरों से पहले खुद की सुविधाओं व स्वार्थ को रखता है जबकि होना इसका उल्टा चाहिए। परंतु इसका अर्थ ये नही कि गाँधी ने वैश्वीकरण की प्रत्येक गतिविधि का विरोध किया। कुछ मशीनें जो कार्य को सुविधाजनक बनाती है पर व्यक्ति को बेकार नही करती, उदा- सिलाई की मशीन, का उन्होने स्वागत किया। इसी तरह पर्यटन आदि क्षेत्रों मे वैश्वीकरण से मदद मिली है। भारत का योग का ज्ञान आज विश्व भर में स्वीकार्य है, वहीं शिक्षाविदों, संगीत व फिल्म आदि में भी भारत के योगदान को स्वीकार किया जा रहा है। गाँधी सही मायने में एक वैश्विक संस्कृति चाहते थे जो किसी भी प्रकार के एकाधिकारपूर्ण नियंत्रण से मुक्त हो। यही, उनके अनुसार, वैश्वीकरण की दिशा में पहला सही कदम होगा।

गाँधी के विचार यद्यपि उनके समय व परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया थे, परंतु आज के संदर्भों में उनके मापदंडों का पुन: निर्धारण करके उनसे आज भी प्रेरणा ली जा सकती है। उनका सर्वोदय का विचार कहता है 'सबका उत्थान' या एक ऐसी व्यवस्था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन व अवसर प्राप्त हों। सर्वोदय में सामूहिक हित में सबका हित निहित है। इस व्यवस्था का केन्द्र ऐसा व्यक्ति है जो अहिंसा का पुजारी है, सत्य व आत्मबलिदान द्वारा संचालित है। वह सम्पूर्ण के साथ छोटे-छोटे आत्मनिर्भर व स्वशासित जनसमूह में निवास करेगा, जो स्वयं स्वशासित व स्वपर्याप्त ग्राम होगें। ये ग्राम गणतंत्र के रूप में काम करेगें, जहाँ राजनीति का स्थान लोकनीति लेगी। ये एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसमे व्यक्ति, समाज, ग्राम, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्रवाद के बीच कोई अंतर नहीं होगा। यही सच्चे मायने में भूमण्डलीकरण होगा।

यह सब संभव तब होगा जब सामाजिक व्यवस्था एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था 'पर आधारित होगी, जिसमें राज्य के कार्य न्यून हो तो व्यक्ति की भूमिका स्वत: बढ जायेगी। गांधी का सर्वोदय का विचार तथा उनके बताये सिद्धांत सुखमय व शांतिपूर्ण वैश्विक व्यवस्था का आधार है। गाँधी ही सही में अर्थों मे वैश्वीकृत हैं ये इस बात से स्पष्ट है कि अमरीका में 1960 का 'सिविल राईट' आंदोलन, 1930 में भारत में गाँधी के आंदोलन की प्रतिध्वनि थी। गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन के नक्शे कदम पर चलते हुए मार्टिन लूथर किंग ने असंख्य मुश्किलों के बावजूद अश्वेतों के लिए समान अधिकार के आंदोलन को अहिंसात्मक रखा और सफल हुए। दक्षिण अफ्रीका मे जहाँ गाँधी का सत्याग्रह का पहला प्रयोग हुआ, नेल्सन मंडेला ने सरकार की भेदभाव पूर्ण नीति का विरोध अहिंसा के द्वारा किया। गाँधी, बिशप डेसमंड टूटू व आंग सू की के भी प्रेरणा स्त्रोत बने। उनकी नीति का सफल प्रयोग फिलिपींस, इण्डोनेशिया व थाईलैंड में भी किया गया। भारत में शासन से व्याप्त भ्रष्टाचार, के खिलाफ आवाज उठाने में भी अन्ना हजारे ने गाँधी के दर्शन का कारगर इस्तेमाल किया। परंतु अहिंसा से गाँधी का अर्थ केवल हिंसा का अभाव नही था। अर्थशास्त्र के संदर्भ में इसका अर्थ है कि हमारी उत्पादन, व्यापार और, उपभोग की व्यवस्था ऐसी हो जो छोटी व सीमित हो, समाज, पर्यावरण या दूसरे जीवों के लिए विनाशकारी न हो। जब कभी भी हम अपने उपभोग से अधिक प्रयोग में लेते हैं तो, गाँधी के अनुसार, हम हिंसा करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग तथा सामाजिक न्याय और इनके बीच का संबंध गाँधी के चिंतन का मूल आधार है। अहिंसा की सफलता के प्रति, हो सकता है सभी आशान्वित न हों, परंतु ब्रिटिश शासन के विरूद्ध गाँधी ने इसका सफल प्रयोग किया। दुनिया भर में 'ग्रीन पीस' 'फ्रेण्डस ऑफ अर्थ' आदि समूह अहिंसा के द्वारा ही पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सफलता पूर्वक काम कर रहे हैं।

आज जीवन में आदमी असंख्य झूठ के सहारे चल रहा है हर कदम पर आम आदमी ही नही राजनीतिज्ञ व आला अफसर झूठ के सहारे चल कर जनता को गुमराह कर रहे है, जिसके लिए समय आने पर जवाबदेही जरूरी है। जबकि सच की राह सीधी, सहज, व सम्मानित है, जहाँ पलट के जाने की आवश्यकता नहीं। पर इसके लिए विशेष साहस की जरूरत हैं जिससे व्यक्ति दूसरों के लिए धैर्य, सहनशीलता मुश्किलों का सामना करना सीखता है। गाँधी के अनुसार भय से मुक्ति के द्वारा मन से दूसरों के प्रति हिंसा का भाव खत्म हो जाता है; यह भूमण्डलीकरण की तरफ एक कदम है। वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के विकास से कामगारों के छोटे कार्य समूह हाशीये पर आ गये है। अति उत्पादन से उत्पन्न इन अन्तर-व्याप्त संकटों को गाँधी ने पहले ही महसूस कर लिया था और ऐसे में 'स्वदेशी' ही उसका सही उत्तर था।

स्वदेशी हमारे अंदर की वह चेतना हैं जो हमें स्वयं से पहले पडौसी को आवश्यकता पूरी करने को प्रेरित करती है, और दूर की अपेक्षा अपने आस-पास उपलब्ध वस्तुओं से आवश्यकता पूरी करने पर जोर देती है। गाँधी ने कहा कि दूर से प्राप्त वस्तुओं का उपयोग अवांछनीय भी है और अतार्किक भी। मोहम्मद युनुस, बंग्लादेश के बैंकर, ने कहा है कि जब तक विश्व की 60 प्रतिशत जनता मात्र 6 प्रतिशत आय पर निर्वाह करती रहेगी विश्व में कभी शांति की स्थापना नही हो सकती। संसार में कुछ लोगों का लालच, वस्तु के संग्रह व अति उपयोग को जन्म देता

है और ऐसा वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था का दुष्परिणाम है। गाँधी का अस्तेय का विचार कहता है कि प्रकृति से हमे केवल आवश्यकतानुसार लेना चाहिए लालच तो उपभोक्तावादी संस्कृति का वो अपराध है जो व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करता है। स्वदेशी और अस्तेय से वैश्वीकरण के नाकारात्मक प्रभाव को रोका जा सकता है। व्यापार और उद्योग का उद्देश्य समाज व पर्यावरण को नुकसान पहुँचाना नहीं बल्कि समाज की जरूरतों को पूरा करना है। निष्कर्ष यह है कि हमें अर्थ व्यवस्था में उत्पन्न होने वाली असमानता को दूर करके विकेन्द्रीकृत स्वायत्तवादी जीवनशैली को अपनाना होगा।

गाँधी का स्वराज हमे सिखाता है कि प्रकृति की भाँति हमारे जीवन में सब कुछ स्वनियंत्रित तथा स्वसंचालित होना चाहिए। गाँव शासन का पहला पायदान है और हमे आदेश ऊपर से नहीं प्राप्त करने, बल्कि शासन का नियंत्रण नीचे से होना चाहिए। इससे सृजनात्मकता, विविधता व नूतनता का विकास होगा। गांव के ऊपर छोटे प्रांत, राष्ट्रीय सरकार क्षेत्रिय संगठन और फिर विश्व सरकार, का विकास होगा। इस विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में सबसे अधिक शक्ति नीचे होगी। गाँधी के विचारो में आधुनिक केन्द्रीकृत नियंत्रण सफल परिवर्तन में बाधक है जो व्यक्ति में से जिम्मेदारी व काम की वो उत्कंठा छीन लेता है जो उसके समुदाय की आवश्यकता को समझने के लिए जरूरी है।

सर्वोदय गाँधी के चिंतन का केन्द्र है, उसका संबंध प्रकृति से है यह हमें वृक्ष, पक्षी, पशु, मनुष्य कीडे-मकौड़े सबसे स्नेह करना सिखाता है क्योंकि प्रकृति हम सब की आवश्यकता पूरी करती है परंतु सारी इच्छाओं की नहीं। गाँधी औद्योगीकरण वाली उपभोक्तावादी संस्कृति की आलोचना मुख्यत: इसलिए करते थे क्योंकि इसमें विकास के साथ प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की गति भी बढ़ी हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ सरकारों के पर्यावरण संरक्षण के हर प्रयास को दर किनार कर अपना लाभ बढ़ाना चाहती हैं। ' गाँधी पर्यावरण संतुलन के पक्षधर थे। सीमित उपभोग के द्वारा ही हम अन्य सभी जीवधारियों को उनके अनुसार जीवन का अवसर प्रदान कर सकते है, और इस तरह मनुष्य व अन्य जीवों के बीच टकराव को उत्पन्न होने से रोक सकते है। विविधता और बाहुलता, गाँधी की अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था का विशेष गुण है। अगर हम दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करते, तो हम न केवल उनके अधिकार बल्कि उनके जीवन, सभ्यता, संस्कृति, व्यापार तथा व्यवसाय को भी सुरक्षित रख सकते हैं।

2.6 सारांश

कई दशक पहले शूमाकर ने अपनी पुस्तक 'small is beautiful' में भूमण्डलीकरण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए टिप्पणी की थी कि हम अतिवादी व मुश्किल व्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं जो हिंसा को जन्म देगी। अत: सुखी व शांतिपूर्ण जीवन के लिए यह जरूरी है कि हम बडे नहीं छोटे की ओर, श्रम की बजाय सामान्य की ओर, श्रम की बजाय पूंजी बचाने का प्रयास करें और अहिंसा पर जोर दे। लाभ का तत्व, मानवता व इस सृष्टि को साम्यवादी अवस्था से बाहर लाकर खडा कर देता है। अत: वस्तु की अपेक्षा पुन: व्यक्ति पर जोर देना होगा। यह जरूरी है कि हर वस्तु का मूल्य व्यक्ति की खुशी, स्वास्थ्य और सृष्टि के अस्तित्व

के संदर्भ में देखा जाये। गाँधी के चिंतन में भी यहीं मानव कल्याण के तत्व प्रमुख हैं और यही भूमण्डलीकरण मे हमारे विकास को अहम बिंदू होना चाहिए।

हमें हमारे दिमाग को राष्ट्रवाद, नस्ल या जातिवाद, रंग-भेद या लिंग भेद आदि से मुक्त करना होगा क्योंकि हम सब, सारे जीवधारी परस्पर आत्मनिर्भर हैं। कहीं का भी असंतुलन जीवन में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। 'अद्वैत' का सिद्धान्त हमें यही बताता है कि विश्व में सत्ता 'दो' की नही 'एक' की है। मनुष्य इस पूरे ब्रह्माण्ड का ही हिस्सा है। जिसे आमतौर पर भूमण्डलीकरण कहा गया वह विश्व के संसाधनों व मानव संसाधनों का पूरा उपयोग करने की स्वतंत्रता थी। जबकि गाँधी का भूमण्डलीकरण से अर्थ न केवल मानवता के एकीकरण से था बल्कि सभी जीवधारियों की एकात्मकता से था। गाँधी का विचार है 'सोच वैश्विक', हो, पर उसकी क्रियाशीलता स्थानीय हो'। इसके विपरीत आधुनिक भूमण्डलीकरण की सोच स्थानीय व लाभ की है जिसे वो विश्व स्तर पर लागू करना चाहते है। सारे समीकरण व्यक्तिगत लाभ के हैं और जैसे ही लाभ का उद्देश्य पूरा हो जाता है, वैश्विकता की भावना समाप्त हो जाती है। इसके लिये वैश्वीकरण की ओर सही कदम उठाने की ज़रूरत है। इसका उदाहरण हो सकता है हर बारह वर्ष में होने वाला 'कुंभ मेला' - न कोई औपचारिक निमंत्रण, 'न देशी- विदेशी का अंतर, सभी उस, सभी धर्म, समुदाय, वर्ग के लोग, न केवल भारत बल्कि देश-विदेश के नागरिक, मन में आस्था व श्रद्धा का असीम उत्साह और उत्कंठा, मन में मोक्ष दायिनी गंगा में संगम स्थल पर स्नान की। यह है वैश्वीकरण सभ्यता-संस्कृति का अनूठा संगम।

ऐसे में पहले जरूरत है 'राष्ट्र को सही रूप में परिभाषित करने की क्योंकि यही शब्द सबसे अपर्याप्त रूप में परिभाषित है। मनुष्य ने असंख्य टेढी-मेढ़ी रेखायें खींच कर देशों की सीमाएँ निर्धारित कर दी और विभिन्न समुदायों को उसमें बांध दिया। कल तक एक इतिहास का हिस्सा बने राष्ट्रों को हमनें दो टुकड़ों में (भारत-पाकिस्तान) बांट दिया। कल तक जिन लोगों ने साथ-साथ विदेशी शत्रु का मरते दम तक सामना किया, आज वे ही हिन्दुस्तानी पाकिस्तानी बन कर एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं। यह हालत केवल भारत की नहीं, असंख्य अन्य देशों की है। कब तक और क्यों हम ऐसी असंगत बातों को स्वीकारते रहेंगे। आज हमारे सामने ऐसी अनगिनत समस्याऐं हैं जिनका एकजुट होकर हल ढूंढना होगा भूमण्डलीकरण एक दुधारी तलवार हैं, इसके उचित प्रबंधन से ही सबको उचित अवसरों का लाभ मिल सकता है। राजनीतिज्ञों, सरकारों व कॉरपोरेट जगत में सभी को जिम्मेदारी उठाने की जरूरत है। जरूरी है कि वे अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति करें। अपने छोटे-छोटे स्वार्थ त्याग कर वैश्विक सोच विकसित करने की जरूरत है और यही बार-बार गाँधी ने दोहराया है। आज संतोष इस बात का है कि अगर वैश्वीकरण के विरूद्ध असंतोष है तो इसके आंदोलन अहिंसात्मक हैं।

क्या भूमण्डलीकरण व गाँधी दर्शन परस्पर विरोधी हैं ' शायद नहीं, अंतर बस इतना हैं कि भूमण्डलीकरण को प्राप्त करने की उनकी सोच अलग है। गाँधी के विचार कुछ अव्यावहारिक, तो कुछ आदर्शवादी लग सकते हैं, लेकिन फिर भी आधुनिक वैश्वीकरण से उत्पन्न समस्याओं का हल उनकी सोच में विद्यमान हैं। जरूरत है केवल उस दिशा में अथक, सतत प्रयासों की।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. भूमण्डलीकरण क्या है' इसके विभिन्न स्वरूपों का विवेचन करें।
2. भूमण्डलीकरण से किस प्रकार की समस्याऐं उत्पन्न हुई हैं?
3. गाँधी के दर्शन में भूमण्डलीकरण का क्या स्वरूप क्या है?
4. गाँधी के अनुसार भूमण्डलीकरण को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम. के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम. के. गाँधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1963
3. एम. के गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1997
4. एम. के. गाँधी, सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2012
5. परेल, ऐंथॉनी, हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिग्न्स ऑफ एम. के. गाँधी, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस केम्ब्रिज, 1997
6. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ यू पी., दिल्ली, 1973
7. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986।
8. मिश्र, अनिल दत्त, चैलंजेस ऑफ 21 स्ट सेंचुरी गाँधीयन ऑल्टरनेटिब्स, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली 2003
9. मिश्र, अनिल दत्त, गाँधीयन अप्रोच टू कन्टेम्पोररी प्रोब्लमस, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
10. कुमार, प्रेम, गाँधी. ऐ ह्ममेनिस्टिक मॉडल, आकांशा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2010

इकाई - 3

आतंकवाद की समस्या एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आतंकवाद व हिंसा

3.3 गाँधी के विचार व अहिंसा की अवधारणा आतंकवाद एवं गाँधी

3.4 सारांश

3.5 अभ्यास प्रश्न

3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :-

- आतंकवाद की परिभाषा करना, उसकी प्रकृति को समझना व हिंसा और आतंकवाद के सम्बन्ध को जानना।
- गाँधी के विचारों को समझना और उनकी आदर्श व्यवस्था में अहिंसा की अनिवार्यता को पहचानना।
- आधुनिक आतंकवाद का स्वरूप और आतंकवाद जनित समस्या।
- हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि ऐसी वर्तमान समस्याओं का समाधान है? क्या वास्तव में
- आतंक और हिंसा से समस्या सुलझ सकती है?

3.1 प्रस्तावना

आज हम जब देश की तरक्की और बढ़ती हुई विकास दर की बात करते हैं तथा बढ़ती आमदनी के साथ कम्प्यूटर व मोबाइल क्रांतियों की चर्चा करते हैं तो कहीं टीस उठती है उन सामाजिक मान्यताओं व मूल्यों के टूटने की जो सदियों में बमुश्किल बनती हैं। सबसे बड़ी चिन्ता घर-परिवार और उसके जरिए समाज के टूटने की होती है क्योंकि घर-परिवार के साथ देश में जाति व धर्म के नाम पर बढ़ रहे हैं झगड़े, गरीब-अमीर के बीच की बढ़ रही है खाई और लुट रहा है आम आदमी का अमन-चैन। यकीन ही नहीं होता यह इंसान उन्हीं की संतान और उन्हीं का खून है जो बात करते थे नैतिकता की, धर्म की, सामाजिक एकीकरण और सौहार्द की। चारों ओर वर्चस्व है घोटालों का, भ्रष्टाचार का और लोकतंत्र के मंदिर में अनुलेखनीय घटनाओं का। बहस के अंत में निष्कर्ष केवल इतना है जितना भूख बढाओगे अपनो से दूर, बरबादी के उतने ही करीब होते जाओगे।

यही आज मानव जीवन की विडम्बना है कि जिसे हम अच्छा समझ रहे हैं, उन्नति मान रहें हैं वही कहीं अंदर ही अंदर, कुरेद कर हमें खोखला कर रहा है। साम्प्रदायिकता,

जातिगत गुटबंदी, भाषावाद, क्षेत्रवाद तथा उनके आधार पर पृथक राष्ट्र अथवा राज्य की बातें हमें विखंडन की ओर ले जाती हैं। आर्थिक व सामाजिक असमानता के कारण उपजा नक्सलवाद एक प्रकार से सरकार की सत्ता को चुनौती देने को तैयार है। मानव जीवन चहुं ओर हिंसक गतिविधियों से घिरा है, मनुष्य की बढती हुई इच्छाओं ने उसे एकाकी बना दिया है। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र में प्रतिद्वंद्विता बढी है और मनुष्य एक दूसरे का शत्रु हो गया है। हर व्यक्ति अपनी सोच और दायरे का विस्तार करने तथा प्रभाव क्षेत्र बढाने की कोशिश में है। इससे जीवन में प्रतिस्पर्धा बढी है, सामंजस्य व समरसता घटी है। जैसे समाज में रिश्तों का खून हो रहा है वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैचारिक, साम्प्रदायिक व जातीय मतभेद हिंसा को जन्म दे रहे हैं। ज्यों-ज्यों यह चक्र आगे बढ रहा है विश्व स्तर पर आतंकवाद का बढ़ना जारी है। आज जरूरत है हिंसा से प्रतिहिंसा की ओर बढ़ने वाले कदमों को रोकने की, और शांतिपूर्वक मतभेदों को समाप्त करने की।

3.2 आतंकवाद व हिंसा

राजनीति विज्ञान विषय के अध्ययनकर्त्ता के रूप में हमें यह ज्ञात है कि किसी भी विषय पर व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में हमेशा विचारों की एकरूपता नहीं हो पाती, अत: एक ही विषय पर विभिन्न दृष्टिकोण जन्म लेते हैं। इन से ही अलग-अलग विचारधाराओं की उत्पत्ति होती है। एक ही मुद्दे पर परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों से लोगों में मतभेद उत्पन्न होते हैं। किसी भी विचार का समर्थक अपने को सही मानकर दूसरे के विचारों को समझने का प्रयत्न भी नही करता। विचारों का यही संघर्ष जब अपने चरम पर पहुँचता है तो वह हिंसात्मक होकर आतंक का रूप लेता है। वैचारिक क्षेत्र में यह संघर्ष आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, जातीय व राजनीतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

आतंकवाद अपने आप में नया नहीं है। जब भी, अपनी सोच से तालमेल के लिए तथा जनमानस व सरकार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, कोई व्यक्ति या समूह किसी ऐसी हिंसात्मक घटना को अंजाम देता है कि जनता का, भयभीत हो कर, ध्यान उसकी ओर या उसके द्वारा उठाये गए मुद्दे पर जाये तो वह आतंकवाद कहलाता है। तथापि आतंकवाद को लेकर शैक्षणिक स्तर पर कोई आम सहमति नहीं है। वैश्विक समाज इस अपराध की कोई सर्वव्यापी परिभाषा नहीं कर पाया है क्योकि आतंकवाद राजनीतिक रूप से एक संवेदनशील मुद्दा है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1994 में आतंककारी गतिविधियों की भर्त्सना करते हुए, राजनीतिक संदर्भ में उसकी परिभाषा की कोशिश की :- 'कोई भी आपराधिक कृत्य जिसका उद्देश्य सामान्य जनता में राजनीतिक, दार्शनिक, वैचारिक या धार्मिक आधार पर भय और आतंक फैलना हो, जायज नहीं है और इसे आतंकवाद कहा जायेगा।

परन्तु Bruce Hoffman के अनुसार किसी भी संगठन या व्यक्ति को आतंकवादी मानना या कहना सापेक्षित है। यदि आतंकपीड़ित पक्ष के नजरिये से देखा जाये तो कृत्य निश्चित रूप में निंदनीय है; परन्तु यदि कृत्य को अंजाम देने वाले के दृष्टिकोण से समझें तो निष्कर्ष अलग है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी बात के दो पक्ष होते है और केवल एक

पक्षीय निर्णय नहीं लिया जा सकता। उदाहरण के लिए, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारी, ब्रिटिश सरकार की नजर में आतंकवादी थे परन्तु राष्ट्रवादियों के लिए सबसे बड़े राष्ट्रभक्त। इसी विरोधाभास से कभी अराजकतावादियों को, तो कभी राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों, समाजवादियों व रूढ़िवादियों को आतंकवादी कहा गया। इसी तरह कुछ लोग व्यवस्था का विरोध करने वाले संगठन तथा धार्मिक समूहों को भी आतंकवादियों की श्रेणी में रखते हैं। इन से अलग राज्यजनित आतंकवाद है जहाँ राजसत्ता आमजन में भय फैलाती है। संक्षेप में, आतंकवाद के विविध रूप -स्वरूप व उसकी सापेक्षता के कारण कोई भी ठोस परिभाषा कर पाना मुश्किल है।

आतंकवाद एक ऐसी आपराधिक गतिविधि है जो अपने प्रभाव क्षेत्र से इतर भी बहुत सारे लोगों को प्रभावित करती है। ऐसे हिंसात्मक कार्यो के द्वारा वे जनसामान्य, सरकार तथा दुनिया का ध्यान मुद्दों की ओर आकृष्ट करते हैं। इसी लिए वो ऐसे लक्ष्यों को चुनते हैं जिससे विरोध का सबसे व्यापक असर होता है। (उदाहरण के लिए 9-11 सितम्बर, 2001 को अमरीका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला तथा 26 नवम्बर 2008 को मुम्बई में ताजमहल होटल पर आतंकवादियों का तांडव)। ये आतंकवादी स्वयं अपने आप को वैध मानते हैं, जबकि आतंक पीडित व्यक्ति उन्हें ऐसे दुष्ट मानव के रूप में देखते हैं जिन्हें मानव जीवन की कोई कद्र नहीं है।

इक्कीसवीं शताब्दी ने तो आतंकवाद के दरवाजे खोल दिये है और विशेषकर 11, 2001 के बाद से तो हिंसा व आतंक छूत की बिमारी की तरह फैले हैं। आधुनिक युग में आतंकवाद व्यक्ति या समूह की अपनी प्रतिक्रिया नहीं है वरन् राष्ट्रीय सीमाओं से परे, संगठित व अनुशासित लोगों का समूह है जिनका अपना अलग दर्शन, नैतिकता और मूल्य होते हैं। हथियारों और संगठन के अलावा उनकी शक्ति उनकी सोच और चिंतन में होती है। आतंकवाद आज एक व्यवसाय के रूप में फैल रहा है। आतंकवादी संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नवयुवकों की भरती करते हैं। इसके लिए वे न केवल बेरोजगारों को आसान तरीके से पूंजी, हथियार और विदेश भ्रमण के साधन उपलब्ध कराते हैं वरन् आकस्मिक शक्ति प्रदान कर उन्हे दिशा भ्रमित भी करते हैं और अपने मकसद को पूरा करने में कामयाब हो जाते हैं। आज आतंकवाद ने अपनी एक विश्वस्तरीय पहचान बना ली है। आतंकवादी, सामूहिक हिंसा के द्वारा, आम जनता में भय का संचार करते है। ऐसा वो सत्ता में बैठे लोगों का ध्यान आकृष्ट करते है जिससे उनके अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हो सके। उनकी गतिविधियाँ पूरी तरह हिंसात्मक होतो हैं और उनके कुछ संगठन, जैसे 'अलकायदा' और 'तालिबान' आदि ' सत्ता राज्य के बराबर ही हैं। कुछ मामलों में राज्य स्वयं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, राज्य-समर्थित ' तथा प्रतिक्रियात्मक आतंकवाद का स्त्रोत बन गया हैं। आतंक के मामलों में अधिकतर हिंसा का प्रयोग राज्य के विरूद्ध ही होता है। इस के विपरित अधिनायकवादी राज्य में स्वयं राज्य ही आतंक के लिए जिम्मेदार होता है। इन सब का अंत अहिंसा में विश्वास के द्वारा ही सम्भव है।

3.3 गाँधी के विचार तथा अहिंसा की अवधारणा

गाँधीजी के विचार कोई 'वाद' नहीं हैं। उनका विचार अपने पीछे किसी सम्प्रदाय को छोड़कर जाने का नहीं था और न ही उन्होने किसी सुसम्बद्ध दर्शन या विचारधारा का निर्माण

किया है। केवल अपने समक्ष उपस्थित होने वाली समस्याओं का समाधान किया है। यद्यपि वे हिन्दू धर्म के समर्थक ' तथापि उनके विचारों में संकीर्णता और हठधर्मिता नहीं थी। उन्होने विश्व के अन्य सभी धर्मो से ग्रहण करते हुए सभी तत्वों को स्वीकार किया जो मनुष्य के लिए श्रेष्ठतर थे। धर्म के प्रति अडिग आस्था रखते हुए उन्होने धर्म और नैतिकता में कोई अंतर नहीं किया। धर्म मनुष्य की समस्त क्रियाओं को नैतिक आधार प्रदान करता हैं। ईश्वर के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्होने लिखा, ' 'मेरी दृष्टि में ईश्वर परम सत्य एवं प्रेम है वह मूल तत्व है।"

उनके विचारों में सत्य का सतत् अन्वेषण है; बुराई से संघर्ष करने में ' साधनों का प्रयोग, साध्य एवं साधनों की पवित्रता पर बल, व्यक्ति तथा समाज का नैतिक पुनर्निर्माण है। टॉलस्टॉय की कृति 'स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है' को पढ़ने के बाद' गाँधी ने स्वयं स्वीकार किया कि 'इस पुस्तक के अध्ययन ने मेरी समस्त शंकाओं को दूर कर दिया और मुझे अहिंसा में दृढ विश्वास करने वाला बना दिया।"

गाँधी जी के विचार में मानव जीवन का परम लक्ष्य आत्मानुभूति है जिसका अर्थ है निरपेक्ष सत्य का ज्ञान। यह भी उसे एकांत में रह कर नहीं वरन् समाज में रहकर इस शर्त पर प्राप्त होगा कि उस में आत्मत्याग की भावना हो। यही भावना उसे समाज के हित में व्यक्तिगत हित का बलिदान करने की प्रेरणा देगी। स्वयं गाँधी ने लिखा है, ' 'जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा, बिल्कुल उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी। यह नियम निरपवाद है। " इसलिए यदि साधन पवित्र नहीं है तो साध्य भी पवित्र नहीं हो सकता है। अत: उन्होने पातंजलि के आत्मशुद्धि के साधन पाँच यम क्रमश: सत्य, अहिंसा, ब्रहमचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह को स्वीकार किया। इन से मानव चित्त निर्मल होगा तथा आत्मा को बल मिलेगा। इसके साथ ही उन्होने छ: नियम जोडे थे-अस्वाद निर्भीकता, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म- समानता, स्वदेशी का व्रत तथा अस्पृश्यता का निवारण। उन यम और नियमों का पालन करने वाला सत्याग्रही निश्चित तौर पर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। राज्य में, ऐसा व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा। वह शासन इस प्रकार से करेगा कि वह अपने पड़ौसी के लिए कभी बाधा नहीं बनेगा।

गाँधी जी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे अत: अहिंसा के आधार पर एक नवीन आदर्श समाज या राज्य का निर्माण करना चाहते थे। उनका आदर्श राज्यविहीन लोकतंत्र था क्योंकि वे राज्य को नैतिक, दार्शनिक, आर्थिक व ऐतिहासिक दृष्टि से निरर्थक मानते थे। राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करता है, उसकी मौलिकता को नष्ट करता है जबकि मानव जीवन का लक्ष्य आत्मानुभूति है जो उसे स्वतंत्रता से ही प्राप्त होती है। गाँधी ने लिखा है कि 'राज्य कानून के द्वारा मानव व्यक्तित्व का विनाश करके मानव जाति की अधिकतम हानि करता है'। आगे उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य हिंसा का केन्द्रिय व- संगठित रूप है। व्यक्तियों में आत्मा होती है, पर राज्य आत्माहीन यंत्र है। वह हिंसा पर जीवित रहता है और उसे हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति हिंसा से हुई है। राजनीतिक सत्ता से उनका तात्पर्य है - राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की क्षमता। जब व्यक्ति स्वयं ही नियमित व आत्मानुभूति हो जाये तो प्रतिनिधित्व की भी जरूरत नहीं होगी। यह स्थिति ज्ञानमय अराजकता

की होगी क्योंकि समाज का निर्माण विकेन्द्रीकरण एवं स्वेच्छापूर्ण सहयोग पर आधारित होगा। इसकी विशेषता होगी स्वतंत्रता एवं समानता, जहाँ आखिरी व्यक्ति पहले व्यक्ति के बराबर होगा। यह समाज अहिंसक होगा, समाज में आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होगा, समाज में संरक्षणता होगी जिससे सब कुछ का प्रयोग सभी के हित में होगा। उनकी उस अहिंसक व्यवस्था में कोई भी तन्दरूस्त आदमी, जिसने ईमानदारी से कुछ भी नहीं किया हो, कुछ भी पाने का अधिकारी नहीं होगा।

सत्य का उपासक बिना सम्पूर्ण समर्पण के कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता और यह सम्पूर्ण अहिंसा पालन के द्वारा ही होगा। सत्य में अहिंसा छिपी है और अहिंसा में सत्य, दोनों एक सिक्के के दो रूख हैं। सत्य और अहिंसा का पालन करने वाला परिग्रह नहीं करता, वो केवल अधिक पूंजी का संरक्षण करता है। आज संरक्षणता का सिद्धान्त चाहे कल्पना लगे परन्तु यह भी सच है कि यदि राज्य हिंसा के द्वारा पूंजीवाद को दबाने की कोशिश करेगा तो स्वयं हिंसा में फंस जायेगा और फिर अहिंसा का विकास नहीं होगा। अत: समाज में अहिंसा केवल व्यक्ति का गुण नहीं है अपितु एक सामाजिक गुण भी है। गाँधी जी ने अहिंसा को अर्थव्यवस्था के साथ भी जोडा है। ये उनका विश्वास है कि प्रकृति हर रोज उतना ही पैदा करती है जितना हमारी जरूरत है। लेकिन कुछ लोगों के संग्रह की प्रवृति से अन्य लोगों को अपने हक से वंचित होना पडता है - यह भी एक 'प्रकार की हिंसा है। ऐसी अर्थविद्या जिससे व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि हो, वो पापपूर्ण है। किसी देश के द्वारा दूसरे देश के शोषण की अनुमति या फिर मजदूर को योग्य मेहनताना न देकर, शोषण करना भी हिंसा का दूसरा रूप है। इसके लिये मशीनीकरण व बड़े स्तर का औद्योगीकरण जिम्मेदार है। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है। आर्थिक समानता पूंजी की असामनता के झगडे को मिटा देगी। " का विचार है कि यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है तो उसे बहुत सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना होगा क्योंकि यदि केन्द्रीकरण रहा तो उसे कायम रखने के लिये हिंसा जरूरी हो जाती है। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध तथा प्रतिद्वन्दता मुख्यत: औद्योगिक व्यवस्था का परिणाम है। भौतिकवादी सभ्यता भी शोषण व हिंसा की जड हैं। उन से मुक्ति का मार्ग है आर्थिक समानता, श्रम के लिए रोटी का सिद्धान्त, मशीनों का न्यून उपयोग तथा कुटीर उद्योगों का विकास।

सामाजिक स्तर पर हरिजनों के प्रति भेदभाव, स्त्रियों को शिक्षा, सम्पत्ति आदि अधिकारों से वंचित करना, विधवाओं के प्रति दुराग्रहपूर्ण व्यवहार, बाल-विवाह सभी चूंकि मानव मात्र की व स्वतंत्रता के अधिकार के विरूद्ध है अत: गाँधी इन्हें भी हिंसा के रूप में परिभाषित करते हैं। समानता को ' ने व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दोनों रूप में लिया। जिस समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य जाति, धर्म, सम्पत्ति, रंग के आधार पर भेदभाव हो 'वह समाज हिंसा पर आधारित माना जायेगा क्योंकि ऐसे में व्यक्ति को आत्मानुभूति का अवसर मिलना संभव नहीं होगा। राष्ट्रीय स्तर पर भी सभी राष्ट्रीय जनसमूह परस्पर समान हैं। जिस प्रकार राष्ट्रीय जीवन में व्यक्तिगत समानता आवश्यक है उसी प्रकार अन्तराष्ट्रीय जीवन में राष्ट्रीय स्वतंत्रता व समानता जरूरी हैं। एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्रीय जनसमूह के ऊपर राजनीतिक प्रभुत्व

स्थापित करना हिंसा है; साम्राज्यवादी का द्योतक है। गाँधी जी ने इसे सामाजिक अन्याय मानते हुये समानता की धारणा का निषेध कहा है।

3.4 आतंकवाद- एवं गाँधी

यदि विश्व पटल पर घटने वाली घटनाओं का विश्लेषण करें तो सितम्बर 11, 2001 के एकदम बाद गाँधी और अहिंसा के प्रति उनके आग्रह को अनुपयोगी मानते हुये आतंकवाद के विकल्प के रूप में बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु दूसरी तरफ प्रतिक्रिया स्वरूप 'आतंक के खिलाफ युद्ध तथा "zero percent tolerance to terrorism" जैसी अमरीकी नीति भी आतंकवाद को नियंत्रित करने में असफल रही। दो इस्लामिक राष्ट्रों पर आक्रमण और अमरीकी सैन्य नियंत्रण के पश्चात् भी, जिसमें हजारों अमेरिकी सैनिकों के साथ दसियों हजार इराकी व अफगानियों की जान गई, एक अन्तहीन इस्लामिक जिहाद का युद्ध शुरू हो गया। ऐसे में गाँधी और उनके चिंतन को दोबारा देखने और अध्ययन करने की जरूरत है।

यद्यपि आज कुछ परिस्थितियों में नीतिगत रूप में हिंसा का प्रयोग हो जाता है तथापि देखा जाये तो हिंसा का प्रयोग स्वयं अपने आप में आत्मघाती है - प्रयोगकर्ता के लिये भी और जिसके विरुद्ध हिंसा हुई उसके लिए भी। अहिंसा एक शाश्वत सत्य है जो अनादि है - समय व परिस्थिति के सारे बंधनों से मुक्त। हिंसा में मृत्यु है, एक प्रक्रिया का अंत है जबकि अहिंसा अजर अमर है।

जहाँ तक प्रश्न गाँधी जी का है उन्हें आतंकवाद कैसे भी और किसी भी रूप स्वीकार्य नहीं है, विशेष तौर पर तब जब पूरा विश्व विनाश और विध्वंस के ज्वालामुखी पर बैठा हो। गाँधी आतंकवाद पर प्रतिक्रिया और टिप्पणी से स्पष्ट है कि वे एक व्यवहारिक दृष्टिकोण के समर्थक थे। जब वे अफ्रीका से भारत वापस आये तो पूरा देश राष्ट्रवादी जन आंदोलन से जूझ रहा था जिसमें शक्ति का व्यापक भी हो रहा था। 1909 में मदन लाल ढींगरा ने लंदन में एक ब्रिटिश अधिकारी की हत्या कर उस घटना को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ा। क्रांतिकारियों का मानना था कि इस प्रकार की घटनाओं से आतंक फैला कर वे ब्रिटिश शासन को उखाड़ने व कमजोर करके भारत छोड़ने के लिये मजबूर करने में सफल हो जाएंगे। 1919 में अमृतसर में, ब्रिटिश सरकार ने देशवासियों के शांतिपूर्ण विरोध को हिंसात्मक तरीके से कुचला। उधर राष्ट्रवादियों में सुभाष चन्द्र बोस बंगाल में तथा पंजाब में गदर पार्टी के सदस्य, विदेशों से हथियार प्राप्त कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे क्योंकि उनका मत था कि केवल हिंसा के द्वारा ही ब्रिटिश सरकार की शक्ति को तोड़ा जा सकता है।

उनकी इस प्रतिक्रिया ने गाँधी के अहिंसा के प्रति विचारों को और अधिक दृढ़ता प्रदान की और उन्होंने क्रांतिकारियों के विचारों को राजनीतिक व्यवहारिकता के आधार पर चुनौती दी। अपना मत स्पष्ट करते हुये गाँधी ने कहा कि छुटपुट की आतंक फैलाने वाली हिंसात्मक घटनाओं से सफलता हासिल नहीं होगी। इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन का विरोध, भारतीय राष्ट्रीय चरित्र का हिस्सा बन जाना चाहिए। उनके ऐसे विचार 'हिन्द स्वराज्य ' में लिपिबद्ध हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य ही आतंकवाद (हिंसा) का विरोध है। गाँधीजी का तर्क था कि संघर्ष हमेशा दो स्तर पर होता है : व्यक्तियों के बीच तथा सिद्धान्तों के बीच। किसी भी विषय पर तर्क

करने वाले का अपना मुद्दा होता है और मतभेद एक ही मुद्दे पर अलग-अलग लोगों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण का होता है। अत: मतभेद या संघर्ष को समाप्त करने के लिये ऐसे मतभेदों को समाप्त करना जरूरी है। किसी भी विवाद या संघर्ष के समाधान के लिये अपने साथ-साथ विरोधी के पक्ष को भी जानना बहुत जरूरी है। ऐसे में गाँधी ने 'सत्याग्रह' को सबसे उचित माना है।

गाँधी जी ने स्पष्ट कहा है कि लक्ष्यों की पवित्रता, साधनों के औचित्य को सिद्ध नहीं करती, वरन् अंत में लक्ष्य और साधन एक ही हैं। अत: दोनों की पवित्रता उतनी ही आवश्यक है। अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम किसी भी हद तक गिर जायें यह गाँधीजी को स्वीकार्य नहीं था। अत: क्रांतिकारियों की हिंसात्मक गतिविधियों से यदि भारत स्वतंत्र भी हो जाता है तो भी इस तरह के 'हत्यारों के शासन' से हम कोई भी लाभ प्राप्त नहीं कर पायेंगे। उनके ऐसे विचार हमें आतंकवाद पर उनकी प्रतिक्रिया के करीब लाते हैं। गाँधी ने कभी भी कर्महीनता का पक्ष नहीं लिया और कायरता को नीचता माना। साथ ही उन्होंने कहा कि जहाँ कायरता और हिंसा के बीच चुनाव होगा वहाँ मैं हिंसा का चुनाव करूंगा क्योंकि वीरोचित हिंसा कायरपूर्ण अहिंसा से कहीं बेहतर है। स्पष्ट तौर पर राजनीतिक कारकों से प्रेरित आतंकवाद के विरूद्ध होने के बावजूद वे क्रांतिकारियों के प्रति सख्त नहीं थे। गाँधी का उनके प्रति दृष्टिकोण सहानुभूति का था प्रतिशोध का नहीं। उनके अनुसार आतंक का विचार गलत है स्वयं आतंकवादी नहीं।

उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उच्च नैतिक मूल्यों का पक्ष लेते हुये गाँधी ने कहा कि हिंसा केवल प्रतिहिंसा को जन्म देती है। यह तर्क कि 'आतंक का सामना केवल बल व शक्ति से ही हो सकता है, ' से गाँधी सहमत नहीं थे क्योंकि यह तो आतंकवादियों के स्तर तक गिरना होगा। ऐसी हिंसा व प्रतिहिंसा समाज के नैतिक चरित्र को भ्रष्ट कर देती हैं। युद्ध या संघर्ष में यदि विरोधी को शत्रु ही मान लिया जाये तो आगे बातचीत या समझौते की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती और ऐसे में समस्या सुलझने के स्थान पर उलझ जाती है। इसलिए गाँधी जी ने आतंकवाद को रोकने के लिए सुझाव दिया कहा कि -

- हिंसात्मक कृत्य को मार्ग में रोको, यह प्रयास अहिंसक परन्तु सुस्पष्ट हो;
- आतंकवाद के पीछे छिपे मुद्दों को जानो और समझो तथा उन कारणों को दूर करो है;
- उच्च नैतिक मापदण्डों का निर्धारण करो।

3.5 सारांश

गाँधी जी ने अपने समय में उसी तरह से हिंसा और आतंकवाद का सामना किया था जैसा हम आज अनुभव करते हैं। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साम्राज्यवादी, राज्यजनित आतंकवाद का अहिंसा के द्वारा सफलतापूर्वक सामना किया। तमाम विरोधों के बावजूद उनका आंदोलन अहिंसात्मक रहा और सफल भी हुआ। अहिंसा और शान्ति ही आखिरकार सफलता का मार्ग खोलती है। उस युग में अहिंसा ही आतंकवाद को नियंत्रित व समाप्त करने का विकल्प है।

गाँधी जी के सिद्धान्तों के बारे में प्रश्न किया जाता है कि क्या ये वास्तव में सफल होंगे? आलोचकों का यह प्रश्न जितना उचित है उतना ही यह प्राप्त भी प्रासंगिक है कि क्या

पिछले दशक के दौरान हिंसात्मक साधनों के प्रयोग के द्वारा हम आतंकवाद को मिटाने में सफल हुए हैं' पिछले कुछ वर्षो का इतिहास, साक्षी है कि ऐसे कार्यो से मध्य पूर्व में जिहादी और आतंककारी गतिविधियाँ बढ़ी हैं। आज ये न केवल इस्लामिक राष्ट्रों तक सीमित है वरन् इनका प्रभाव वैश्विक है। कुछ समय पूर्व उत्तरी आयरलैण्ड में जिस तरह से अहिसंक साधनों (बातचीत व समझौतों) के द्वारा सदियों पुराने आतंकवाद को समाप्त करने में सफलता मिली वह गाँधी जी के अहिंसक विचारों की सार्थकता व व्यवहारिकता को प्रमाणित करता है। गाँधी जी का किसी भी विषय के विवाद या मतभेद पर यही दृष्टिकोण रहा है कि दोनों पक्षों को ध्यानपूर्वक सुना व समझा जाये। सवाल यह कि क्या ऐसी संवेदनशील प्रक्रिया कश्मीर या अरब इजराइल समस्या के समाधान के लिये नहीं अपनायी जा सकती है? शायद ऐसा किया जाना सम्भव है, परन्तु उसके लिये अहिंसा में सामान्य विश्वास की जरूरत है जरूरत है संकल्प, दृढ़ता तथा उसे लागू करने की प्रबुद्ध राजनीतिक इच्छा शक्ति की क्योंकि हिंसा का प्रयोग सफलता की कोई गारंटी नहीं देता।

जहाँ तक वैश्विक स्तर पर जिहादी युद्ध का प्रश्न है, यह न तो राज्य को प्राप्त करने की लडाई है और न ही उनकी कोई भौगोलिक सीमा निर्धारित है और न ही जिहादियों का कोई राजनीतिक स्वरूप निर्धारित है। जिहाद, विचार और विश्व व्यवस्था के बीच संघर्ष है, अर्थात् एक ही वस्तु को अलग-अलग नजरिए से देखने का परिणाम है। यही शत्रु व्यक्ति नहीं, विचारधारा है। ये विचार हमें गाँधी और उनके चिन्ता के बहुत करीब ले आती है और उसके सही होने का भी प्रमाण देते हैं। गाँधी के विचारों को आज के युग में कसौटियों पर यदि जाँचे तो अन्य घटनाओं की भांति, यहां भी, वे हिंसात्मक कृत्य को बीच में ही रोकने के पक्षधर थे। तर्क था कि वैधानिक जाँच के बाद किसी भी आतंकवादी कार्य को घटित होने से रोका जा सकता है। उदाहरणतः मध्यपूर्व एशिया में हिंसा और आतंककारी घटनाओं का विश्लेषण यदि हम करें तो यह नतीजा सामने आता है कि यही पारस्परिक मुसलमानों की इच्छा है कि उन्हें अमरीकी व यूरोपीय नियंत्रण से मुक्ति मिले, वहीं उदारवादियों का यह मत है कि उनकी सांस्कृतिक विविधता व मूल्यों को बनाये रखते हुए लोकतांत्रिक शासन की स्थापना हो। इन उद्देश्यों कि पूर्ति के लिए छोटे, मगर अहम, परिवर्तन किये जाने जरूरी है। ऐसा होने से अतिवादी व चरमपथियों का प्रभुत्व स्वत: घट जायेगा और हिंसात्मक आतंकवादी गतिविधियों पर नियंत्रण लगाने में भी सफलता हासिल होगी।

आतंकवाद को एक समय में हिंसक उन्माद की स्थिति से जोडकर एक मनोवैज्ञानिक व्याधि माना गया था। बाद में 'हमास' व 'अलकायदा' जैसे संगठनों के द्वारा आत्मघाती हमलों की बढती घटनाओं से यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में ऐसे हमले में धार्मिक हैं? क्या गरीबी की त्रासदी किसी को वाकई आतंकवादी बना सकती है या पूर्ण रूप में ना उम्मीदी कि स्थिति मनुष्य को आतंकवाद की ओर लाती है। सन् 2004 की रिपोर्ट में कहा गया कि गरीबी, जनसंख्या, मध्यपूर्व एशिया के संघर्ष के अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर धार्मिक पुर्नजागरण आतंकवाद का अहम कारण है।

इन कारण के अलावा दो अन्य बिंदू महत्वपूर्ण हैं.

- आतंकवादियों की अपने प्रति अन्याय की भावना।
- यह विश्वास कि हिंसा के द्वारा ऐसे अन्याय का प्रतिकार सम्भव है।

अत: कोई भी देश व समाज आज इनसे सुरक्षित नहीं और आतंकवाद सभी के लिए चिंता का विषय है। गरीबी, बेरोजगारी, अन्याय, भ्रष्टाचार व शिक्षा की कमी मूलत: इस के जिम्मेदार कारक तत्व माने जाते हैं। गाँधी के चिंतन में इन सारी समस्याओं का काफी हद तक समाधान है। उनके आर्थिक विकेन्द्रीकरण तथा गाँवों की आत्मनिर्भरता के विचार जहाँ गरीबी व रोजगार की समस्या का विकल्प है वहीं सामाजिक समानता, राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण तथा बुनियादी शिक्षा का सिद्धांत अन्याय, भ्रष्टाचार व अशिक्षा का समाधान है। एक पूर्णत: आत्मनिर्भर ऐच्छिक व परस्पर सहयोग पर आधारित दल विहीन लोकतंत्र समरसता का वो स्वरूप है जहाँ हिंसा का कोई महत्व नहीं हैं। विध्वंस तथा विघटन के इस दौर में गाँधीजी का चिंतन ही मार्गदर्शन करता है अन्यथा इतिहास में इक्कीसवीं शताब्दी को मानव सभ्यता के अंत की शुरूआत के रूप में जाना जायेगा।

3.6 अभ्यास प्रश्न

1. आतंकवाद की परिभाषा करते हुए भारतीय राजनीति के समक्ष चुनौतियों की व्याख्या करें।
2. आतंकवाद की समस्या के क्या समाधान हो सकते हैं? सुझाव दीजिए।
3. क्या गाँधी जी की अहिंसा की अवधारणा आतंकवाद की समस्या को सुलझाने मे सक्षम है' स्पष्ट करें।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम.के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम.के. गाँधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1963
3. एम.के. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1997
4. मिश्र, अनिल दल, चैलंजेस ऑफ़ 21स्ट सेंचुरी गाँधीयन ऑल्टरनेटिब्स, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2003
5. कुमार, प्रेम, गाँधी ऐ ह्ममेनिस्टिक मॉडल, आकांशा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2010

इकाई - 4

मानवाधिकार तथा गाँधी

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मानवाधिकार जागरूकता विषय की घटनायें

4.2.1 गाँधीजी को अपमानित करना

4.2.2 मिसेज रोजा पार्क को अपमानित करना

4.3 मार्टिन लूथर किंग तथा गाँधी की विचारधारा में समानता

4.4 गाँधी और मानवाधिकार

4.5 सार्वभौमिक घोषणा पर गाँधी का प्रभाव।

4.6 निष्कर्ष

4.7 अभ्यास प्रश्न

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप मानवाधिकार और गाँधी के इस संबंध में विचारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के उद्देश्य हैं : -

- उन घटनाओं के विषय में जाने जानकारी देना जो मानवाधिकारों से संबन्धित हैं।
- गाँधी जी के साथ दक्षिण अफ्रीका में एक यात्रा के दौरान जो अभद्र और अमानवीय व्यवहार किया गया, उसकी जानकारी देना।
- रोजा पार्क के साथ हुए अपमानजनक अन्याय जानकारी देना।
- गाँधी तथा मार्क्स की विचारधारा किस प्रकार समान थी।

4.1 प्रस्तावना

प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व मूल्यवान है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सर्वांगीण विकास करने का अधिकार है। प्राय: सभी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सभी मनुष्यों को समान मानकर संवैधानिक और, कानूनी रूप से अनेक प्रकार के नागरिक अधिकार दिए गए हैं जिन्हें मानवाधिकार के नाम से जाना जाता है। मानवाधिकार मानवीय गौरव, मानवीय तथा अमानवीय व्यवहार से सुरक्षा प्रदान करने का मुख्य विषय है। गाँधी, रोजा पार्क, इत्यादि कुछ महान व्यक्तियों के साथ ऐसी कुछ घटनाएँ हुई जिसके कारण इन महान लोगों के मस्तिष्क में मानवीय गौरव को बरकरार रखने और अमानवीय व्यवहार को, केवल उनके लिए ही नहीं अपितु संपूर्ण समाज में 'रहने वाले सभी लोगों के लिए, प्रभावी रूप से रोकने के संबंध में कुछ विचार

उत्पन्न हुए। निडरता पूर्वक ऐसे लोगों के द्वारा इस संबंध में सक्रिय प्रयास भी गए। इन्हीं महान लोगों के मानवीय गौरव के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के प्रयास ने ही मानवाधिकार का सशक्त आधार प्रदान करने का कार्य किया।

4.2 मानवाधिकार जागरूकता विषय की घटनायें

दो घटनायें, प्रथम दक्षिण अफ्रीका में सन् 1893 में गाँधी के साथ हुई घटना तथा द्वितीय यू.एस.ए. में सन् 1956 में रोजा पार्क के साथ हुई घटना ने संसार में मानवाधिकारों के संबंध में नागरिक अधिकार आन्दोलन के इतिहास को परिवर्तित किया है। महात्मा गाँधी का दक्षिण अफ्रीका में रेल यात्रा के दौरान प्रथम श्रेणी रेल कोच में सफर करने के लिए अपने अधिकार के लिए दृढ़ता पूर्वक संघर्ष करना और रोजा पार्क का मोन्टेगोमरी, अलबामा, यू.एस.ए. में एक सार्वजनिक बस में सफर करने के दौरान अपनी सीट को दूसरे गोरे यात्री के लिए छोडने से इनकार करने के कारण गिरफ्तार किया गया और वे अपने अधिकारों के लिए विरोध करते हुए दण्ड सहने हेतु तैयार हुई।

आश्चर्यजनक रूप से कुछ मानवाधिकार कार्यकर्ता तथा नागरिक अधिकार कार्यकर्ता तथा नागरिक समर्थकों ने इन दो समान घटनाओं से होने वाले व्यापक प्रभावों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया है जिनमें नागरिकों को समान नागरिक अधिकार सुनिश्चित करने हेतु मानवता का संघर्ष एवं मानवीय चेतना जागत करने की तीव्र लालसा उत्पन्न होना तथा जब मूल अधिकारों या आजादी का हनन होना है अथवा उनसे वंचित किया जाता है तब उनके प्रति विद्रोह करने की तीव्र उत्कृण्ठा जागृत होती है।

4.2.1 गाँधी जी को अपमानित करना

महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में मानवाधिकार हनन सम्बन्धी विविध अनुभव सहे। इन अनुभवों में से एक जातीय भेदभाव था। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी का मानवीय मूल्यों के हनन संबंधी प्रारंभिक अनुभव उस समय सामने आता है जब महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका के न्यायालय में वकालत करने के लिए गए तब उनसे अपनी पगडी उतार कर बहस करने को कहा गया। शीघ्र ही वे एक पड़ौसी इलाके (शहर) ट्रान्सवेल के काम के लिए गए। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अनेक बार अपमान तथा अवहेलना (यंत्रणा) का सामना किया। एक महत्वपूर्ण घटना उनके जीवन में तब घटित हुई जब वे प्रिटोरिया जा रहे थे।

7 जून 1893 में एक गोरा व्यक्ति प्रथम श्रेणी रेल कोच में यात्रा कर रहा था उसने गाँधी जी से निम्न श्रेणी के कोच में जाने को कहा। गाँधी जी ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि मेरे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है। रेलवे अधिकारी ने कहा - ' 'आप नहीं बैठ सकते आपको इस कोच से उतरना पड़ेगा, अन्यथा मैं पुलिस कान्स्टेबल को बुलवाऊंगा तथा तुम्हें धक्के देकर बाहर निकलवाऊँगा। ' गाँधी ने कहा, ' 'मैं स्वयं नहीं जाऊंगा। " जब उन्होंने कोच से उतरना के लिए मना किया तो उन्हें उनके सामान सहित ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया।

गाँधीजी को धक्का देकर बाहर निकाल दिया गया। गाँधीजी तत्पश्चात प्रतीक्षालय कक्ष में गए तथा विचारने लगे। रात्रि बहुत शरदकालीन थी गाँधीजी का गर्म कोट उनके सामान में

था। लेकिन उन्हें भय था कि अगर वे इसके विषय में जानकारी लेंगे तो वे पुन: जलील किए जाएगें। उन्होंने विचार किया कि वे दक्षिण अफ्रीका में जिस कार्य के लिए आए थे उसको छोडकर वापस देश लौट जाएं। लेकिन शीघ्र ही उनके दिमाग में यह प्रश्न आया कि यह बेइज्जती धरातलीय स्तर की है तथा भविष्य में यह विकराल रूप धारण कर सकती है। उन्होंने निर्णय किया कि वे केवल अपने कार्य के लिए ही नहीं जाएगें, अपितु स्वयं कठिनाई से तब तक लडेंगे जब तक यह भेदभाव के रोग का निदान नहीं होगा।

इसके अलावा और भी कई अवसरो पर उन्हें अपमान और अवमानना झेलनी पडी। चुपचाप इन अपमानजनक घटनाओं से दुःखी होते रहने के बजाय गाँधी के प्रतिरोध करने और परिस्थितियों में सुधार करने का रास्ता चुना। इस तरह सत्याग्रह का जन्म हुआ।

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में जो समय बिताये और जो अनुभव प्राप्त किया उन्होने गाँधी को मूल्यवान अर्न्तशक्ति प्रदान की। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अमानवीय तथा अत्यन्त विध्वंसक स्थिति का विरोध किया इन स्थितियों ने उन्हें उपयुक्त सिद्वान्तों तथा अहिंसात्मक रक्षा की तकनीक के विकास में सहायता दी। अत्यन्त लज्जाकारी एशियाटिक अध्यादेश को अहिंसात्मक रणनीति के द्वारा विरोध करने का उन्होंने प्रयास किया। विरोध करने पर यातनाओं का अहिंसक तरीके से सहने और दूसरों के कर्म और उनके स्वयं में भेद करते हुए बुराई को खत्म करने का प्रयास किया। उनका यह कृत्य प्रत्येक व्यक्ति के प्रति अदम्य प्रेम से प्रेरित थी। एक अतिकुशल नेता की तरह उन्होने बुराई के विरूद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के विभिन्न अस्त्रों को विकसित किया। मानव गरिमा तथा स्वतंत्रता के लिए गाँधी के द्वारा शुरू किया गया संघर्ष ने न केवल दक्षिण अफ्रीका 'तथा भारत पर दीर्घकालिक असर डाला, अपितु इसने मानव मस्तिष्क पर अपनी छाप छोडी तथा समस्त विश्व कै स्वतंत्रता सेनानियों तथा मानव अधिकार कार्यकर्ताओं को प्रभावित किया।

मानव अधिकार तथा न्याय के गाँधीवादी उपाय, नई रणनीतियों तथा दृष्टिकोणों के अंगों के लिए भी उपयुक्त होते है जिन्हें गाँधी ने जिया था। बहुत से लोग यह समझ नहीं पाये की उनका मतलब क्या है जब उन्होने जोर देकर कहा, ' 'जब तक दुर्भावना है, सत्याग्रह की स्पष्ट जीत असम्भव है। लेकिन जो स्वयं को कमजोर समझते है वह प्रेम के लिए अनुपयुक्त हैं। आइये प्रत्येक सुबह हमारा पहला कार्य उस दिवस के लिए यह संकल्प लेने का हो कि मैं इस धरती पर किसी से नहीं डरूंगा, मैं केवल ईश्वर से डरूंगा, मैं धरती पर किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखूँगा। मैं किसी पर भी होने वाले अन्याय से लडूंगा। असत्य पर मैं सत्य के द्वारा विजय प्राप्त करूंगा। असत्य का प्रतिरोध करते हुये मै हर प्रकार के कष्टों को सहन करूंगा।''

4.2.2 मिसेज रोजा पार्क के साथ हुई अपमानजनक घटना

अल्बामा के मॉण्टगोमरी में प्रजातीय पृथकतावादी व्यवस्था निरन्तर जारी था। बसों में आगे की सीटों की चार पंक्तियाँ गोरे लोगों के लिए तथा सैद्धान्तिक तौर पर पीछे की सीटों की तीन पंक्तियाँ काले लोगों के लिए आरक्षित होती थी लेकिन जब बस में गोरे व्यक्ति को सीट नहीं मिलती तो काले लोगों को बस चालक के निर्देश (कभी सादगी से लेकिन प्राय: भद्र तरीके

से) पर खड़ा होना पड़ता था और वह तब तक खड़े रहते जब तक गोरा व्यक्ति उसकी सीट पर बैठा रहता था।

1 दिसम्बर, 1955 को जब रोजा पार्क्स अपने कार्यालय से बस में सवार हो कर घर लौट रही थी तब ही कुछ गोरे लोग उस बस में सवार हुए, लेकिन बस भरी हुई थी, इसलिए बस चालक ने श्रीमती पार्क्स सहित तीन अन्य नीग्रो को गोरे लोगों को सीट देने का निर्देश दिया। इस पर तीन नीग्रो ने बस चालक का आदेश माना लेकिन रोजा पार्क्स ने इससे पूर्णतया इन्कार कर दिया। बस चालक ने पुलिस को बुलाया और उसे शहर के पृथकतावादी अध्यादेश के उल्लंघन के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। वह बहुत ही सौम्य व सुशील तथा सहज स्वभाव वाली महिला थी। वह निग्रो समुदाय का बहुत सम्मान करती थी। उसे निग्रो के साथ अपमानजनक व्यवहार ज्यादा समय तक बर्दाश्त नहीं हो सकता था। उसकी गिरफ्तारी ने निग्रो समुदाय में एक उत्प्रेरण का कार्य किया। निग्रो समुदाय के लोग उसकी गिरफ्तारी का प्रतिरोध करने को एकत्रित हुए। ई.डी निक्सन सहित कई निग्रो नेता तथा चर्च के पादरियों व सभी निग्रो ने अहिंसक तरीके से सभी बसों का बहिष्कार करने को सहमत हुए। इनकी एक बैठक आयोजित की गई जिसमें निर्णय हुआ कि मॉण्टगोमरी के सभी निग्रो समुदाय 5 दिसम्बर, सोमवार को कार्य स्थलों, कस्बों, स्कूलों व अन्य स्थलों पर जाने के लिए बस की सवारी नहीं करेंगे और सोमवार को शाम 7 बजे आगामी निर्देशों के लिए आयोजित बैठक में आयेंगे। ' निग्रो पादरी उनकी बैठक रविवार को करने के लिए सहमत हुए। शुरूआत में इस आन्दोलन का नेतृत्व निग्रो पादरियों के हाथों में रहा। सभी समाचार पत्रों में यह खबर छपी और इससे यह खबर सम्पूर्ण निग्रो समुदाय में आग की तरह फैल गई।

यह बायकॉट पूर्णतया सफल रहा। उस दिन 50 हजार निग्रो में से एक ने भी बसों में यात्रा नहीं की। उसी दिन श्रीमती पार्क्स को न्यायालय में पेश किया गया और 10 डालर का जुर्माना किया गया। उसने उच्चतम न्यायालय में निर्णय के विरूद्ध अपील की। उस रात की बड़ी बैठक में चर्च ठसाठस भर गया तथा समय से ढाई घंटे पूर्व ही सभी लोग आ गये थे। उनकी उपस्थिति में सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ कि बायकॉट तब तक जारी रहेगा जब तक कि

- बस ऑपरेटरों द्वारा सादगीपूर्ण व्यवहार की गारन्टी नहीं दे दी जाती,
- यात्रियों को सीटों का बंटवारा "पहले आओ पहले पाओ" के आधार पर नहीं कर दिया जाता,
- निग्रो बस मार्गो पर निग्रो बस ऑपरेटरों द्वारा निग्रो को ही काम पर लगाये जायेगा।

उन्होंने प्रत्यक्ष कार्यवाही हेतु मॉण्टगोमरी इम्प्रुवमेंट एसोसिएशन (MIA) नाम का प्रतिरोध संगठन निर्माण किया। उन्होंने इसके अध्यक्ष के रूप में एक युवा, उच्च शिक्षा प्राप्त निग्रो पादरी - मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) को चुना, जो सामाजिक समस्याओं को ईमानदारी से निपटाता था और थोरो, गाँधी आदि की शिक्षाओं से प्रभावित था। एम.आई.ए. के ज्यादातर नेता पादरी ही थे, वे भी सभी निग्रो, केवल रॉबर्ट ग्रेट्ज जो कि एक निग्रो चर्च का गोरा पादरी था, वही शहर में अकेला गोरा पादरी था, जिसने संगठित प्रतिरोध के प्रति सहानुभूति जतायी।

इसके अतिरिक्त नेताओं ने तेजी से यातायात, वित्त एवं रणनीति के लिए कई समितियों का गठन किया, आम बैठकों के लिए एक कार्यक्रम समिति का गठन किया गया और एक कार्यकारिणी समिति भी। यातायात समिति ने सबसे पहले एक निग्रो टैक्सी सर्विस का गठन किया, लेकिन कानूनी अड़चन के कारण बाद में एक कार-पूल का निर्माण किया और अन्त में उसमें स्टेशन वैगन्स को जोडा गया।

इससे भी ज्यादा, आम बैठकों में, जो निग्रो चर्चों में घुमते हुए क्रम सप्ताह में दो बार होती थी, हमेशा भीड रहती, उसमें लाउडस्पीकर का प्रयोग किया जाता ताकि सभी लोगों को चर्चा सुनाई दे सके। प्रार्थनाओं, धर्म ग्रंथों के अध्ययन जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता। लोगों में बहुत उत्साह था। डी. किंग और अन्य नेताओं ने रात-रात भर लोगों को आन्दोलन के दर्शन व पद्धतियों के बारे में समझाते थे। यह ईसा मसीह के प्रेम के नीतिशास्त्र और गाँधी के अहिंसक प्रतिरोध का एक सम्मिश्रण था। डी. किंग ने इसकी प्रभावशीलता,क्षमता और अनुप्रयोगों को विस्तार से बताया प्रेम और अहिंसा की मौलिक महत्ता पर जोर दिया। पद्धति को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने असम्भव स्थितियों में भी काम करने को कहा जहाँ चाहे, जितनी भी हिंसा उनके विरूद्ध क्यों न प्रयुक्त हो और ऐसी स्थितियों में कैसा व्यवहार करना है, यह भी बताया।

यह बहिष्कार प्रभावी, पूर्ण तथा साहसी सिद्ध हुआ। द सिटी काऊंसिल ने इस बहिष्कार को तोड़ने के लिए निग्रो कार चालकों को सभी प्रकार के बहानों द्वारा गिरफ्तार किया गया। बीमा कम्पनियों पर निग्रो कारों के बीमा को निरस्त करने का दबाव डाला गया। समाचार पत्रों के माध्यम से निग्रो समुदाय के नेताओं के विरूद्ध दुष्प्रचार को बढ़ावा दिया गया। निग्रो नेता डी. किंग को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। निग्रो नेताओं को टेलीफोन कर धमकाया गया। 30 जनवरी, 1956 को डी. किंग के घर पर बम डाला गया। भाग्यवश सम्पत्ति व जान माल की कोई खास हानि नहीं हुई। एक बड़ी हिंसक व गुस्सैल भीड निग्रो लोगों की तेजी से एकत्र हुई। लेकिन डी. किंग ने उन्हें शान्त रहने को कहा और आगे यह भी कहा कि "प्रति हिंसा द्वारा समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। हमें घृणा को प्रेम के साथ मिला देना चाहिए, हमें दुश्मनों के प्रति भी प्रेम करना चाहिए और वे बिना भय, प्रतिशोध व आक्रमण के संकेत के उनके आदेश की पालना करें।

ये सभी घटनाऐं बडी नाटकीय थी और प्रतिशोध असाधारण था विशेषकर दक्षिण में और विशेषकर इसलिए कि यह निग्रो की पूर्णतया विचार-विमर्शीय अनुशासित, धार्मिक रूप से प्रेरित अहिंसा के कारण हो रहा था। इसका समाचार पूरी दुनिया में फैल गया। हालांकि इस आन्दोलन के लिए धन की कोई मांग नहीं की गई थी फिर भी काफी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इसी दौरान अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसला सुनाया कि 'बसों में पार्क्स की नीति व कानून को अपनाना असंवैधानिक था।" मॉण्टगोमरी इम्प्रुवमेंट एसोसिएशन की कार्यकारिणी समिति ने काउन्सिल की सलाह पर सरकारी प्रतिरोध को तत्काल समाप्त करने का निर्णय लिया लेकिन बसों के लौटने में देरी हुई जब तक कि सरकारी बाध्यकारी आदेश- सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त नहीं हो गया।

उसी रात 8 हजार निग्रो की एक बड़ी भारी उत्साही बैठक का आयोजन किया, गया। बाद में शाम को कु. कुलुक्स कलान ने शहर के निग्रो बस्तियों में बैठक का आयोजन किया। लेकिन उस समय निग्रो को सूचित नहीं किया गया था। आगामी बैठकों में निग्रो को पुन: बसों में सवारी करने पर अहिंसक और सहयोगी तरीके से कार्यवाही के निर्देश दिए गए थे। जब पुन: बसों में सवारी करने की शुरूआत हुई तब जहाँ तक सम्भव हुआ दो निग्रो पादरियों ने प्रत्येक सिटी बस में सुबह और शाम को ज्यादा भीड़ के समय सवारी की ताकि निग्रो लोगों में उनकी उपस्थिति से साहस उत्पन्न हो और उनमें अपमान के मामले में प्रतिकार की सम्भावना को कम किया जाए।

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने भी सुबह की पहली बस में यात्रा की। बस चालक व लोगों ने उसका बहुत स्वागत किया और उसकी प्रशंसा की। हालांकि कुछ समय पश्चात् ही शहर में पुन: निग्रो पर आक्रमण हुए, कई चर्चों को नुकसान पहुँचाया गया। भाग्यवश किसी को कोई चोट नहीं पहुँची। इस हिंसा ने गोरे लोगों को यह जता दिया कि ऐसी अव्यवस्था एवं हिंसा से प्रत्येक व्यक्ति के लिए शहर असुरक्षित बन गये थे और इससे देश की बदनामी भी होती है। स्थानीय समाचार पत्रों ने इसके विरूद्ध कटु सम्पादकीय प्रकाशित किए। गोरे लोगों के व्यावसायिक संगठनों ने भी इस कानून विहीन हिंसा का सार्वजनिक रूप से विरोध किया। इस स्थिति में कई गोरे लोगों की गिरफ्तारियाँ भी हुई। धीरे-धीरे हिंसा थमी और बसों में पार्थक्यता के व्यवहारों में कमी आयी।

अहिंसा, एकता, माफी एवं प्रेम शत्रुओं के लिए शक्तिशाली सिद्ध हुआ। मॉण्टगोमरी घटना और बाद का विरोध प्रजातीय समस्या के समाधान की एक शुरूआत मात्र थी। इस घटना ने तदनुसार अहिंसक प्रतिरोध के आधार पर भविष्य की सफलताओं की मजबूत नींव रखी।

4.2.3 मार्टिन लूथर किंग और मानवाधिकार

प्रजातिवाद पर आधारित भेद के विरूद्ध विचार रखने और सक्रिय अहिंसक प्रयास से इसे दूर करने की दिशा में प्रयास करने वालों में एक महत्वपूर्ण हस्ती मार्टिन लूथर किंग थे। मार्टिन लूथर किंग मानव प्रकृति के संबंध में गांधीजी के समान विचार रखते थे। मनुष्यों में किसी भी अन्यायपूर्ण भेद का वे विरोध करते थे। प्रजातिवाद की प्रथा के विषय में व्यक्त किंग के विचार महत्तवपूर्ण है। उनके अनुसार प्रजातिवाद का दर्शन मानव जीवन की अवहेलना पर आधारित है। यह मनुष्यों में भेद उत्पन्न करने वाला तर्क है तथा कुछ को अन्यों के प्रति समर्पण या आवश्यक रूप में घुटने टेक कर समर्पण करने को आवश्यक मानता है। मार्टिन लूथर किंग के अनुसार ' यह सब बेकार कुतर्क है कि एक प्रजाति भविष्य की सभी उन्नतियों के लिए जिम्मेदार है। प्रजातिवाद सम्पूर्ण अलगाववाद है। यह न सिर्फ शरीर को पृथक करता है बल्कि मस्तिष्क तथा आत्मा को भी पृथक करता है। अवश्यम्भावी रूप से यह जात-बाहर (सभी प्रजाति जिन्हें अलग बाहर कर दिया है) पर आध्यात्मिक तथा भौतिक वध करता है। '

किंग विश्वास करते थे कि प्रजातिवाद या जाति बाहर करने की सम्भावना प्रेम के सिद्धान्त के विपरित है। उनका कहना था कि मानव समूह के किसी सदस्य का बहिष्कार करना

हिंसा का ही एक रूप है। प्रेम अपेक्षा करता हे कि हम इस प्रकार का बहिष्कार न करें अपितु दूसरी संस्कृति, समाज तथा जाति समूहों के सदस्यों से अपना सम्बन्ध स्थापित करें।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर की मौलिक चिंताएँ आरंभिक तौर पर - एक पादरी की थी। वह न केवल अमेरिकी आदर्शो में विश्वास करते थे बल्कि वह यह भी मान चुके थी कि अहिंसक साधनों के माध्यम से वह देश में विद्यमान नस्लीय तनाव के वातावरण को सुधार सकते हैं। उन्होंने आर्थिक शोषण की समाप्ति के लिए पददलित लोगों की गरीबों और भूख को हटाने पर बल दिया। यह भी स्मरणीय है कि वह अपने आपको काले लोगों तक ही सीमित नहीं रखते थे बल्कि उनकी दृष्टि में श्वेत और काले दोनों ही लोग समान थे।

'उन्होंने कई रैलियों का नेतृत्व बड़ी सफलता के साथ जिसमें सबसे महत्वपूर्ण थी- मोन्टगोमरी बस बहिष्कार (1955-56) जो आज भी मानव इतिहास में न्याय के लिए किए गए प्रयासों में सबसे भव्य मानी जाती है। उन्होंने कहा कि इस स्थिति में इतिहास ने मेरे पर विश्वास किया है। यह अनैतिक और किसी अन्य को कृपापात्र बनाने का चिह्न होता यदि मैं मेरी नैतिक जिम्मेदारी को स्वीकार नहीं करता कि मैं इस संघर्ष के लिए क्या कर सकता हूँ। वे इतना विनम्र थे कि उन्होंने कहा कि वे मानते हैं कि वे तो एक साधन मात्र हैं, वे एक विचार का व्यक्तिकीकरण थे बजाय एक व्यक्ति के। नोबेल शांति पुरस्कार चयन समिति ने उनके मानवता को दिए अद्भुत योगदान को मान्यता दी और किंग के "मनुष्य के भ्रातृत्व" के विचार के लिए सर्वोच्च त्याग को रिकॉर्ड किया।

उन्होंने 1963 में वाशिंगटन में एक विशाल रैली का नेतृत्व सफलतापूर्वक किया, दक्षिण क्रिश्चियन लीडरशिप कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष और संस्थापक के रूप में और उनका 'आई-हेव-ए-ड्रीम नामक भाषण दिया जो उनके कुशल वक्ता और पवित्र भावनाओं का शास्त्रीय उदाहरण माना जाता है।

जब किंग की 1969 में हत्या की गई, तब वह मानव के भ्रातृत्व के पहरेदार बन गये थे और आशा के नये युग के पैगम्बर बन गये और यह कि अहिंसा कमजोर का हथियार नहीं है, बल्कि यह साहसी का हथियार है जैसा कि गाँधीजी ने प्रदर्शित किया।

किंग ने इस सत्य को स्पष्टता, अद्भुत साहस और मनोभाव के साथ प्रदर्शित किया। किंग ने सन् 1954 से 1968 तक कई प्रमुख आंदोलनों का नेतृत्व किया जो उसके नेतृत्व गुणों एवं उनके अहिंसा के प्रतिबद्धता को दिखाते है। इसके अतिरिक्त वे न केवल अमेरिकी निग्रो का ही नेता नहीं था बल्कि एक ऐसे नेता थे जिसने सत्ता में बैठे लोगों को सभी पददलित लोगों के प्रति सभी प्रकार अन्यायों का उपचार करने की दिशा भी दिखायी है। किंग ने सम्पूर्ण विश्व के सभी पददलित लोगों को संगठित आवाज प्रदान की है।

4.3 गाँधी और मानवाधिकार

गाँधी ने शोषण और अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के नये युग को आरम्भ किया है जो कि प्रत्येक मानव के भय-मुक्त होने तथा सत्य और न्याय के प्रति सदैव प्रतिबद्ध रहने की क्षमता पर आधारित है। गाँधी का मानना था कि निडरता एक ऐसा मुख्य स्तंभ है जिसे प्रेम के साथ जोडकर आवश्यकता अनुसार प्रतिरोध की क्षमता का निर्माण किया जा सकता

है। यह देखना रूचिकर है की गाँधी मानते थे की डरपोक व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता क्योंकि उसमें सकारात्मक ऊर्जा का उतना भंडारण नहीं है जो अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए आवश्यक है। प्रत्येक प्रकार के शोषण का विरोध करने का आहवान करने वाले गाँधी, पूंजीपतियों जैसे कुछ शक्तियों के छोटा से समूह द्वारा मेहनतकशों के वृहद समूह की पीठ पर वैभवपूर्ण या विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने का घोर विरोध करते थे। वे प्रत्येक व्यक्ति को सर्वांगीण विकास करने के अवसर प्रदान करने के पक्षधर थे।

सम्पूर्ण समाज की भलाई में ही व्यक्ति की भलाई निहित मानने वाली सोच गाँधी रखते थे। गाँधी ने इस संदर्भ में सर्वोदय का दर्शन प्रस्तुत किया। पूरा विश्व उनके लिए एक बडा परिवार था और इस बडे परिवार के सम्पूर्ण सदस्यों का वे सर्वांगीण विकास चाहते थे। उनकी यह सोच भारतीय मान्यता, 'वासुदेव कुटुम्बकम' में निहित है। यह रस्किन के Unto this last में भी निहित है जहाँ से गाँधी ने सर्वोदय की मानवतावादी विचार विकसित किया। रस्किन की उक्त किताब से गाँधी को निम्नलिखित शिक्षा मिली :-

1. व्यक्ति का भला, सब के भले में है।
2. अधिवक्ता के कार्य का वही मूल्य है जो कि लकड़हारे के कार्य का क्योंकि सभी को कार्य के द्वारा जीविकोपार्जन करने का अधिकार है।
3. मजदूर का जीवन, जो कि खेत जोतने वाले तथा हथकरघा कलाकार का जीवन है, जीने योग्य है।

गाँधी ने व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयासों द्वारा आम भारतीय लोगों को साम्राज्यवादी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए आहवान किया। स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने आत्मबल को हिंसा को, विभत्सीय बल के विरूद्ध प्रयुक्त किया। सत्य तथा असत्य एवं अच्छाई तथा बुराई में, समूहों, समुदायों और राष्ट्रों में शाश्वत युद्ध को कैसे अहिंसक तरीके से समाधान किया जा सकता है, यह गाँधी की जीवन प्रयन्त ' का सबब है। स्वतन्त्रता गाँधी के लिए शान्ति सतत् प्रक्रिया है न की अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति।

व्यक्ति उनके लिए सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र है। उसके सर्वांगीण विकास के लिए प्रत्येक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को प्रतिबद्ध रूप से कार्य करना होगा। व्यक्ति संस्थाओं के लिए नहीं, अपितु संस्थायें व्यक्ति के लिए समर्पित हों ऐसा गाँधी चाहते थे। इसी संदर्भ में गाँधी ने व्यक्ति के लिए स्वराज की कल्पना की। उनके द्वारा प्रतिपादित स्वराज का सिद्धान्त मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता से कहीं आगे जाता है।

साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन से मुक्त होने के अपने संघर्ष में गाँधी ने सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में और बाद में भारत में सामान्य जनता को संगठित कर उनमें शोषणात्मक और अन्यायी शासन के विरूद्ध सफल संघर्ष करने का आत्मविश्वास जगाया। गाँधी के अनुसार शासन जन हित के लिए होना चाहिए और सही अर्थों में स्वतंत्रता या स्वराज वही है जो शासन के दुरूपयोग को रोक सके। गाँधी ने कहा था कि स्वराज तब तक नहीं आएगा जब तक कि सत्ता पर कुछ लोगों का आधिपत्य ही होगा, बल्कि यह तभी साकार होगा जब बहुतायत में ऐसी क्षमता विकसित होगी कि जब भी सत्ता के दुरूपयोग की घटना होगी, वे उसे प्रबल रूप से रोक सकेंगे। इस तरह से गाँधी लोकतन्त्र के सजग जीते जागते उदाहरण थे।

वे अच्छी तरह जानते थे कि राजनैतिक लोकतन्त्र, आर्थिक तथा सामाजिक लोकतन्त्र से अविभाज्य है। इसलिए उन्होंने तार्किक आधार पर राजनीतिक आजादी और स्वतंत्रता के साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता पर भी बल दिया। उनके स्वराज हेतु संघर्ष के उद्देश्यों में लोगों को भूख तथा बेरोजगारी से मुक्ति और जाति तथा धर्म की अराजकता से मुक्ति सम्मिलित थे। समाज में दबे, कुचले और असहायों को शोषण से मुक्ति और समानता एवं न्याय के साथ सर्वांगीण विकास उनके स्वराज का प्रमुख ध्येय था। उन्होंने हर उस प्रयास और व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह किया जो मनुष्य को दास तथा असहाय यांत्रिक बना देती है। उन्होंने अस्पृश्यता के विरूद्ध धर्मयुद्ध किया क्योंकि यह उस बीमारी (कैन्सर) को पालती-पोसती है जो भारत की सामाजिक जीवन को खा जाता है। करांची कांग्रेस से भी पहले, गाँधी ने यंग इण्डिया में लिखा था ' 'मेरे सपने का स्वराज किसी जाति या धार्मिक विभेद को मान्यता नहीं देता। न ही यह गणमान्य व्यक्तियों या पूंजीपतियों का एकाधिकार है। स्वराज सब के लिए है, जिसमें किसान भी सम्मिलित है, लेकिन खासतौर पर मन्दबुद्धि, अन्धे, तथा भूखे, मेहनतकश करोड़ों लोग सम्मिलित है।

ऐसे ही एक अन्य कथन में उन्होंने व्यक्त किया कि 'उनके सपने का स्वराज निर्धन व्यक्ति का स्वराज है। जिसमे उसे जीवन की आवश्यकताओं के सभी वस्तु का आनन्द उसी प्रकार से प्राप्त है जिस प्रकार से राजकुमारों तथा पूंजीपतियों को प्राप्त है। ऐसे स्वराज में आमजन को वह सब सामान्य सुविधायें मिलनी चाहिये जिनका आनन्द एक अमीर आदमी लेता है। वे कहते थे कि उन्हें तनिक भी संदेह नहीं है की स्वराज तब तक पूर्ण स्वराज नही होगा जब तक इन सुविधाओं की प्राप्ति आम गरीब नागरिक को नहीं होगी।

उन्होंने 'पूर्ण स्वराज्य या पूर्ण स्वतन्त्रता' की अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कहा कि पूर्ण स्वराज को पूर्ण इसलिए कहा गया है क्योंकि यह जितना राजकुमार के लिए है उतना ही किसान के लिए हैं, जितना यह अमीर भुमिपति के लिए है उतना ही भुमिहीन हल जोतने वालों के लिए है हिन्दुओं के लिए भी उतना ही है जितना मुसलमानों के लिए, पारसियों और ईसाईयों के लिए भी उतना है जितना जैनियों के लिए है, यहुदियों और सिक्खों के लिए है, बिना किसी जाति स्तरीय भेदभाव के यह सब के लिए है।

गाँधी ने जिस स्वराज की कल्पना की थी वह सत्य और अंहिसा पर आधारित होते हुए उन सब सम्भावनाओं को समाप्त करती है जिसमें स्वराज दूसरों से ज्यादा किसी एक के लिए हो, यह किसी के पक्ष में भी नहीं है तथा किसी के विरूद्ध भी नहीं।

मानवता और मानवाधिकारों के विरूद्ध और कोई बड़ा अपराध नही है सिवाय की नागरिकों के साथ किसी भी कारण से अमानवीय व्यवहार किया जावें। सच्चाई से इन्कार करना अपने आप में उस चीज का उल्लंघन है जो कि मानवीय जीवन के अंश तथा आईने को निर्मित करती है। गाँधी यह दोहराते हुये कभी नही रूके की ' 'अगर गांव समाप्त होगें तो भारत समाप्त हो जायेगा'। गाँधी के दर्शन में लोकतन्त्र के तीन स्तम्भ ग्रामीणों के जीवन की मुक्ति की सेवा के लिये थे।

उन्होंने ग्रामीणों के लिए ऐसे मकानों की कल्पना की थी जो कि पूर्ण रूप से क्षेत्रीय संसाधनों के उपयोग तथा सहयोगिक प्रयासों से निर्मित हों। उनके अनुसार ग्रामीणों के पास साफ सुथरी सड़के तथा बाजार, स्वच्छ पेयजल तथा उच्च स्तर के स्वच्छता के संसाधन होने चाहिये। वहाँ ग्रामीण विद्यालय जो कि हथकरघा तथा वनस्पतियों के बाग और बागवानी पर आधारित होना चाहिये। उन्होंने कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों पर. खास जोर दिया जिससे की भोजन, वस्त्रों तथा आवास तथा प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को रोजगार की 'आवश्यकता की पूर्ति की जा सकें। ग्रामीण समुदायों की अपनी तस्वीर में वह देखते थे की वहां कोई सामाजिक तथा धार्मिक बन्धन न हो और समुदाय का प्रत्येक सदस्य सम्पूर्ण समानता का आनन्द ले तथा विकास एवं आगे बढने के समान अवसरों का प्रयोग करे। उन्होंने यहां कमजोर अल्पसंख्यकों का ध्यान रखने की विशेष आवश्यकता जतायी है।

गाँधी नारी मुक्ति के भी प्रबल समर्थक थे। उन्होने इस बात की आवश्यकता जतायी कि औरतों को सामाजिक तथा आर्थिक निर्बलताओं से छुटकारा दिलाना चाहिये। गाँधी का मानना था की भारतीय जनसंख्या का आधा हिस्सा स्त्रियों से पूर्ण होता है और जब तक यह हिस्सा बंधनो से मुक्त नहीं होता तब तक देश और समाज की मुक्ति या स्वतंत्रता की बात करना बेकार है। पुरूषों के समान नारी को सर्वांगीण विकास के अवसर और अधिकार प्रदान करने की बात गाँधी करते हैं।

गाँधी का मानना था कि सम्पत्ति के भण्डारण का कोई स्थान नहीं बचना चाहिये। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के सम्पत्ति का न्यासी के रूप में कार्य करना चाहिये। गाँधीजी के लोकतन्त्र की अवधारणा में कर्तव्य अधिकारों से पहले आता है। उनके अनुसार अधिकार तब आते है जब कर्तव्यों को सही तरह से निर्वाह किया गया हो। वे कहते थे कि व्यक्ति को अपने अन्तःकरण के लिए जवाबदेह होना चाहिये और यही आचरण उसे अपने कर्तव्यों के प्रति अपनाना चाहिये जो कि उसके चारों ओर है, चाहे वह राजनैतिक मामलें हो या आर्थिक या समुदाय के सामाजिक अधिकार हों। गाँधीजी जानते थे कि हिंसा और अधिक हिंसा को जगाती है और इसलिए यह एक गलत उपचार है।

4.4 सार्वभौमिक घोषणा पर गाँधी का प्रभाव

गाँधी जी के विचार और लेख का प्रभाव सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषण पर हम देख सकते हैं। अनुच्छेद 30 में मानवाधिकार सार्वभौमिक घोषणा उन अधिकारों को स्पष्ट करती है जिनके समस्त सिद्धान्त मनुष्यों तथा राष्ट्रों के लिए उद्देश्य परक हैं।

प्रथम तीन अनुच्छेद अभिव्यक्त करते है कि समस्त मानव स्वतंत्र पैदा हुए हैं और आत्म-सम्मान और अधिकार की दृष्टि से समान हैं। सभी में चेतना और तर्क-शक्ति विद्यमान है। प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे के साथ भातृत्व की भावना के साथ रहना चाहिए। बिना किसी भेदभाव के सभी को स्वतन्त्रता के अधिकार का हक है। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतन्त्रता और सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4 से 21 अनेक नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार को निर्मित करते हैं। दासता से मुक्ति, अमानवीय यातनायें, निम्न स्तरीय व्यवहार या सजा से मुक्ति, एक व्यक्ति

के रूप में कानून के समक्ष उसकी गरिमा और अधिकारों की रक्षा। मनमाने गिरफ्तारी, जेल या देश-निकाला से स्वतंत्रता, न्यायालय में स्वच्छ सुनवाई का अधिकार तथा जब तक दोष सिद्ध न हो तब तक निर्दोष मानते हुए व्यक्ति से उचित व्यवहार करना। इसके अतिरिक्त अनेक नागरिक अधिकार सम्मिलित हैं जिनमें 'प्राइवेसी', परिवार या पत्र-व्यवहार मे हस्तक्षेप से आजादी, घूमने तथा निवास की आजादी। इसके अतिरिक्त शादी करने और परिवार बढ़ाने, सम्पत्ति रखने, विचार रखने और अभिव्यक्त करने, किसी भी धर्म को अपनाने, शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्रित होने और संगठन निर्मित करने, अपने देश के शासन में सहभागिता का अवसर और सार्वजनिक सेवाओं को उपभोग करने की स्वतंत्रता का भी प्रावधान किया गया है। यह भी प्रबंध किया गया है कि जन इच्छा शासन का आधार होगा और इस जन इच्छा की अभिव्यक्ति के लिए नियमित चुनाव, वयस्क मताधिकार पर आधारित, का प्रावधान किया जाएगा।

अनुच्छेद 22 विभिन्न आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार की व्यवस्था करता है जो व्यक्ति को उसके समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त है। ये अधिकार मानवीय गरिमा तथा स्वतन्त्र विकास के अपरिहार्य माना गया है। अनुच्छेद 22 से 27 सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित है जैसे न्यायोचित और समानता युक्त परिस्थितियों में काम करने का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन, आराम तथा अवकाश, स्वास्थ्य तथा हितकारी जीवन, शिक्षा का अधिकार तथा समुदायिक सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी। अनुच्छेद (28 से 30) यह व्यवस्था करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के ऐसी सामाजिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है जिसमें अधिकार तथा स्वतन्त्रता संबंधी घोषणा का पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सके केवल इस आधार पर कि अन्यों को भी ऐसे अधिकार प्राप्त हो सके, कानूनी आधार पर इन्हें सीमित किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने 50वी मानवाधिकार सार्वभौमिक घोषणा 1988 में विश्व स्तर पर लोगों को एक सन्देश दिया है जिसके कुछ मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं-

- मानवाधिकारों को विश्वव्यापी बनाना।
- मानवाधिकारों की अवहेलनाओं को रोकना।
- मानवाधिकार के लिए वैश्विक भागीदारी निर्माण करना।
- मानवाधिकार को शांति, प्रजातन्त्र तथा विकास के साथ 21 वीं शताब्दी का प्रेरक सिद्धान्त बनाना।

इस तरह से मानवाधिकार सार्वभौमिक घोषणा सभी व्यक्तियों में गौरव या सम्मान को सुनिश्चित करता है। इसका मुख्य लक्ष्य सभी को स्वतंत्रता, समानता और न्याय दिलाना है। यह मानवाधिकारों के सम्बन्ध सार्वभौमिक संस्कृति का निर्माण एवं लोगो का सशक्तिकरण करना चाहता है। इसके लिए यह सभी लोगो के लिए मानवाधिकार सम्बन्धो शिक्षा का प्रबंध करना चाहता है। यह वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार की रक्षा हेतु सहभागिता का विकास भी करना चाहता है। लैंगिक समानता इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है तथा महिलाओं के अधिकारों को बढाने के लिए सभी संगठनों तथा आधारभूत प्रयासों को मदद देना इसका प्रमुख उद्देश्य है। मानवाधिकार घोषणा लोकतन्त्र और विकास के लिए मार्गदर्शक भी है। गरीबी का उन्मूलन, लोकतांत्रिक संस्थायें और कानून का शासन, बहुसंस्कृतिवादी समाज का विकास एवं सभी की

सहभागिता को सुनिश्चित करना मानवाधिकार सार्वभौमिक घोषणा का लक्ष्य है। नागरिक समाज निर्माण करना मानवाधिकार का प्रेरणा स्त्रोत है।

4.5 निष्कर्ष

गाँधी ने सभी के प्रति गौरव और सम्मान प्रदान करने की शिक्षा दी। गांधी असहाय व पीड़ितों की आवाज बनकर उभरे एवं सम्पूर्ण विश्व में उन्होंने समाज सुधारकों, राजनीतिक विचारकों तथा व्यक्तिगत आजादी के लिए संघर्ष करने वालों को प्रेरित किया। मार्टिन लूथर किंग, जूलियस नेयर, बिशप डेशमंद दूडू नेल्सन मण्डेला, इत्यादि ऐसे अनेक महापुरुष हैं जिन्होंने अपने प्रयासों को आकार देने, न्याय सुनिश्चित करने तथा रंग एवं जाति के आधारभूत भेदभाव से लड़ने के लिए गाँधी से प्रेरणा ली तथा गाँधीवादी सिद्धान्तों ' साधनों को साथ लेकर मानवाधिकारों के हनन के विरूद्ध संघर्ष को एक नयी दिशा प्रदान की। हिंसात्मक " को त्यागकर इन महान नायकों ने गाँधी के समान अहिंसात्मक तरीको से आन्दोलन चलाकर मानवाधिकारों समान अनेक सकारात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की राह दिखायी।

स्वयं गाँधी ने मानव इतिहास में एक नया अध्याय जोडा जो मानवता के महत्व विश्व स्तर पर स्थापित करने के लिए उपयोगी है। उनके अनुसार मानवाधिकार तथा प्राकृतिक न्याय में कोई नहीं है। उनका जीवन तथा कार्य मानवाधिकारों के लिए किया गया संघर्ष माना जा सकता है। मनुष्यों को बाटने वली भयानक रंग भेद का विरोध करने का अहिंसक रास्ता दिखाया और पीड़ित लोगों को सत्याग्रह के आधार पर अपने हितों के लिए संघर्ष करना सिखाया। विश्वभर में लाखों संख्या में और मानव अधिकार रक्षा के समर्थकों के वे प्रेरक स्त्रोत हैं। गाँधी ने अपने संदेश में साहस दिखाते हुए व्यवस्थाओं का विरोध करने का पैगाम दिया है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, तथा सत्याग्रह पर बल देते हुए कहा कि सामाजिक न्याय तथा समान अधिकारों के लिए किए जाने वाले संघर्ष में व्यक्तियों का हथियार बाहरी हथियार नहीं है अपितु उसका आत्मबल है जिसके द्वारा ऐसी ताकतों से लड़ा जा सकता है जो अपने साथी लोगों को एक सम्मानपूर्ण जीवन जीने के अधिकारों से वंचित करते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्न

1. मानवाधिकार के संदर्भ में गाँधी के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
2. सार्वभौमिक घोषणा पर गाँधी के प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. 20वी शताब्दी में मानवाधिकार के संदर्भ में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं और संबन्धित महापुरूषों के योगदान का विवेचन कीजिए।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. दाधिच नरेश, ट्वडर्स ए मोर पीसफुल वर्ल्ड, जयपुर, आलेख, 2004
2. उम्मन, टीके. प्रोटेस्ट एण्ड दत्त स्टडीज इन सोशल मूवमेंट्स, सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1990
3. कुमार बी. अरूण, गाँधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2008

4. एडमण्ड, टी., किंग (जूनियर), मार्टिन लूथर, 'द ब्लैक अमेरिकन्स प्रोटेस्ट मूवमेंट इन द यू.एस.ए. '', न्यू हाईट्स, नई दिल्ली, 1976
5. किंग (जूनियर), मार्टिन लूथर, 'स्ट्राइड टुवर्ड्स फ्रीडम: द मोंटगोमरी स्टोरी'' हार्पर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1958

इकाई - 5

स्वतंत्रता, अधिकार एवं कर्तव्य और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वतन्त्रता की अवधारणा

5.3 स्वतन्त्रता सम्बन्धी गाँधी के विचार

5.4 अधिकार की अवधारणा

5.5 अधिकार एवं कर्त्तव्य पर गाँधी के विचार

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

स्वतंत्रता, अधिकार एवं कर्त्तव्य सदैव ही राजनीतिक चिन्तन के आधारभूत चिन्तन बिन्दु तत्व रहे है। प्रस्तुत अध्याय में गाँधी जी के विचारों के विशेष सन्दर्भ में उपरोक्त सम्प्रत्ययों का विवेचन किया गया है। इस अध्ययन के उपरान्त आप -

- स्वतंत्रता का वास्तविक स्वरूप और विभिन्न समयावधियों में उसके चिन्तन धारा संबंधी विकास से परिचित हो सकेंगे,
- गाँधी के स्वराज अथवा स्वतंत्रता संबंधी विचारों से अवगत हो सकेंगे,
- अधिकार किरन प्रकार स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक हैं', इससे परिचित हो सकेंगे, तथा
- अधिकार किस प्रकार कर्त्तव्य से सम्बद्ध हैं यह जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता सम्बन्धी गाँधी जी के विचारों पर प्रकाश डालने से पूर्व हम यह समझने का प्रयास करते हैं कि स्वतंत्रता क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों है ' स्वतंत्रता की अवधारणा को परिभाषित करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। यह एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक भावनात्मक अभिकल्पित अर्थ हैं। इस शब्द को विविध समयावधियों में पृथक -पृथक रूप से परिभाषित किया गया। परंतु इन सब विविधताओं में उसका एक समान भाव भी प्रकट होता है।

आमतौर पर स्वतंत्रता (Liberty) और आजादी (Freedom) को एक-दूसरे के लिए इस्तेमाल किया जाता है। एक प्रमुख मूल्य के और अन्य मूल्यों के एक साधन के रूप में स्वतंत्रता व्यापक अर्थों में ऐसा कुछ है जिसकी आवश्यकता सभी युगों और सभ्यताओं में बड़ी

तीव्रता के साथ महसूस की गयी है। अत: अनेक विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि स्वतंत्रता मनुष्य की स्वाभाविक मांग है। स्वतंत्रता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिप्राय हैं कि इससे प्रेरित होकर विवेकशील व्यक्ति बिना किसी बाह्य दबाव के अपनी इच्छानुसार कार्य कर पाता है। इस अर्थ में स्वतंत्रता हमारे व्यक्ति के स्वतंत्र व मुक्त विकास की एक अनिवार्य अवस्था है। इसके अभाव में हम उसे प्राप्त नहीं कर सकते जिसे हम विवेक युक्त और श्रेष्ठ मानते हैं। इस तरह 'पाने का अर्थ होता है अपनी सुदृढ़ इच्छा के अनुसार कार्य करना, अपने सपनों को साकार करना और अपनी क्षमता को कार्य रूप देना।

5.2 स्वतंत्रता की धारणा

स्वतंत्रता की उत्पत्ति लैटिन भाषा 'लाईबर' (Liber) से हुई है जिसका अर्थ है - 'स्वतंत्र होना। अंग्रेजी में इसे (Liberty) कहा गया है। अर्थात् लिबर्टी से आशय स्वतंत्रता से है। यूनान रोम के लोग स्वतंत्र मनुष्य को दासों और गैर-नागरिकों से भिन्न मानते थे। स्वतंत्र मनुष्य से श्रेष्ठ कार्य करने उम्मीद की जाती थी और इसके लिए उनके पास पर्याप्त समय होता था।

मध्यकालीन यूरोप में व्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे विवाद रहा है, लेकिन ये भी कुछ भिन्न प्रकार के थे। सामंतशाही शासन कदाचित् ही व्यक्तिगत अधिकारों या आजादी की अनुमति देते है। कभी-कभी स्वतंत्रता और इसकी आवश्यकता पर विचार होता भी था तो प्राय: उसमें धार्मिक स्वतंत्रता के विचार-विमर्श होता था। राजनीतिक व सामाजिक स्वतंत्रता के बारे में चर्चा सामान्यत: इन चर्चाओं के विषय हुआ करते थे। राजनीतिक अधिकारों के अर्थ में आज हम जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं, उस पर सबसे पहले गंभीर रूप से चर्चा पुनर्जागरण के बाद खास तौर से 17वी कि सदी के बाद ही शुरू हुई।

पश्चिमी परम्परा में समाज और राज्य के संदर्भ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा को पश्चिमी यूरोप के आधुनिक सिद्धान्तों में स्थान दिया गया परन्तु आधुनिक परम्परा में इस विषय पर विभिन्न विचारधाराओं में मतभेद दिखाई पड़ता है। उदारवादी चिन्तकों ने आम तौर पर स्वतंत्रता को किसी भी प्रकार के प्रतिबंधों का अभाव बताया। वहीं समाजवादी / मार्क्सवादी परम्परा में स्वतंत्रता को पूँजीवादी समाज में असमान सम्बन्धो के ढाँचे से जुड़ा माना गया। अत: मॉर्क्सवादियों के अनुसार स्वतंत्रता को मूर्त रूप में नहीं अपितु वर्तमान सामाजिक सम्बन्धो और उत्पादन की भौतिक स्थितियों के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है।

जब हम स्वतंत्रता के संदर्भ में भारतीय परम्परा पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में स्वतंत्रता की अवधारणा की और पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता को धर्म की अवधारणा से सीमित कर दिया गया था। यह मान्यता थी कि पवित्र धर्मग्रंथों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं से मिलकर बना 'धर्म' एक न्यायोचित और (सद्भाव पूर्ण) सामाजिक व्यवस्था कायम कर सकता है। ऐसे में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए ज्यादा कुछ बचता नहीं था। इसमें फेरबदल की थोड़ी बहुत अनुमति तब दी गई जब खुद धर्म के लिए किसी खतरे की आशंका पैदा हुई। जैसे प्राचीन राजनीतिक चिन्तक कौटिल्य ने तर्क दिया कि 'ऐसे लोकाचारों और रीति रिवाजों को अनुमति दी जानी चाहिए जो धर्म की मान्यताओं के विपरीत न हो।"

जब हम आधुनिक भारतीय परम्परा में स्वतंत्रता के संदर्भ का अनुशीलन करते है तो यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वतंत्रता की जिस मूल अवधारणा को स्वीकृत किया गया तथा स्वतंत्र भारत के संविधान में जिस स्वतंत्रता के मूल्य को स्थान दिया गया, वह मूलत: पश्चिमी परम्परा की ही देन थी। कई भारतीय विचारकों ने यह तर्क दिया कि भारतीय संदर्भ में केवल व्यक्तिगत और राजनीतिक स्वतंत्रता ही पर्याप्त नहीं है वरन् इसमें स्वतंत्रता के सामाजिक आयाम को शामिल किया जाना अपरिहार्य है। परन्तु इस बारे में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण हमें महात्मा गाँधी के स्वतंत्रता सम्बन्धी लेखन और व्यवहार में दिखाई देता है।

गाँधी जी ने अपने स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों को एक नये प्रकार की स्वतंत्रता जिसे उन्होंने 'स्वराज्य' नाम दिया, के अन्तर्गत प्रकट किया। इसमें मनुष्य की गतिविधियों पर बाहरी पाबंदियों के न होने और स्वयं पर संयम रखने का विचार समाहित है। बाह्य पाबंदियाँ न केवल राजनीतिक और आर्थिक थीं, वरन् सांस्कृतिक व नैतिक भी थीं। आन्तरिक पाबंदियां वे थी जो व्यक्ति की अपनी इच्छाओं, आवेशों, ईर्ष्याओं और अन्य प्रयोजनों पर लगाई जाती थीं। गाँधी जी के अनुसार इस तरह के नियंत्रण न होने से स्वयंमेव एक वास्तविक मानवीय अस्तित्व का विकास होगा। इसलिए गाँधी जी को लगा कि कोई भी बाह्य नियंत्रण यहाँ तक कि किसी नैतिक प्रतिनिधि या परोपकारी राज्य द्वारा नियंत्रण भी आगे चलकर स्वतंत्रता के लिए खतरनाक होगा।

5.3 स्वतंत्रता सम्बन्धी गाँधी के विचार

गाँधी जी के स्वतंत्रता की अवधारणा अत्यन्त व्यापक थी। वे न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की उत्कट कामना करते थे अपितु साथ ही नैतिक व आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए भी उनका ऐसा ही आग्रह था। राजनीतिक स्वतंत्रता से उनका तात्पर्य 'स्वराज' से था। उनके लिए स्वराज सत्य का ही अंग है और सत्य ईश्वर है अत: स्वतंत्रता एक पवित्र वस्तु बन जाती है।

गाँधी ने बाल गंगाधर तिलक द्वारा दिये गये इस मंत्र को स्वीकार किया कि 'स्वराज हमारा (भारत वासियों) का जन्म सिद्ध अधिकार है। 'राजभक्ति में हस्तक्षेप' नामक एक लेख में गाँधी ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष भड़काना भारतवासियों का धर्म हैं। उनका स्पष्ट कहना था कि भारतवासी स्वतंत्रता के हकदार इसलिए हैं कि उसके लिए उन्होंने अगणित कष्ट भोगे हैं। '

राष्ट्रीय स्वाधीनता के अर्थ में भी गाँधी जी ने स्वतंत्रता का बलपूर्वक समर्थन किया। अपनी बातों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि ' 'मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि कोई राष्ट्र बाहर से थोपी गयी सरकार के द्वारा अपने को उचित ढंग से शासित कर सकता है।... साथ ही उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता के बारे में उन यंग इण्डिया (अप्रैल 24,1930) में लिखा कि ' 'नागरिक के शरीर को पवित्र माना जाना चाहिए। उसे केवल गिरफ्तार करने अथवा हिंसा को रोकने के लिए कहा जा सकता है। वाणी एवं लेखनी की स्वतंत्रता को गाँधी स्वराज की नींव मानते थे। उनका कहना था कि युद्ध के दौरान भी व्यक्ति को बोलने की स्वतंत्रता होनी ही चाहिए।

गाँधी की स्वतंत्रता की अवधारणा स्वच्छंदता या उच्छृंखलता नहीं थी। उनका कहना था कि समाज के लिए आत्म-त्याग करना ही स्वतंत्रता का फल है। नैतिक स्वतंत्रता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने बताया कि आध्यात्मिक सत्ता के साथ एकात्म्य स्थापित करना ही नैतिक स्वतन्त्रता है। अर्थात् आत्मसाक्षात्कार हेतु इंद्रियों व वासनाओं (कामनाओं) की भौतिक मांगों पर विजय प्राप्त करना ही स्वतंत्रता है। इसलिए अपने आश्रम में उन्होंने एकादश व्रतों का कठोरता से पालन करने पर बल दिया।

स्वतंत्रता के सम्बन्ध में गाँधी के विचारों के अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि गाँधी भी स्वतंत्रता को मनुष्य का अविभाज्य तत्व मानते हैं। रूसों की भांति ही गाँधी जी का विश्वास हैं कि स्वतंत्रता का त्याग करने का अर्थ 'मनुष्यत्व का त्याग करना है। स्वतंत्रता का त्याग करने का तात्पर्य अपनी अन्तरात्मा का परित्याग करना है। स्वतंत्रता गाँधी के विचारों में केन्द्रीभूत तत्व है। गाँधी अनेक पाश्चात्य आदर्शवादी " की भांति ही यह मानते थे कि व्यक्ति एक विवेकशील (चेतनशील) प्राणी है और उसकी चेतना को विकसित करने हेतु स्वतंत्रता एक अपरिहार्य आवश्यकता है। अत: उन्होंने स्वतंत्रता को व्यक्तित्व का अविभाज्य तत्व स्वीकार किया।

गाँधी के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों को विभिन्न रूपों में समझा जा सकता है। इनमें प्रमुख हैं - राजनीतिक, वैयक्तिक, आर्थिक, आध्यात्मिक अथवा नैतिक स्वतंत्रता। गाँधी ने राजनीतिक स्वतंत्रता को ही स्वराज नामक सम्प्रत्यय के अन्तर्गत विकसित किया है। स्वराज व्यक्ति तथा देश दोनों की ही स्वतंत्रता की अवधारणा है। गाँधी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अनुलंघनीय मानते है। वे निजी जीवन तथा विचारों की अभिव्यक्ति (भाषण लेखन आदि) की स्वतंत्रता को व्यक्ति का मूलभूत अधिकार तथा लोकतंत्र की आधारशिला बताते हैं। 22 सितम्बर, 1940 को हरिजन में गाँधी ने लिखा कि - 'भाषण की स्वतंत्रता लोकतंत्रीय जीवन की सांस है। ' गाँधी का स्पष्ट मत है कि 'व्यक्ति की अध्यात्मिक अथवा नैतिक स्वतंत्रता व्यक्ति के भीतर से जन्म लेती है। आध्यात्मिक स्वतंत्रता ही व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को नियंत्रित एवं विकसित करने का मार्गदर्शन करती है। ' गाँधी जी का यह दृढ़ मत था कि आर्थिक स्वतंत्रता के बगैर राजनीतिक स्वतंत्रता की सिद्धि नही हो सकती। राजनीति व आर्थिक स्वतंत्रता एक -दूसरे के पूरक हैं। आर्थिक स्वतंत्रता के बगैर व्यक्ति उन संसाधनों से वंचित रहता है जो उसकी क्षमताओं को पूर्णरूप से विकसित करने हेतु आवश्यक है। 30 जून, 1946 गाँधी जी ने हरिजन में विचार व्यक्त किया कि- ' आर्थिक स्वतंत्रता अहिंसात्मक स्वतंत्रता की एकमात्र कुंजी है। ' गाँधी का मानना है कि यदि लोगों को आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे तो व्यक्ति की स्वतंत्रता एक खोखली दार्शनिक अवधारणा मात्र रह जायेगी। उन्होंने इस बात की जोरदार वकालत की कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता की पूर्ति हेतु आवश्यकता संसाधन उपलब्ध होने चाहिए। गाँधी का सर्वोदय दर्शन व्यक्ति स्वतंत्रता पर ही आधारित है। जबकि इसके विपरीत 'राज्य की परिकल्पना दण्ड के सिद्धान्त पर आधारित है। राज्य की सत्ता व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण करती है। इसी सन्दर्भ में गाँधी को अराजकतावादी चिन्तक माना जाता है। एक साक्षात्कार के दौरान उन्होंने कहा था कि - 'राज्य की शक्ति को मैं सबसे

अधिक भय की दृष्टि देखता हूँ यद्यपि वह शोषण के कम करके भलाई करते हुए दिखलाई पडती है। क्योंकि व्यक्तित्व का विनाश करके जो समस्त प्रगतियों का मूल: है मानव-जाति को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। राज्य हिंसा का संगठित रूप है। व्यक्ति की एक आत्मा होती है तथा चूँकि राज्य एक आत्माविहीन यंत्र है इसे हिंसा से कभी अलग नहीं किया जा सकता जिसके कारण इसका जन्म हुआ है।" गाँधी ने' ' स्वराज' ' की जो अवधारणा प्रस्तुत की थी वह किसी राज्य की संरचना न होकर एक ऐसे समाज की संरचना का उद्घोष है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित है। पश्चिमी अराजकतावादियों से भिन्न गाँधी का राज्य -विरोध का सिद्धान्त नैतिकता के सिद्धान्त पर आधृत है। वे राज्य का निषेध इसलिए करते हैं कि इससे व्यक्ति की आत्मा का हनन होता है वह उसकी आध्यात्मिक शक्तियों को विनष्ट करता है।

उपरोक्त विवेचन के आधर पर यह स्पष्ट होता है कि गाँधी जी के लिए स्वतंत्रता एक समग्र वस्तु थी। वासनाओं की दासता से मुक्ति के रूप में 'नैतिक स्वतंत्रता' विदेशी शासन से मुक्ति के रूप में राष्ट्रीय स्वतंत्रता और मोक्ष तथा सत्य के साक्षात्कार के रूप में ' आध्यात्मिक स्वतंत्रता'। ये सब उनकी समझ स्वतंत्रता के ही विभिन्न रूप थे। इस तरह गाँधी जी के लिए स्वतंत्रता एक समग्र वस्तु है। उनके अनुसार; स्वतंत्रता विकास की एक प्रकिया है जिसका उद्देश्य यह खोज करना है कि सामंजस्यपूर्ण नैतिक उद्देश्यों एवं कार्यों की समुचित व्यवस्था क्या हो सकती है? गाँधी का साध्य नैतिक स्वतंत्रता की अभिप्राप्ति कैसे हो और साधन ' पवित्रता भी अपरिहार्य है।

5.4 अधिकार की धारणा

महान यूनानी दार्शनिक अरस्तु का महत्वपूर्ण कथन है कि राज्य मानव जीवन की रक्षा के लिए स्थापित हुआ है और वह उत्तम जीवन की प्राप्ति के लिए स्थिर रहता है' अर्थात् राज्य मनुष्य के अच्छे जीवन की व्यवस्था करता है ऐसी व्यवस्था राज्य तब कर पाता है जब वह लोगों के लिए उन तमाम बाह्य परिस्थितियों 'का निर्माण करता है जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितान्त अपरिहार्य हैं। इस तरह अधिकार मानव जीवन की वह अनिवार्य परिस्थिति है जो लोगों के स्व के विकास के लिए आवश्यक है। यह व्यक्ति की वह माँग है जिसे राज्य निर्मित करता है और समाज उसे मान्यता देता है। अधिकार के पीछे समाज की शक्ति होती है। अधिकार कोई स्वार्थ पूर्ण दावा नहीं है। अधिकार के लिए यह आवश्यक है कि उसका उद्देश्य समाज का हित हो एवं समाज की सामान्य धारणा द्वारा मान्य हो। इस तरह अधिकार वास्तव में वे दावे होते हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

सरल अर्थ में ' अधिकार व्यक्ति के वे दावे हैं जिसकी स्वीकृति समाज और राज्य द्वारा मिली हुई होती है। इस अर्थ में तीन महत्वपूर्ण तत्व निहित हैं-प्रथम अधिकार व्यक्ति का दावा है। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रत्येक दावा व्यक्ति का अधिकार नहीं है। अधिकार वस्तुत: वे दावे होते हैं जिन्हें समाज मान्यता देता है और राज्य द्वारा लागू किया जाता है। आशीर्वादम् ने लिखा है कि 'अधिकार एक स्वार्थ पूर्ण दावा नहीं है बल्कि यह एक स्वार्थ विहीन इच्छा है जो सभी मनुष्यों पर समान रूप से लागू होता है। '

अधिकार का दूसरा तत्व है समाज द्वारा व्यक्ति के अधिकार को स्वीकृति। यदि समाज व्यक्ति के अधिकार की स्वीकृति नहीं देता तो वह दावा व्यर्थ होता है। किसी भी अधिकार का प्रयोग समाज में होता है इसलिए समाज द्वारा इसकी स्वीकृति आवश्यक है। इस सामाजिक स्वीकृति में कानूनी स्वीकृति भी निहित रहती है। अधिकार का तीसरा तत्व है अधिकार को राजनीतिक स्वीकृति प्राप्त होना अथार्त राज्य की मान्यता प्राप्त होना। यदि अधिकार को राजनीतिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती तो वह केवल नैतिक घोषणा मात्र रह जाता है। व्यक्तियों के अधिकारों को लागू करने के लिए राजनीतिक बल की आवश्यकता पडती है जिसके अभाव में अधिकार निरर्थक हो जाता है। इस संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व की चर्चा की जा सकती है जिसके अभाव में अधिकार नहीं रह जाता वह है- कर्तव्य का तत्व। अधिकार की बात करने मात्र से ही कर्तव्य का बोध नहीं हो जाता अपितु बिना कर्तव्यों की पालना के अधिकार सार्थक नहीं होते। अधिकार कर्तव्य भावना से युक्त होना चाहिए अर्थात् कर्तव्यों के पालन के बिना अधिकारों का कोई मूल्य नहीं हैं। मानव को अपने अधिकार सुरक्षित रखने के लिए कर्तव्यों का पालन करना अनिवार्य है। संक्षेप में अधिकार व कर्तव्य एक सिक्के के दो पहलू है। किसी व्यक्ति का अधिकार उसके कर्तव्यों से ही निर्धारित होता है।

गाँधी मूलत: मानवतावादी थे और व्यक्ति की गरिमा में उनकी अगाध आस्था थी। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता को हर दृष्टि से अनिवार्य मानते थे। साथ ही गाँधी के स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं था कि व्यक्ति जैसा चाहे व्यवहार करे बल्कि उन्होने हर व्यक्ति के लिए अनुशासित होना अत्यन्त आवश्यक माना। गाँधी सदैव व्यक्तियों के अधिकारों को उनके कर्तव्यों से जोड़कर देखते है। गाँधी के अनुसार 'कर्तव्यपरायणता धर्म की आधारशिला है।' उनका कहना है कि बिना कर्तव्यों के पालन के व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। जिस प्रकार साध्य और साधन दोनों की पवित्रता अनिवार्य है उसी प्रकार अधिकार एवं कर्तव्य भी पवित्रता के सिद्धान्त पर आधारित हैं। उनके मत में किसी भी अधिकार की पवित्रता तभी सिद्ध होती है जब इसका प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने कर्तव्यों का समुचित पालन करे।

5.5 अधिकार एवं कर्तव्य पर गाँधी जी के विचार

अधिकार संबंधी अपने विचारों को उद्घाटित करते हुये गाँधी कहते हैं-' ' जीवन की आवश्यकताओं को पाने का हर एक आदमी का समान अधिकार है। यह अधिकार तो पशुओं और पक्षियों को भी है। और चूँकि प्रत्येक अधिकार के साथ एक संबंधित कर्तव्य जुड़ा हुआ है और उस अधिकार पर कहीं से कोई आक्रमण हो तो उसका वैसा ही इलाज भी है इसलिए हमारी समस्या का रूप यह है कि हम उस प्रारम्भिक बुनियादी समानता को सिद्ध करने के लिए उस समानता के अधिकार से जुड़े हुए कर्तव्य और इलाज ढूंढ निकालें। वह कर्तव्य यह है कि हम अपने हाथ-पांव से मेहनत करें और वह इलाज यह है कि जो हमें हमारी मेहनत के फल से वंचित करे उसके साथ हम असहयोग करें। 26 मार्च, 1931 के यंग इण्डिया में उन्होंने अपने विचारों को आगे बढाते हुए वे लिखा कि - 'अधिकारों की उत्पत्ति का सच्चा स्रोत कर्तव्यों का पालन है। यदि हम सब अपने कर्तव्यों का पालन करें, तो अधिकारों को ज्यादा ढूंढने की जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन यदि हम कर्तव्यों को पूरा किये बिना ही अधिकारों के पीछे दौडे तो वह मृग-

मरीचिका के पीछे पड़ने जैसा व्यर्थ सिद्ध होगा। जितने हम उनके पीछे जायेंगे उतने ही वे हमसे दूर हटते जायेंगे। यही शिक्षा श्री कृष्ण ने इन अमर शब्दों में दी है - 'तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है, फल में कदापि नहीं। यहां कर्म कर्तव्य हैं और फल अधिकार।

उनका स्पष्ट मत था कि भारत के प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता, संगठन, धर्म और अन्तःकरण की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया था कि अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति, भाषा और लिपि का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। बिना किसी जातीय, धार्मिक अथवा लैंगिक भेदभाव के सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाना चाहिए। इस तरह गाँधी मानवीय अधिकारों के महान पैरोकार थे। उन्होंने सदैव नवीन परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार अपने मानवीय अधिकारों की सूची को परिवर्तित करने में तत्परता दिखाई।

गाँधी के दर्शन में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है। उनका स्पष्ट कहना है कि 'कर्तव्य पालन का अधिकार ही सर्वोच्च अधिकार है और कर्तव्य पालन के बिना किसी भी प्रकार की अधिकार की कल्पना नहीं की जा सकती। वास्तव में कर्तव्य पालन से ही अपने अधिकारों की प्राप्ति होती है। ''इस तरह गाँधी की विचारधारा में अधिकार एवं कर्तव्य में अन्योन्याश्रितता का संबंध है।

गाँधी जी ने सदैव यह बात दुहराई कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का निर्वहन बिना अपने अधिकारों की चिन्ता करते हुए करना चाहिए। क्योंकि उनके अनुसार अधिकारों का वास्तविक स्रोत कर्तव्यों में निहित है। कर्तव्यों को छोड़कर अधिकारों के पीछे हम जितना दौड़ेंगे, उतने ही अधिकार हमसे दूर होते जाएंगे।

गाँधी के लिए सर्वोच्च धर्म (कर्तव्य अनुपालना) ही सर्वोच्च राजनीति है। वे राज्य को व्यक्तियों का सामूहिक त्याग मानते हैं। उनका मानना है कि वैसा राज्य जिसमें व्यक्ति राज्य से अधिकाधिक प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं तथा अपना न्यूनतम योगदान देते हैं, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। परन्तु साथ ही गाँधीजी ने इस आशय से कि राज्य अपने सत्ता का प्रयोग निरंकुशता के रूप में न करें, अधिकारों की महत्ता को स्वीकार किया है। ध्यातव्य है कि करांची कांग्रेस (1931) में गाँधीजी की सहमति से ही मूल अधिकारों संबंधित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। किन्तु गाँधीजी ने अधिकारों की स्थिति को व्यक्तियों की क्षमता के अनुसार निर्धारित करने पर बल दिया था। उन्होंने मताधिकार के लिए श्रम की अनिवार्यता बतलाई। गाँधीजी ने श्रमिकों और किसानों के लिए न्यूनतम आर्थिक वेतन के अधिकार को स्वीकृति दी। उन्होंने शिक्षा के साथ ही रोजगार के अधिकार को जोड़ने पर बल दिया। गाँधीजी ने राज्य पर यह दायित्व आरोपित किया कि उसे सभी को रोजगार उपलब्ध कराना चाहिए। बावजूद उपरोक्त तर्को के गाँधीजी ने सदैव कर्तव्यों को अधिकारों से श्रेष्ठ माना। उन्होंने कहा कि अधिकारों से आत्मानुभूति होती है परन्तु सच्ची आत्मानुभूति तो कर्तव्यों के माध्यम से ही होती है। प्रत्येक अधिकार अपने कर्तव्यों की पूर्ति करने का अधिकार है। इसमें सभी प्रकार के वैज्ञानिक अधिकार भी निहित हैं। यदि अधिकार की मांग करने वाला उसके अनुरूप कर्तव्य क्षमता नहीं रखता तो ऐसे अधिकार का महत्व स्वत: समाप्त हो जायेगा।

कर्तव्यों के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे स्वयं को संदर्भित करते हुए कहते हैं कि 'युवावस्था में मैने सदैव अपने अधिकारों को जताने का प्रयास किया किन्तु बाद में मुझे यह शीघ्र ही ज्ञान हो गया कि मुझे कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं - अपनी पत्नी पर भी नहीं। अत: उन्होंने स्वयं अपनी पत्नी, संतान, मित्रों, सहयोगियों तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का जानने तथा पूरा करने का कार्य प्रारंभ किया और यह अनुभव किया कि उन्हें कहीं अधिक अधिकार प्राप्त है।

5.6 सारांश

गाँधीजी के अनुसार अधिकार शब्द का प्रयोग केवल राज्य के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। व्यापक दृष्टि से देखने पर अधिकार सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समाहित किये हुए हैं। उनके मत में व्यक्ति सत्य तथा अहिंसा का पालन करने से उत्पन्न दक्षता से अधिकारों का सृजन करता है। व्यक्ति के अधिकार राज्य या अन्य किसी संस्था या समुदाय द्वारा उत्पन्न नहीं है, बल्कि संस्थाएं केवल उन्हें मान्यता प्रदान करती है। व्यक्तियों को अहिंसा के प्राप्त स्तर के अनुपात में ही अधिकार प्राप्त होते हैं। गाँधीजी ने इस तथ्य पर बल देते हुए कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति सामाजिक हित की दृष्टि से प्रत्येक कार्य करे। इस प्रकार गाँधीजी ने अधिकारों को व्यक्तिगत सम्पत्ति न बनाकर उनके माध्यम से समाज सेवा के कार्यो को वरीयता दी है। इस तरह उनका अधिकार विषयक सिद्धान्त सामाजिक कल्याण पोषक है।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. स्वतंत्रता की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. 'गाँधी के समग्र चिन्तन में स्वतंत्रता केन्द्रीभूत तत्व है। ' इस संदर्भ मे अपने विचार प्रस्तुत करें।
3. स्वराज पर एक लघु निबंध लिखिए।
4. 'बिना अधिकारों के मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास संभव नहीं है। टिप्पणी लिखिए।
5. 'अधिकारों की सृष्टि कर्तव्य पालन से ही होती है' - गाँधी के इस कथन के आधार पर अधिकार और कर्तव्य के बीच सम्बन्ध बतलाइये।

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गाँधी, एम.के. : मेरे सपनों का भारत', राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली।
2. प्रभु, आर.के. तथा यू आर. राव, (सम्पादन) महात्मा गाँधी के विचार', एन.बी.टी. नई दिल्ली।
3. जोशी, डी. एम. सी. 'गाँधी नेहरू टैगोर एवं अम्बेडकर', अभिव्यक्ति प्रकाशन,। इलाहाबाद
4. डी. बी.आर पुरोहित, 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, ' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

5. डी. दी. पी. वर्मा, 'आधुनिक राजनीतिक भारतीय चिन्तन' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
6. ज्ञान सिंह संधु (संपादन), राजनीति सिद्धान्त', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली,
7. 7.गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
8. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओपी, दिल्ली, 1973
9. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

इकाई - 6

समानता पर गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गाँधी के विचार में समानता का अर्थ

6.3 गाँधी समानता और सर्वोदय दर्शन

6.4 सर्वोदय दर्शन के आधारभूत तत्त्व

- 6.4.1 सत्य
- 6.4.2 अहिंसा
- 6.4.3 अपरिग्रह
- 6.4.4 आत्म-त्याग
- 6.4.5 सर्वजनहिताय
- 6.4.6 वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त अनुचित
- 6.4.7 साधन-शुद्धि
- 6.4.8 कर्तव्यों का पालन

6.5 गाँधी दृष्टि में अधिकार और कर्त्तव्य

6.6 गाँधी समानता और वर्णाश्रम

6.7 गाँधी समानता और आश्रम धर्म

6.8 गाँधी समानता और आर्थिक दर्शन

- 6.8.1 समता और सामाजिक न्याय
- 6.8.2 उपभोग एवं उत्पादन
- 6.8.3 ट्रस्टीशिप आर्थिक समानता का दर्शन
- 6.8.4 विकेन्द्रीकरण एवं स्वावलम्बन की नीति
- 6.8.5 आर्थिक स्वतन्त्रता और विकेन्द्रीकरण
- 6.8.6 विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थरचना
- 6.8.7 सामाजिक समानता का साधन

6.9 सारांश

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 संदर्भ गन्ध सूची

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत गाँधी के समानता के विचारों को समझ सकेंगे। इस अध्याय के पश्चात आप

- गाँधी की समानता सर्वोदय में निहित है, को समझ सकेंगे।
- सर्वोदय दर्शन के आधारभूत तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- गाँधी की दृष्टि में समानता अधिकार और कर्त्तव्य में निहित है की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- गाँधी समानता एवं वर्णाश्रम, आश्रम धर्म को समझ सकेंगे।
- गाँधी के समानता और आर्थिक दर्शन की जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी वास्तव में एक युग-पुरूष थे। सच तो यह है कि महात्मा युद्ध के पश्चात् गाँधी ने ही सफलतापूर्वक भारत की परम्पराओं और उच्च नैतिक आदर्शों पर आधारित सत्य व अहिंसा के सन्देश को न केवल संसार के सामने रखा बल्कि इसे मूर्त रूप भी प्रदान किया। गाँधी की महत्ता विशेषत: इसी बात में निहित है कि उन्होंने अपने विचारों को जीवन का अंग बनाया। उन्होंने जिस बात को हीक समझा, उसकी सच्चाई को व्यावहारिकता की कसौटी पर परखा। वह सदैव सत्य की खोज में लगे रहे तथा इस कार्य में उन्होंने अहिंसा को सर्वोपरि साधन बनाया। उन्होंने मानव जीवन के सभी पहलुओं सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक इत्यादि का मननपूर्वक अध्ययन किया और विविध समस्याओं को सुलझाने के लिए उपाय सुझाए। उनके द्वारा बताये हुए उपाय सामयिक न होकर शाश्वत हैं। उन्होंने विभिन्न समस्याओं का हल व्यापक दृष्टि से ढूंढा। यही कारण है कि शताब्दियों तक केवल भारत ही नहीं वरन् संसार भर के लोग गाँधीजी के विचारों तथा कार्यों से निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। गाँधीजी ने सिद्ध कर दिखाया कि किस प्रकार अहिंसा की शक्ति हिंसा की पाशविक शक्ति से अधिक प्रभावशाली तथा स्थायी है। वास्तव में महात्मा गाँधी एक ऐसे मौलिक चिन्तक थे, जिन्होंने मानव समुदाय को समग्र रूप से अर्थात् आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक रूप से समानता का आचार व विचार दिया। गाँधीजी के हृदय में सदैव नैतिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता एवं समानता के आदर्शों के प्रति गहरी निष्ठा थी। गाँधी की समानता संबंधी संकल्पना नैतिकता पर आधारित है। गाँधी का मत था कि स्वतन्त्रता एवं समानता सापेक्ष होती है अर्थात् व्यक्ति की स्वतन्त्रता मर्यादित व नैतिक होनी चाहिए, जिससे नैतिक, सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। गाँधी ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि उद्विकासीय संरचना में व्यक्ति के विकास के जो चरण होंगे, वे विभिन्न प्रायोगिक स्तरों से गुजरते हुए सार्वभौमिक विकास की दशाओं के अनुरूप व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज का संतुलित व स्वतन्त्र विकास हो पायेगा।

गाँधी ने व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता और आत्मपूर्णता के प्रयास की समानता पर बल दिया। समानता ऐसी नैतिक शक्ति व नैतिक अधिकार है, जिसके द्वारा समाज का नैतिक

विकास संभव है। गाँधी ने व्यक्ति की समानता को सिर्फ व्यक्ति के विकास के लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज के विकास के लिए अपरिहार्य माना है, जिसमें व्यक्ति का विकास अन्तर्निहित है। वैयक्तिक व सामाजिक समानता की उपर्युक्त गाँधीवादी अवधारणा मानवाधिकारवादी चिंतन के उन आयामों के निकट है, जिसमें राज्य के निम्नतम हस्तक्षेप और व्यक्ति के समग्र विकास के लिए अधिकतम अवसरों की उपलखता की बात की गई है। गाँधी के चिंतन में समानता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं वरन् एक सामाजिक आवश्यकता है।

किन्तु गाँधी की दृष्टि में मानवाधिकार का सृजन सिर्फ कर्त्तव्य व समानता की भूमि पर नहीं होता वरन् इसके लिए आधार स्वतन्त्रता से सुनिश्चित होता है। गाँधी मनुष्य की क्षमताओं के समग्र विकास के लिए समानता की भाँति स्वतन्त्रता को भी अपरिहार्य मानते हैं। गाँधी की समानता की अवधारणा में स्वतन्त्रता की धारणा अन्तर्निहित है, क्योंकि समानता विहीन स्वतन्त्रता मूल्यहीन हो जाती है। गाँधी व्यक्ति के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता को तो स्वीकार करते हैं पर आध्यात्मिक स्तर पर मानव में समानता देखते हैं और इसलिए व्यक्तियों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार करते हैं। गाँधी समानता के उस आधारभूत तत्त्व के पक्षधर थे जो पारस्परिक प्रेम, सहयोग, दया आदि पर निर्भर हो। उनके अनुसार, ' 'किसी पर किसी का वर्चस्व नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से समानता का अधिकार रखता है। "गाँधी के अनुसार एक-दूसरे पर श्रेष्ठता का दावा करने वाले व्यक्ति मानव कहलाने योग्य नहीं। प्रत्येक मनुष्य जन्म से समान होता है यदि कोई दूसरे पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास करता है तो वह मनुष्य के विपरीत है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य को समानता का अधिकार है।

गाँधी प्रत्येक मनुष्य के प्रति आत्मवत् प्रेम की आवश्यकता पर विशेष बल देते थे। उनका मानना था कि आत्मवत् प्रेम का मूल आधार जाति, धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय, लिंग, भेद आदि से मुक्त प्रेम है। गाँधी ने धार्मिक स्तर पर वैयक्तिक समानता की भाँति वर्ण या जाति के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में भेदभाव को अस्वीकार करते हुए यह विचार स्थापित किया कि इस मानव समाज में जाति, प्रजाति या वर्ण में निहित असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए तथा इस आधार पर किसी व्यक्ति को दूसरे की तुलना में असमान स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

आर्थिक समानता की वकालत करते हुए गाँधी इसे अहिंसापूर्ण स्वराज्य की कुंजी मानते हैं। गाँधी आर्थिक समरूपता को समानता नहीं मानते बल्कि उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य लिया जाये और उसकी आवश्यकतानुसार उसे दिया जाए।

इस प्रकार गाँधी समानता के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहते थे। उनका मानवाधिकारवादी चिंतन एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जहाँ समाज का सबसे अन्तिम व्यक्ति भी एक सम्मानपूर्ण व प्रतिष्ठापरक जीवन व्यतीत कर सके। आईरिस मेरियन यंग अपनी पुस्तक 'Justice and the politics of difference' में लिखती है कि सामाजिक न्याय का अर्थ हाशिये पर अवस्थित लोगों के उत्थान का नाम है, जहाँ योजना अवसर एवं सभी स्तरों पर असमानता व्याप्त हो वहाँ सामाजिक न्याय की परिकल्पना नहीं की

जा सकती। गाँधी ऐसी सामाजिक असमानता का विरोध करते हैं और सामाजिक न्याय को भारतीय समाज की प्राथमिक आवश्यकता मानते हैं। ऐसा समाज, जिसका कोई भी अंश मानवीय गरिमा व अस्मिता से वंचित हो वह अमानवीय है। सामाजिक न्याय को गाँधी प्राथमिक मूल्य तो स्वीकार करते हैं पर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी साधन को अपनाये जाने की स्वीकृति नहीं देते, उसे सिर्फ अहिंसा के माध्यम से प्राप्त करने की बात करते हैं। उन्होंने सत्याग्रह को एकमात्र साधन के रूप में स्वीकार किया और शक्ति के प्रयोग के प्रति असहमति व्यक्त की। ' 'मैंने हमेशा यह विश्वास किया है कि सामाजिक न्याय सबसे नीचे और कमजोर वर्गों के लिए भी शक्ति के द्वारा प्राप्त करना असंभव है। मैंने आगे यह विश्वास किया है कि सबसे नीचे के व्यक्तियों के अपने प्रति अन्याय के निराकरण हेतु अहिंसात्मकपरक साधनों के प्रशिक्षण द्वारा अपने प्रति अन्याय को दूर करना संभव है और यह साधन अहिंसात्मक असहयोग है।"

गाँधी भौतिक आवश्यकताओं को सीमित कर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की बात करते हैं। उनके अनुसार नैतिक विकास भौतिक आवश्यकताओं को बढाने में निहित नहीं है बल्कि अनावश्यक इच्छाओं को समाप्त करने में एवं अपनी अधिकतम शक्ति को आध्यात्मिक गरिमा प्राप्त करने हेतु लगाने में निहित है। चूंकि सीमित भौतिक आवश्यकताओं से गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है अत: जो कुछ आवश्यकता से अधिक है, उसे समाज के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

अत: गाँधी ने पूँजी एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सहिष्णुता, सहअस्तित्व, सर्वोदय, साध्य एवं साधनों की पवित्रता, आध्यात्मिक एवं नैतिक साधनों द्वारा समानता पर बल दिया।

6.2 गाँधी के विचार में समानता का अर्थ

गाँधी का समानतावादी दर्शन उस सर्वोदय की कामना करता है, जहाँ मानवीय सम्बन्ध सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित होंगे और सभी की क्षमताओं का पूर्ण विकास व सदुपयोग होगा। सर्वोदय बहुसंख्यक के कल्याण की नहीं वरन् सबके कल्याण की बात करता है। वे चाहते थे कि सबका सहविकास हो, सबका सब प्रकार से उत्थान हो। सर्वोदय सबके उदय की स्थिति है, यह अधिकतम के विकास या उन्नति की स्थिति नहीं है। गाँधी का सर्वोदय दर्शन अहिंसा पर आधारित ऐसी सामाजिक संरचना की बात करता है, जहाँ व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक होंगे और दोनों समन्वित रूप से एक आदर्श राज्य की स्थापना करेंगे । गाँधी का मत है कि नैतिक गुणों का विकास होने के बाद व्यक्ति आत्मनियंत्रित व स्वशासित हो जाता है और स्वतन्त्र प्राणी के रूप में उसे मानव गरिमा को बनाये रखने वाले कार्यों के सम्पादन का निरन्तर अवसर मिलता रहता है।

इस प्रकार गाँधी का समानतावादी दर्शन परम्परागत, जातीय, धार्मिक एवं असमानता आर्थिक संरचना को समाप्त करके व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सर्वोदय, सामाजिक न्याय व जन-सहभागिता वाली शासन-व्यवस्था को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास है।

6.3 गाँधी: समानता और सर्वोदय दर्शन

सर्वोदय सिद्धान्त गाँधी दर्शन की स्वाभाविक परिणति है। यह ऐसा जीवन-दर्शन है, जिसमें जीने का अनुपम तरीका निहित है। इसमें ' 'सब सुखी हम सुखी' ' वाली बात है। यह कोई नई दस्त कहता हो, ऐसा नहीं है, पर पुरानी अच्छाइयों को जीवन में दाखिल करने का एक रास्ता जरूर बताता है। गाँधीजी कहा करते थे, ' 'जीवन जीना सबसे बडी कला है और जिससे इसको सीख लिया, वही सबसे बड़ा कलाकार है। "

मानव-जीवन एवं समाज के 'विकास के लिए प्रतिस्पर्धा को मुख्य साधन माना गया, लेकिन इसका परिणाम भयंकर हुआ। संघर्ष से संघर्ष, प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धा विकसित हुई और फलस्वरूप आज विरोधवाद संघर्षवाद और संहारवाद संस्कृति पर हावी है। राजनीति क्षेत्र में जहाँ इस विचार से द्वेष की भावना का जहर समाज की नस-नस में फैला हुआ है, वहीं आर्थिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के विचार ने बड़े-बड़े पूंजीपतियों, सेठ-साहूकारों में और सामाजिक क्षेत्र में मदान्धता का विकास किया। सामान्य व्यक्ति सर्वहारा होकर शोषण के नीचे दब गया। सर्वोदय ने संघर्ष के स्थान पर सहकार की बात कहकर जीवन के विकास की में समाज को एक अनोखा उपहार भेंट किया। डार्विन ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसमें उन्होंने कहा जो सबसे अधिक सक्षम होगा वही जीवन-संग्राम में बचेगा। डार्विन के इस सिद्धान्त में हक्सले ने कमी और एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो डार्विन महोदय के सिद्धान्त से उदारवादी है। हक्सले ने कहा- ' 'जीओ और जीने दो। " हालाँकि हक्सले के सिद्धान्त में कोई त्रुटि नहीं, लेकिन सर्वोदय सिद्धान्त मानवता के उच्चतम शिखर को प्राप्त करते हुए कहता है- ' 'दूसरे के लिए जीओ, जिलाने के लिए जीओ। " सर्वोदय में सर्व का हित, सर्व के लिए हित, सर्व के द्वारा हित की साधना की बात कही गई। केवल साधना की बात नहीं, वरन् जीवन के हर पहलू को यह विचार स्पर्श करता है। आदमी अपना रोजगार भी सर्वोदय की भावना से कर सकता है। व्यक्ति केवल अपने बारे में नहीं, बल्कि अपने पड़ौस के बारे में भी सोचे, यह इस विचारधारा की नींव का पहला पत्थर है। तभी तो बापू ने कहा था, ' 'अमेरिकन गेहूँ खाकर अपने पड़ौसी अनाज के व्यापारी को ग्राहक के अभाव में भूखों मरने देना पीड़ादायक है। वैसे ही ' रीजेन्ट स्ट्रीट (इंग्लैण्ड का एक औद्योगिक नगर) की नवीनतम व तड़क-फड़कदार पोशाक पहनना मेरे लिए पापपूर्ण है जबकि मैं जनता हूँ कि यदि मैंने अपने पड़ोसी जुलाहों की बुनी पोशाक पहनी होती तो न केवल मेरा तन ढकता, बल्कि उनके तन भी ढकते और पेट भी भरते। "पड़ौसी से सहयोग की बात व्यापक रूप से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ तक में लागू होती है। यह सामाजिकता है। यदि हम सर्वोदय के इस विचार से मुँह मोडते हैं तो फिर हमारे लिए समाजवाद, साम्यवाद या सभ्यता और संस्कृति आदि की बात करना प्रवंचना मात्र है। फिर मनुष्य की मनुष्यता की असली परख भी तो उसकी पशुता में नहीं होकर उसकी आध्यात्मिक शक्ति, उसकी सर्वभूत हित-साधन की हृदयवत्ता में है। मानव समाज भी पशुबल की उपेक्षा कर नीति एवं धर्मबल को ही स्वीकारता है। ऐशले मोंटेग्यू जैसे विचारक ने अपनी पुस्तक 'On being human' में कहा है कि ' 'संघर्ष या होड़ नहीं, सहयोग ही प्रकृति का सिद्धान्त है। "विलर भी सर्वोदय के विचार

का ही समर्थन करता हुआ कहता है कि प्रकृति में सबसे अधिक प्रवृत्ति पाई गई है-सहजीवन और सहयोग की। सह-अस्तित्व प्रकृति का नियम है।

धर्म की दृष्टि से सर्वोदय को सभी धर्मों का समन्वय कहा जा सकता है। स्वयं विनोबा ने सर्वोदय को 'सर्वोत्तम धर्म तथा सर्वोदयमिद् तीर्थम' कहा है। लगता है विनोबा की यह मान्यता सच भी है। आखिर विश्व के सभी धर्मों का सार भी तो सबका हित, सबका कल्याण करना है। इसलिए सर्वोदय ऐसा धर्म-दर्शन है, जिसके अन्तर्गत दुनिया के सभी धर्म समाये हुए हैं। सर्वोदय में प्रत्येक के दोषों को अस्वीकार कर सिर्फ गुण को स्वीकारा गया है।

सर्वोदय सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा सहयोग के आधार पर आदर्श सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करता है। इस आदर्श समाज-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का समान अवसर प्राप्त होगा। उसमें ऊँच-नीच छूत-अछूत, गरीब-अमीर, मालिक-मजदूर और भुमिपति एवं खेत-मजदूर के बीच गहरी खाई न होगी, कोई किसी का शोषण नहीं कर सकेगा। ईर्ष्या और द्वेष के स्थान पर प्रेम और भलाई ही सामान्य व्यवहार के नियम होंगे और सब व्यक्ति एक-दूसरे की उन्नति करने का मान करेगें। यह व्यवस्था स्वर्गतुल्य होगी। इसी को संक्षेप में सर्वोदय: कहा गया है सर्वोदय ने मानव समाज के परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण के लिए विश्व के अन्य धर्मों की तरह अहिंसा, प्रेम और करुणा को ही अपना मुख्य साधन माना है। सामाजिक शोषण, उत्पीड़न, विषमता एवं अन्य सामाजिक, आर्थिक अन्याय के उन्मूलन के लिए सर्वोदय दण्ड शक्ति और हिंसा शक्ति के विरुद्ध अहिंसक जनशक्ति जिसे 'तीसरी शक्ति' भी कहते हैं, का सहारा लेता है। सर्वोदय विचार की यह मान्यता है कि 'दण्ड शक्ति के आधार पर कभी भी स्वस्थ समाज की स्थापना नहीं हो सकती। इसके लिए तो विचार क्रान्ति करनी होगी। जनता के अभिक्रम और कर्तृत्व शक्ति को जगाकर ही अहिंसक समाज की स्थापना की जा सकती है। सर्वोदय में त्याग के द्वारा हृदय परिवर्तन, तर्क के द्वारा विचार परिवर्तन, शिक्षा के द्वारा संस्कार परिवर्तन एवं पुरुषार्थ के द्वारा स्थिति परिवर्तन कर स्वच्छ एवं नैतिक पूर्ण मानव समाज की रचना की जाती है। ऐसे समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है। समाज में प्रेम एवं सहयोग का स्वस्थ वातावरण रहता है। अत: सर्वोदय समाज वर्ग, जाति अथवा अन्य दलों से विहीन समाज का आदर्श उपस्थित करता है।

गाँधीजी ने नैतिक मूल्यों पर प्रतिस्थापित जिस आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की, उसे 'सर्वोदय समाज' की संज्ञा दी। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है, 'सबका उदय और सब प्रकार से उदय' अर्थात् समाज में प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण उत्थान। प्रसिद्ध गाँधीवादी काका कालेलकर कहते हैं-सर्वोदय कोई मामूली शब्द नहीं है गाँधी के हृदय से निकली हुई यह एक ऋषि वाणी है। आज के युग का यह 'युग मंत्र' है। सर्वोदय पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद की होड़ में खड़ा किया हुआ कोई नया वाद नहीं है। सर्वोदय सब वादों का समन्वय करने वाला कल्याणकारी मन्त्र है। गाँधीजी के एक अन्य सात्विक अनुयायी ने सर्वोदय का भाष्य करते हुए कहा है कि सर्वोदय के मानी है अन्तोदय जो सबसे पिछड़ा हुआ है, दलित और उपेक्षित है, उससे प्रारम्भ करके सबकी उन्नति के लिए प्रारम्भ किया जाता है, वह है सर्वोदय। सर्वोदय में पवित्र-अपवित्र का भेद नहीं है। गुलामों की गुलामी नष्ट करने के लिए कटिबद्ध यह सर्वोदय

जालिमों का भी कल्याण ही चाहता है। अन्याय का प्रतिकार करते हुए अन्यायी के प्रति उसके मन में दया भाव ही रहता है। विनोबा सर्वोदय के अर्थ को साधारण यानी सरल अर्थ बनाते हुए समझाते हैं कि हमने अपने जीवन को एक-दूसरे के विरोध के निमित्त कर लिया है। जैसे धन का ही संग्रह कर हम दूसरे के हितों को नजरअन्दाज करते हैं। एक प्रकार से यदि कहा जाये तो कभी-कभी तो दूसरों से छीनकर ही हम धन का अनावश्यक संग्रह करते हैं। मानवता और प्रेम से अधिक महत्त्व हमने धन को दे रखा है। नतीजा यह है कि परस्पर मेल या सम्बन्ध जो आसान होना चाहिए था, वह मुश्किल हो गया है। उस आसान प्रेम की शोध में कई राजकीय, सामाजिक और आर्थिक शास्त्र बन गये हैं, फिर भी सबका हित नहीं सिद्ध हो रहा है, सबका कल्याण नहीं हो रहा है। सबका हित या कल्याण तो एक सीधी-सी बात मान लेते हैं और वह यह कि हर व्यक्ति एक-दूसरे की फिक्र रखें और अपनी फिक्र भी ऐसी न रखें कि जिससे दूसरे को तकलीफ हो। यही कुटुम्ब में भी होता है। कुटुम्ब का न्याय समाज के लिए लागू करना कठिन नहीं होना चाहिए, बल्कि आसान होना चाहिए। ऐसे कौटुम्बिक न्याय को सर्वोदय कहते हैं। यह सर्वोदय का कम-से-कम और स्पष्ट अर्थ है और इसी से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें दूसरे की कमाई का नहीं खाना चाहिए। हमें अपना भार दूसरे पर नहीं डालना चाहिए। दूसरे का धन हम किसी तरह ले लें, इसे अपनी कमाई नहीं कहा जा सकता है और इस नीति से दूसरों के हित के बदले अहित ही होता है। कमाई का अर्थ प्रत्यक्ष उत्पादन है।

सबका एक साथ विकास ही 'सर्वोदय' है। सर्वोदय का यह अर्थ नहीं होगा कि कुछ का विकास हो और कुछ का नहीं हो, सर्वोदय बहुमत को हित की बात नहीं करता, वह तो समान रूप से सबका उदय चाहता है। सर्वोदय का साधन ' 'सर्व' ' शब्द में है, जो कुछ भी हो, व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास या फिर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक उन्नति, वह सबकी हो। जो कुछ भी प्राप्त हो, वह समाज के सभी व्यक्ति को प्राप्त हो। सर्वोदय इसी अर्थ में कहता है जो कुछ भी पैदा करो, जो कुछ भी प्राप्त करो वह सहमें बाटो। श्रम का, धन का, जमीन का समान बंटवारा कर लो।

6.4 सर्वोदय दर्शन के आधारभूत तत्त्व

गाँधी जी के सर्वोदय संबंधी विचार को स्पष्ट करते हुए विनोबा भावे ने कहा है- गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय आन्दोलन का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों का या बहुत से व्यक्तियों का उत्थान करना नहीं है। इसका उद्देश्य अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख से भी नहीं बल्कि हम सभी के उच्च व निम्न, सबल तथा निर्बल के, बुद्धिमान और बुद्धिहीन के सुख से ही संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय इसी भावना को प्रकट करता है। सर्वोदय का सिद्धान्त समस्त समाज का हित चाहता है। इस सिद्धान्त में किसी विशेष व्यक्ति, विशेष वर्ग, विशेष संस्था इत्यादि की भलाई के लिए पहल नहीं की जाती। सभी की भलाई के लिए समान रूप से कार्य किया जाता है। इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए भारतन कुमारप्पा ने कहा है कि ' 'सर्वोदय जन-कल्याण के रूप में एक आदर्श समाज की झलक देता है। इसका आधार जन-कल्याण है। इसीलिए प्रत्येक को इसमें एक समान अधिकार प्राप्त है, चाहे वह राजा हो या किसान, हिन्दू हो

या मुसलमान, अछूत हो या उच्च वर्ग का, गोरा हो या काला, समाज में सभी को समान सदस्य के रूप में मान्यता प्राप्त होगी।"

अत: सर्वोदय दर्शन के आधारभूत तत्त्व आध्यात्मिक हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

6.4.1 सत्य

गाँधीजी के लिए सत्य सर्वप्रधान है जो अपने में अनेक सिद्धान्तों को समेटे हुए है। उनका सारा जीवन सत्य के साथ किया गया प्रयोग है। उनके विचार में सत्य ही ईश्वर है। इसलिए इसी सत्य के प्रति निष्ठा ही व्यक्ति के अस्तित्व का एकमात्र औचित्य है। व्यक्ति की समस्त गतिविधियाँ सत्य केन्द्रित होनी चाहिए। सत्य ही व्यक्ति के जीवन का प्राण तत्व होना चाहिए, क्योंकि सत्य के बिना जीवन में किसी सिद्धान्त व नियम का पालन करना असंभव है। इसलिए सर्वोदय विचार के पालन करने के लिए सत्य का पालन अपरिहार्य है, क्योंकि सत्य का पालन तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित है। सत्य के पालन में पूर्वाग्रह, टालमटोल, प्रवंचना या विकृति को कोई स्थान नहीं है। सर्वोदय विचार को व्यक्त करते समय आचार्य विनोबा भी कहा करते थे, ' 'प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान के अनुसार सत्य का पालन करे। समाज में रहकर सबका यही कर्त्तव्य होना चाहिए।" साधारण अर्थ में सत्य को सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्य-वाणी एवं सत्य-कर्म से जान सकते हैं। असत्य का सत्यादि साधनों द्वारा प्रतिकार करना सत्याग्रह है। अत: सर्वोदय या सबके उत्थान में सत्य का बहुत महत्त्व है।

6.4.2 अहिंसा

सर्वोदय में सत्य की भांति अहिंसा का भी महत्त्व है। सामान्य अर्थ में किसी दूसरे जीव को न मारना ही अहिंसा है। व्यापक अर्थ में व्यक्ति द्वारा मन, वचन और कर्म द्वारा प्राणी-मात्र को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा है। अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है। गाँधीजी कहते हैं जो व्यक्ति अहिंसक होने का दावा करता है, उससे यह अपेक्षित है कि वह अपने को क्षतिग्रस्त करने वाले पर क्रोधित न हो। वह उसका बुरा नहीं चाहेगा, वह उसका भी भला चाहेगा, वह उसे किसी प्रकार शारीरिक आघात नहीं पहुंचायेगा। वह अनिष्टकर्त्ता द्वारा उसे पहुंचायी गयी समस्त क्षति को सह लेगा। इस प्रकार समस्त जीवों के प्रति दुर्भावना का परिपूर्ण तिरोभाव ही अहिंसा है। अपनी गतिशील अवस्था में इसका अर्थ है-अनन्त: सम्मत पीड़ा सहन। इसका प्रसार हानिकारक कीटाणु समेत मानवेत्तर योनियों तक है। उनकी सृष्टि हमारी विनाशात्मक प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए नहीं हुई है। अपने सक्रिय रूप में अहिंसा सर्वजीवों के प्रति सद्भावना है। यह विशुद्ध प्रेम है। सर्वोदय के विचार में यह मान्य है कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ अपने-अपने व्यवहार में अहिंसक होना चाहिए, तभी सर्वोदय का हित सधेगा। गाँधीजी तो कहा करते थे, ' 'मेरे लिए स्वराज्य से भी बढ़कर अहिंसा का स्थान है। ' सर्वोदय जनसमूह में अहिंसा को फैलाना चाहता है, क्योंकि जन-समूह द्वारा हिंसा के अवलम्बन से रोग कभी नहीं मिट सकता। आज का अनुभव यही बताता है कि हिंसा की सफलता क्षणिक होती है। अब तक हिंसा के विविध रूपों एवं मुख्यत: हिंसक की इच्छा पर निर्भर कृत्रिम यंत्रों का

ही तो प्रयोग किया गया है। निर्णायक क्षणों में ये नियंत्रण स्वभावत: असफल रहे हैं। गाँधीजी का विश्वास है कि लोकतांत्रिक सर्वोदय समाज-व्यवस्था के लिए अहिंसा अनिवार्य है। डॉ. राधाकृष्णन भी यह मानते हैं कि, ' 'आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता एवं श्रेष्ठता, मानव-जाति के बन्धुत्व-बोध तथा शांति, प्रेम-इन आदर्शों के आधार पर एक पूरी नई पीढ़ी को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है।'

6.4.3 अपरिग्रह

सर्वोदय दर्शन का तीसरा मंत्र अपरिग्रह है। गाँधीजी अपरिग्रह का अर्थ समझाते हुए कहते हैं, ' 'आदर्श स्थिति में अपरिग्रह केवल शरीर के वस्त्रों तक का त्याग न होकर अपनी अस्थियों के मांस तक का त्याग है।" सर्वोदय दर्शन का जीवन में पालन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी शारीरिक आवश्यकता के अनुसार किसी भी वस्तु का अधिक संग्रह न करे और न उससे किसी प्रकार का भेद करे। वस्तुओं का उपयोग केवल इस शरीर को चलाने के लिए हो। आचार्य विनोबा ने इस सम्बन्ध में कहा, ' 'यदि इस दृष्टिकोण को अपनाया जाये तो इस संसार में कोई भी व्यक्ति भूखा न मरें। गाँधीजी का विश्वास था कि ईश्वर पर निष्ठा रखने वाले व्यक्ति को परिग्रह की जरूरत नहीं होती है। सन्त और महापुरुषों का जीवन इसका सबल प्रमाण है। बिना संग्रह किये ही संग्रहकर्त्ता व्यक्ति से महापुरुषों का जीवन अधिक सुखमय होता है। इसलिए सर्वोदय विचार में अपरिग्रह का महत्त्वपूर्ण स्थान होना आवश्यक है।

6.4.4 आत्म-त्याग

सर्वोदय सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यही है कि त्यागमय जीवन में ही सच्चा सुख है, सच्चा आनन्द है-! निश्चय ही अपने कर्तव्यों का पालन करने वाला और सत्य मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति दूसरों की सेवा में शान्ति का अनुभव करेगा। वह कभी भी किसी को धोखा तो नहीं ही देगा, अपना जीवन भी सादगीपूर्ण व्यतीत करेगा। इसलिए सर्वोदय विचार के सूत्रधार महात्मा गाँधी हरिजनों, दीन-दुखियों और दरिद्रों की सेवा करने में गर्व का अनुभव करते थे और दूसरों को इस पुण्य में सहभागी होने को प्रेरित करते थे। बापू का कहना था, ' 'दूसरों की स्वेच्छापूर्वक सेवा में हमारी शक्तियाँ लगनी चाहिए। यही सब धर्मों एवं सर्वोदय का सार है।" इसलिए तो विनोबा और जयप्रकाश ने दूसरों की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया 'जीवनदान' कर दिया।

6.4.5 सर्वजनहिताय

सर्वोदय का अर्थ ही है सबका उदय। सर्वोदय की यह भावना सर्वोदय विचार का सार है। गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक ' 'अन टु दि लास्ट' ' के आधार पर जो सर्वोदय के तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किए है वे समष्टि के हित में ही निहित हैं। आचार्य विनोबा के मतानुसार ' 'सर्वोदय' ' का तात्पर्य है हर एक-दूसरे के लिए फिक्र रखे, साथ ही अपनी ऐसी फिक्र न रखें जिससे कि दूसरों को कष्ट दे। यही हर कुटुम्ब में भी होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ' का यह

न्याय समाज पर लागू करना कठिन नहीं, बल्कि आसान होना चाहिए।" सर्वोदय के इस तत्व में गाँधीजी और विनोबाजी ने समाज में सबके सुखी होने का विचार व्यक्त किया है। दोनों इस बात को स्वीकारते हैं कि नैतिक अच्छाई हवा में नहीं रहती, बल्कि समस्त राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में निहित होती है। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के सभी स्तरों पर 'सर्वजन हिताय' की नीति का समर्थन किया। इसी विशेषता के कारण उनकी विचारधारा 'सर्वोदय' के नाम से प्रसिद्ध है।

6.4.6 वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त अनुचित

सर्वोदय दर्शन मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को बिल्कुल स्वीकार नहीं करता, क्योंकि जब तक समाज में वर्ग-भेद रहेगा तो संघर्ष होना भी स्वाभाविक है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे साधन अपनाये जो सभी वर्गों के लिए हितकर हो तथा कम से कम संघर्ष होने की संभावना हो। सत्य और अहिंसा को आधार मानकर ही वर्ग-संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। वर्ग-संघर्ष के विरोध में बोलते हुए विनोबा ने कहा, ' 'जो वर्ग-विग्रह के अनिवार्य होने की बात करते हैं, उन्होंने अहिंसा का गूढ़ अर्थ नहीं समझा है या केवल ऊपर-ऊपर से ही समझा है।"

6.4.7 साधन-शुद्धि

गाँधी दर्शन में सर्वोदय प्राप्ति हेतु साधन को साध्य से विशेष महत्ता दी गई है। इसलिए साधन-शुद्धि पर विशेष बल दिया गया। गाँधीजी के अनुसार साधन की पवित्रता ही साध्य को पवित्र बनाती है, क्योंकि जैसा साधन होगा, वैसे ही साध्य की प्राप्ति भी होगी। आचार्य विनोबा का विचार है कि अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए चाहे जैसे साधन यदि मान्य समझे जाते हैं तो फिर किसका उद्देश्य ठीक है, यह कौन तय करेगा? हर एक को अपना उद्देश्य ठीक ही लगता है लेकिन कितने ही अलग-अलग उद्देश्य क्यों न हो, उनकी प्राप्ति के लिए हिंसा और असत्य का उपयोग तो करना ही सब कुछ है। अतएव साध्य के सही होने पर भी यदि साधन अनुचित हों तो वे साध्य को नष्ट कर देंगे या उसे अनुचित दिशा में मोड़ देंगे। साधन और साध्य में गहरा और अटूट संबंध है, वे एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।

6.4.8 कर्तव्यों का पालन

सर्वोदय में जिस आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना की गई है, उसकी स्थापना तभी सम्भव है, जब प्रत्येक नागरिक बिना किसी आदेश या दबाव के अपने कर्तव्यों का पालन स्वेच्छा से करेगा। गाँधी के सर्वोदय विचार में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों का अधिक महत्त्व है। कर्तव्यों का पालन करने से अधिकार स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार विनोबा भी सदैव का पालन के महत्त्व पर बल देते हैं। इस संबंध में उनका विचार था कि अगर केवल अधिकारों का आग्रह रखें और कर्तव्यों को नजर-अन्दाज कर दें तो चारों तरफ हिंसा का वातावरण उपस्थित हो जायेगा और अव्यवस्था फैल जायेगी। यदि अधिकारों के आग्रह के बजाय

हर-एक अपने कर्तव्यों का पालन करें तो मानव-जाति में जल्द ही व्यवस्था का राज्य स्थापित हो जायेगा, जिससे सर्वोदय के उद्देश्यों को पूरा होने में भी आसानी होगी।

गाँधीजी ने अपने समानता के दृष्टिकोण में अधिकार संबंधी व्याख्या को अपने दर्शन में प्रमुख स्थान दिया। वस्तुत: उनका सम्पूर्ण जीवन अधिकारों की प्राप्ति के लिए ही समर्पित था। ईश्वर की सर्वोच्चता में आस्था रखने के कारण वे मानवीयता, समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व में विश्वास रखते थे और यही अधिकार उनके राजनीतिक दर्शन के निष्कर्ष थे।

गाँधी मानते थे कि अधिकारों के प्रयोग द्वारा व्यक्ति अपने श्रेष्ठत्व को प्राप्त करता है और इन अधिकारों में अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता का अधिकार सर्वोपरि है तथा अधिकारों के उपभोग में समानता के अधिकार की प्राथमिकता है। वे स्वीकारते थे कि व्यक्ति के विकास के लिए नागरिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों की आवश्यकता है। इसी मान्यता के आधार पर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध विद्रोह किया। अस्पृश्यता के अन्त के लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया और अंग्रेजों से भारत को मुक्ति दिलाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। अधिकारों की प्रकृति के संबंध में गाँधी आध्यात्मिक व नैतिक श्रेणी के अधिकारों को ही स्वीकारते थे। उनके अनुसार राजनीतिक, सामाजिक, वैयक्तिक, नागरिक अधिकार भी नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरने के बाद ही अधिकारों की श्रेणी में आते हैं और वे तभी व्यक्ति के नैतिक विकास में सहायक होते हैं। गाँधी ने कहा कि अधिकारों का सृजन राज्य या किसी दूसरे समुदाय द्वारा नहीं होता है। जैसे-जैसे व्यक्ति सत्य और अहिंसा को साधना के अधिकारों के लिए योग्यता प्राप्त कर लेता है, वैसे-वैसे उसको अधिकार मिलते जाते हैं। राज्य और सरकार केवल अधिकारों को मान्यता देते हैं। गाँधी का मत था कि राज्य जितना अधिक अहिंसक होगा, उतने ही अधिक व्यक्ति अधिकार होंगे। उनके शब्दों में ' 'असत्य पूर्ण व हिंसक साधनों का स्वाभाविक परिणाम है-विरोध को विरोधियों के विनाश द्वारा हटाना'। इससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता की वृद्धि नहीं होती। केवल शुद्ध अहिंसक व्यवस्था में ही वैयक्तिक स्वतन्त्रता की पूर्ण रूप से पूर्ति होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों में नैतिक क्षमता अर्थात् उनके द्वारा प्राप्त की गई अहिंसा के स्तर के अनुसार अन्तर होता है। यदि अहिंसा पर आक्रमण हो तो उसका उचित साधन है-अहिंसक असहयोग। अधिकारों के सामाजिक कल्याणकारी सिद्धान्त में विश्वास रखते हुए लास्की के समान गाँधी भी मानते थे कि व्यक्ति को अधिकार उसके वैयक्तिक विकास मात्र लिए नहीं दिये जाते, बल्कि उसको अधिकार इसलिए प्राप्त हैं कि वह उनका उपभोग करते हुए समाज- की अभिवृद्धि करे। इस प्रकार सामाजिक कल्याण की भावना ही अधिकारों की आधारशिला है।

6.5 गाँधी दृष्टि मे अधिकार और कर्त्तव्य का सम्बन्ध

यद्यपि गाँधी के विचारों में अधिकार द्वारा व्यक्ति की श्रेष्ठता प्राप्त की जा है, तथापि अधिकार की अपेक्षा वे कर्त्तव्य को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार अधिकार का अर्थ है आत्मानुभूति का अवसर मिलना और आत्मानुभूति का अर्थ है दूसरों की सेवा तथा उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करके उनके साथ आध्यात्मिक एकता की अनुभूति कराना। इस तरह प्रत्येक अधिकार अपने कर्तव्य पालन करने का अधिकार है। इसलिए गाँधी ने कहा- ' 'अपने

कर्तव्य पालन करने का अधिकार एकमात्र ऐसा अधिकार है, जिसके लिए मनुष्य जी सकता है, मर सकता है। इसमें सभी अधिकारों का समावेश होता है।"

गाँधी कहते हैं कि ऐसा कोई भी कर्त्तव्य नहीं है जो अनुरूप अधिकारों को नहीं देता है और न ही वे सच्चे अधिकार हैं, जिनका जन्म कर्त्तव्य से न होता हो। इसलिए सच्ची के अधिकार उन्हीं को मिलते हैं जो राज्य की सेवा करते हैं और वे ही समुचित अधिकारों का प्रयोग भी करते हैं। गाँधी कहते हैं कि जिन व्यक्तियों को अपने कर्त्तव्य पालन के फलस्वरूप अधिकार मिलते हैं वे इनका उपयोग अपने लिये न करके समाज व देश सेवा के लिए करते हैं। गाँधी अधिकारों का मूल स्रोत कर्तव्य को मानते हुए कर्तव्य पालन पर अधिक बल देते हैं तथा केवल उन्हीं अधिकारों को मान्यता देते हैं, जो कर्तव्य पालन से प्राप्त होते हैं। व्यक्ति की स्वार्थमूलक प्रकृतियों की अपेक्षा समाज सेवा पर जोर देते हुए गाँधी स्वावलम्बन की ओर प्रेरित करते हैं और व्यक्ति से यह अपेक्षा करते हैं कि सभी के साथ आध्यात्मिक एकता अनुभव करते हुए तथा अपने आत्मोत्थान के लिए गतिशील रहते हुए वह अपने अधिकारों का प्रयोग हित के लिए करेगा।

6.6 गाँधी: समानता और वर्णाश्रम

मानव जीवन की समग्रता के आधार पर गाँधी ने अपने जीवन-दर्शन के प्राण तत्व सत्य-अहिंसा को मनुष्य के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक बनाया। सामाजिक जीवन में नैतिकता को प्रतिष्ठापित कर उन्होंने एक आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की। गाँधी ने इसे सर्वोदय समाज की संज्ञा प्रदान की। यह एक ऐसा समाज होगा, जिसमें सभी स्वेच्छा से नैतिक नियमों का पालन करेंगे, जो पूर्णरूपेण सामाजिक सामंजस्य, संतुलन व पारस्परिक सहयोग पर आधारित होगा। इस लक्ष्य में अधिकतम रूप में सभी का सम्पूर्ण कल्याण होगा। वस्तुत: सामाजिक क्षेत्र में गाँधी का आदर्श विषमता रहित, शोषण रहित, न्यायपूर्ण व समानता पर आधारित समाज था। अपने इसी आदर्श समाज की संकल्पना को मूर्त रूप देने हेतु सामाजिक संगठन में उन्होंने वर्ण-व्यवस्था की आवश्यकता को स्वीकार किया।

गाँधी ने हिन्दू धर्म के एक प्रमुख आधार के रूप में वर्ण-व्यवस्था का समर्थन किया। उन्होंने कहा-प्रत्येक व्यक्ति कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियां लेकर जन्म लेता है। इसी तरह प्रत्येक आदमी की योग्यताओं की कुछ निश्चित सीमाएँ होती हैं, जिनका उल्लंघन कर पाना या जीतना सम्भव नहीं होता है। इन्हीं सीमाओं को ध्यान में रखकर वर्ण- व्यवस्था का जन्म हुआ है। गाँधी के अनुसार वर्ण धर्म के दो अर्थ होते हैं-एक अर्थ में यह नीति सम्मत आजीविकाओं का सूचक है जो किसी कुटुम्ब विशेष में जन्म लेने के कारण कर्त्तव्य की भावना से ग्रहण किया जाता है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्वजों के सरकारों व परम्पराओं से मिली आजीविका को ग्रहण करना चाहिए तथा बचा हुआ धन समाज हित में लगाने का दायित्व निभाना चाहिए। प्रत्येक को अपने पुरखों द्वारा प्राप्त आनुवांशिक व्यवसाय का वहाँ तक निर्वाह करना चाहिए, जहाँ तक वह आधारभूत नैतिकता के विरुद्ध न जाता हो। वर्ण धर्म के अनुसार ब्राह्मण का कर्त्तव्य ब्रह्मा को पहचानने और उसका उपदेश कर धर्म भाव से जीने का है। क्षत्रिय का कर्त्तव्य जनता का पालन, उनकी रक्षा तथा मर्यादित रूप से उसके लिए द्रव्य लेना

है। वैश्य का प्रजा पालन के लिए व्यवसाय करने का अधिकार है तथा शूद्र का कर्त्तव्य धर्म समझकर सभी की सेवा करना है। साथ ही सभी का यह कर्त्तव्य भी है कि अपनी आवश्यकता पूर्ति के बाद बचे हुए धन को समाज सेवा के कार्य में लगाएँ।

वर्ण-धर्म का दूसरा अर्थ गाँधी ऐसे धर्म से लगाते हैं, जिसमें सभी वर्णों के बीच आपस में ऊँच-नीच का भेदभाव न पैदा कर समानता का भाव पैदा किया जाता है। गाँधी के अनुसार वर्णाश्रम धर्म बताता है कि दुनिया में मनुष्य का सच्चा लक्ष्य क्या है? उसका जन्म इसलिए नहीं हुआ है कि वह रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा पैसा इकट्ठा करने के तरीकों व साधनों की खोज करे। उसका जन्म तो इसलिए हुआ है कि वह अपनी शक्ति का प्रत्येक अणु ईश्वर को जानने में लगाऐ। इसलिए वर्णाश्रम धर्म कहता है कि अपने शरीर के निर्वाह के लिए अपने पूर्वजों का ही धंधा पर्याप्त है।

गाँधी जन्म ओर कर्म दोनों को ही वर्ण की सदस्यता का आधार मानते हैं। उनके अनुसार किसी वर्ण की सदस्यता का सर्वोत्तम आधार यह है कि व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म ले, उसी वर्ण के कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक निभाएँ। गाँधी के अनुसार ' 'वर्ण का निर्णय तो जन्म के द्वारा होता है किन्तु उसका संरक्षण उसके कर्तव्यों का पालन करके ही किया जा सकता है। ब्राह्मण माता-पिता का पुत्र ब्राह्मण ही होगा, किन्तु यदि वयस्क होने पर उसके जीवन में ब्राह्मणोचित गुण अभिव्यक्त नहीं हुए तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। यदि वह किसी और वर्ण के कार्य में कुशल है व उसे कुशलतापूर्वक निभाने की इच्छा रखता है तो वह संबंधित वर्ण का कहलाएगा ब्राह्मण नहीं।''

गाँधी इस परम्परागत विचार का निषेध करते थे कि शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका कमाना किसी एक वर्ण विशेष का ही कर्त्तव्य है। गाँधी का मत था कि प्रथम तीनों वर्णों को अपने परम्परागत वर्ण संबंधी कर्मों (दायित्वों) को सामाजिक सेवा के रूप में अपनाना चाहिए, किन्तु उन्हें भी अपनी आजीविका शारीरिक श्रम द्वारा अर्जित करनी चाहिए। गाँधी के अनुसार इस प्रकार चार वर्ण तो बने रहेंगे और वर्ण आधारित कोई भेदभाव भी नहीं किया जाएगा। गाँधी के अनुसार शारीरिक परिश्रम से दो लाभ होंगे, पहला सामाजिक समानता बढ़ेगी और दूसरा आर्थिक समानता की स्थापना होगी।

6.7 गाँधी: समानता और आश्रम धर्म

हिन्दू धर्म मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास चार आश्रमों में बांटता है तथा प्रत्येक आश्रम के लिए अलग-अलग कर्तव्यों का विधान करता है। जीवन के प्रथम 25 वर्ष पुरुष के लिए व 18 वर्ष स्त्रियों के लिए की अवस्था ब्रह्मचर्यावस्था कहलाती है। इसमें व्यक्ति का मुख्य कर्त्तव्य विद्याध्ययन और इन्द्रिय संयम के द्वारा पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करना है। यह आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य अवस्था है, जिसमें प्रवेश के बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता। गृहस्थ आश्रम में मुख्य कर्त्तव्य राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाना है। विवाह आदि के माध्यम से संतति को आगे बढ़ाना है। इस आश्रम में भोग-विलास को अधिक महत्त्व दिया गया है। लेकिन गाँधी इस विचार का विरोध कर संयम और सादगी की आवश्यकता पर बल देते हैं। परन्तु जो संयम के बाद भी भोग-लिप्सा के आकर्षण को रोक नहीं सकते, इनके लिए भोगों की

मर्यादा और उनकी सेवन-विधि का विधान किया गया है। मनुस्मृति का यह विचार गाँधी को मान्य नहीं था कि स्त्री-पुरुष को ऋतुगामी होना ही चाहिए। गाँधी के अनुसार ' 'स्त्री-पुरुष में से कोई भी एक इन्द्रिय-संयम की इच्छा रखता है तो दूसरे को कष्ट सहकर भी उसका साथ देना चाहिए। "गाँधी के अनुसार, ' 'संयमपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने पर ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार मिल सकता है। " गाँधी वनप्रस्थी उसे कहते हैं कि जिसने अपनी इन्द्रियों को संयमित कर लिया है, परन्तु राग-द्वेष पर विजय प्राप्त नहीं की है। राग-द्वेष को पूर्णत: जीतने वाला तथा सत्य, अंहिसा ब्रह्मचर्य का मन, वचन, कर्म से पालन करने वाला गाँधी के अनुसार सन्यासी है। संन्यासी निष्काम भाव से सेवा करता है व भिक्षा के आधार पर अपना जीवन-यापन करता है। गाँधी के अनुसार प्रत्येक आश्रम सीढ़ी के समान एक-दूसरे से सम्बद्ध है। प्रत्येक सोपान से गुजरने के बाद ही कोई दूसरे सोपान तक पहुंच सकता है। इन चारों आश्रमों में प्रवेश करने का अधिकार प्रत्येक वर्ण के सदस्य को है।

6.8 गाँधी: समानता और आर्थिक दर्शन

गाँधी के आर्थिक विचार उनके अध्यात्मवाद और अहिंसा की अवधारणा पर आधारित रहे हैं। गाँधी की अहिंसक अर्थव्यवस्था के चिंतन को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध गाँधीवादी अर्थशास्त्री जे. सी. कुमारप्पा ने लिखा है- ' 'गाँधीजी के अर्थशास्त्र के सिद्धान्त जैसी कोई वस्तु नहीं है। गाँधी के लिए अर्थशास्त्र जीवन-प्रणाली का एक अंग है। गाँधीजी की समस्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताओं पर केवल दो शाश्वत सिद्धान्तों का शासन है और वे दो सिद्धान्त हैं-सत्य एवं अहिंसा। यह कहना पर्याप्त होगा कि गाँधी ने जिस प्रकार सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में लागू किया है, उसी प्रकार उनके आर्थिक विचार भी सत्य एवं अहिंसा पर अवलम्बित है। गाँधी के विभिन्न आर्थिक विचारों, यथा- सर्वोदय, स्वदेशी, औद्योगिकरण, शरीर-श्रम, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, इच्छाओं का अल्पीकरण आदि के मूल में अहिंसा के भाव सन्निहित हैं। आर्थिक सन्दर्भों मे गाँधी ने अहिंसा को समानता, मानव कल्याण, त्याग, न्याय आदि रूपों में व्याख्यायित किया है।

6.8.1 समता और सामाजिक न्याय

तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर गाँधी ने यह अनुभव किया कि आर्थिक जीवन में हिंसा का स्वरूप उग्र हो रहा था, प्रतियोगिता की शक्ति बढ़ रही थी, केन्द्रीय उत्पादन पद्धति में बढ़ोतरी हो रही थी, मनुष्य आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण की मांग कर रहा था, सुरक्षा व न्याय की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ रही थी और साथ ही विज्ञान की दासता को मनुष्य स्वीकार करने लगा था। मांग और पूर्ति के संतुलन के निर्जीव सिद्धान्त पर अर्थशास्त्र गतिमान था। गाँधी ने देश की तत्कालीन गरीबी की समस्या, मध्यकालीन भूमि व्यवस्था, रूढ़ि ग्रस्त आर्थिक व्यवस्था, ह्रासोन्मुख उद्योगों की दयनीय स्थिति को देखते हुए समाधान के लिए मानव कल्याणकारी मार्ग का प्रतिपादन किया। गाँधी ने 'सादा जीवन उच्च विचार' के आधार पर उपभोग की व्याख्या की, कौटुम्बिक उत्पादन का अर्थशास्त्र रचा, वैयक्तिक जीवन के अर्थशास्त्र

को सामाजिक जीवन के अर्थशास्त्र में नये ढंग से निहित करके सहयोगी अर्थशास्त्र की कल्पना की, प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने का दर्शन दिया। विज्ञान तथा आर्थिक जीवन को संघर्ष से निकालकर सहकार में बांधकर उसे कल्याणकारी बना दिया। गाँधी ने आर्थिक क्रियाओं को कल्याणकारी क्रियात्मक स्वरूप प्रदान कर एक ऐसे समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की, जहाँ ऊँचे-नीचे का भेद नहीं होगा व सभी के कल्याण का चिंतन होगा। ऐसी व्यवस्था को 'स्वराज' का नाम देकर गाँधी ने स्पष्ट किया कि ' 'स्वराज शब्द का अर्थ स्वयं और उसकी प्राप्ति के साधन यानि 'सत्य' और 'अहिंसा जिनका पालन करने के लिए हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं-ऐसी किसी संभावना को असंभव सिद्ध करते हैं कि हमारा स्वराज किसी के लिए तो अधिक होगा और किसी के लिए कम, किसी के लिए लाभकारी होगा और किसी के लिए हानिकारी या कम लाभकारी।"

अर्थशास्त्र को लोक-कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करने के लिए गाँधी ने समाज में समता और सामाजिक न्याय की स्थापना के पहलुओं पर चिंतन प्रस्तुत किया। समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष की अर्थनीति को अमान्य कर उन्होंने मनुष्य-मनुष्य में भेद एवं संघर्ष की नींव को ही समाप्त कर दिया। वर्ग संघर्ष की अर्थनीति पर विचार प्रस्तुत करते हुए गाँधी ने कहा- ' 'मैंने यह कभी नहीं कहा कि शोषकों और शोषितों में सहयोग होना चाहिए। जब तक शोषण और शोषण करने की इच्छा कायम है, तब तक सहयोग नहीं हो सकता। अलबत्ता मैं यह नहीं मानता कि सब पूंजीपति और जमींदार अपनी स्थिति की किसी आन्तरिक आवश्यकता के फलस्वरूप शोषक ही हैं और न मैं यह जानता हूँ कि उनके और जनता के हितों में कोई बुनियादी या अकाट्य विरोध है। हर प्रकार का शोषण शोषित के सहयोग पर आधारित है, फिर वह सहयोग स्वेच्छा से दिया जाता हो या लाचारी से। हम इस सच्चाई को स्वीकार करने से कितना ही इनकार क्यों न करें, फिर भी सच्चाई तो यही है कि यदि लोग शोषक की आज्ञा न मानें तो शोषण हो ही नहीं सकता। लेकिन उसमें स्वार्थ आड़े आता है और हम उन्हीं जंजीरों को अपनी छाती से लगाये रहते हैं जो हमें बांधती हैं। यह चीज बंद होनी चाहिए। जरूरत इस बात की नहीं है कि पूंजीपति और जमींदार खत्म हो जाएँ, उनमें और आम लोगों में जो संबंध हैं, उसे बदलकर ज्यादा स्वस्थ और शुद्ध संबंध बनाने की जरूरत है।

6.8.2 उपभोग एवं उत्पादन

उपभोग एवं उत्पादन के क्षेत्र में समानतावादी विचार प्रकट करते हुए गाँधी ने कहा जब तक सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी न हो जाएँ, तब तक उच्च एवं मध्यम वर्ग के उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन बंद कर देना चाहिए। उनका मानना था कि जीवनदायिनी वस्तुओं की उपलब्धि सभी को सम्मानपूर्वक प्राप्त है। यह प्रकृति का नियम तो है ही, साथ ही मानव समाज के कल्याण के लिए भी यह अत्यावश्यक है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति की आकांक्षा अधिकतम उपभोग की रहती है और अनवरत इसी 'अधिकतम उपभोग' की चाह लेकर व्यक्ति समाज के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ता है। लेकिन दूसरी ओर विकास मूलत: अधिकतम उत्पादन पर निर्भर करता है। मनुष्य की उपभोग की प्रवृत्ति के कारण अधिक उत्पादन की आधारशिला समाज में गौण हो जाती है और अधिकतम उपभोग की प्रवृति बलवती हो जाती है। परिणामत:

समाज में अन्याय, शोषण एवं अनैतिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। अत: गाँधी ने यह विचार व्यक्त किया था कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं पर नियंत्रण करके एवं सादगीपूर्ण जीवन जीकर अपनी उपभोग की प्रवृति पर संयम करना चाहिए तथा आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढाने के प्रयास किए जाने चाहिए। उत्पादन के क्षेत्र में गाँधी ने ' 'जनता के लिए जनता द्वारा उत्पादन' पद्धति द्वारा विकेन्द्रित उत्पादन का विचार प्रस्तुत कर उत्पादन को समानतावादी स्वरूप प्रदान किया। गाँधी का मानना था कि वस्तुओं को कम से कम लागत में उत्पादित कर उनकी कीमत को कम करने और अधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के निरन्तर प्रयास किए जाने चाहिए। वस्तुओं के उत्पादन में तीन बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, प्रथम-उत्पादन समाज के लोगों को सुलभ हो व साधारण मनुष्य की पहुँच से बाहर न हो, दूसरी-उत्पादन समाज और प्रकृति के लिए समस्याएँ पैदा ना करे एवं तीसरी-नए उत्पादनों की खोज आय की वृद्धि का कारण न बने।

गाँधी का मानना था-राजनैतिक समता उतनी प्रभावकारी नहीं है, जितनी आर्थिक और सम्मानपूर्वक, जीवन हेतु सामाजिक समता का होना बहुत ही आवश्यक है। समता का पूर्ण लाभ तभी प्राप्त होगा। जब सामाजिक समता अन्य समताओं के साथ प्राप्त होगी। इससे वितरण के क्षेत्र में समानता का अर्थशास्त्र पूर्ण होता है।

6.8.3 ट्रस्टीशिप: आर्थिक समानता का दर्शन

गाँधी का अहिंसात्मक आर्थिक चिंतन मूलत: पूर्ण समानता के आदर्श पर आधारित है। उनके अनुसार जब तक समाज के वर्गो में ऊँच-नीच का भेद बना रहेगा तब तक सर्वोदय की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। आर्थिक समानता की व्याख्या को स्पष्ट करते हुए गाँधी ने कहा था- ' 'आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूँजी और मजदूरी के बीच के झगडे को हमेशा के लिए मिटा देना। जिसका अर्थ यह होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बडा भाग इकट्ठा हो गया है। उनकी सम्पत्ति को कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग अधपेट खाते ' और नंगे रहते हैं, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइन्तहा अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती। "स्पष्ट है कि गाँधी की आर्थिक समानता की भावना इसमें निहित है कि समाज के पूंजीपति और श्रमिक दोनों ही वर्गों की समाप्ति।

6.8.4 विकेन्द्रीकरण एवं स्वावलम्बन की नीति

गाँधी ने औद्योगिकीकरण पर आधारित केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था को प्रकृति से हिंसक, अनैतिक एवं अमानवीय मानते हुए इसके विकल्प के रूप में अहिंसक अर्थव्यवस्था के चिन्तन को प्रस्तुत किया था। इस अर्थव्यवस्था से उनका आशय एक ऐसी व्यवस्था से था जिसका संचालन मानवीय सहयोग एवं सद्भाव से होता है, न कि संघर्ष एवं प्रतियोगिता से। गाँधी ने इस अहिंसक अर्थव्यवस्था को विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का नाम दिया, क्योंकि यह आर्थिक दृष्टि से ऐसे विकेन्द्रित ढांचे वाली है, जहाँ उत्पादन एवं वितरण की दृष्टि से ग्राम-समाज आत्मनिर्भर

एवं स्वावलम्बी होंगे। अत: इस अर्थव्यवस्था को स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था का स्वरूप है, जहाँ उत्पादन एवं वितरण का आधार जनसहयोग है। आर्थिक क्षेत्र में आत्म-निर्भर ग्राम-समाज एक आदर्श के रूप में स्वीकारा जाता है। अर्थव्यवस्था का स्वरूप विकेन्द्रित होता है। मानव श्रम की प्रधानता के कारण सभी को रोजगार प्राप्त हो, जन-समुदाय आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति मात्र से संतुष्ट हो एवं इस अर्थव्यवस्था का निर्माण देश की जलवायु, भूमि एवं संस्कृति के अनुरूप किया जाता है।

6.8.5 आर्थिक स्वतन्त्रता और विकेन्द्रीकरण

गाँधी का मानना था कि जब व्यक्ति मूलत: स्वतन्त्र और सुव्यवस्थित होगा तभी समाज के प्रत्येक अंग का स्वाभाविक विकास हो सकता है। इसी कारण वे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनके अनुसार शक्ति और अधिकार का विकेन्द्रीकरण, स्वार्थ और हित का विकेन्द्रीकरण तथा पूंजी और उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण हो ताकि समाज का प्रत्येक वर्ग ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके, जिसमें जीवन के संचालन के लिए किसी पर निर्भर न रहना पड़े, साथ ही किसी वर्ग विशेष का हित दूसरे वर्ग के विकास व उसके हित में भी बाधक न बने। गाँधी के अनुसार आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना सामाजिक स्वतन्त्रता का उदय होना सम्भव नहीं है। आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति तभी सम्भव है जब मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य किसी पर निर्भर न हो तथा उत्पादन एवं व्यवस्था का संचालन उसी के हाथ में हो।

6.8.6 विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थरचना

गाँधी ने भारत को गाँवों का देश माना है। अत: जब तक गाँव की व्यवस्था स्वतन्त्र नहीं रहेगी तब तक राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है। जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था शहरों पर निर्भर रहेगी तब तक देश का वास्तविक विकास सम्भव नहीं है। वर्तमान की समस्त आर्थिक संरचना शहरों और केन्द्रीकरण के जाल में जकड़ी हुई है। गाँधी ने कहा था- ' 'आप कारखानों की सभ्यता पर अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते, लेकिन वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी गाँवों के आधार पर निर्माण की जा सकती है। मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थ-रचना शोषण का सर्वथा त्याग करती है और शोषण हिंसा का सार है। " गाँधी का मानना था-प्राचीन ग्रामीण समुदायों की पुनर्स्थापना की जाए तथा उसमें समृद्धिशाली कृषि, विकेन्द्रित उद्योग व छोटे पैमाने के सहकारी संगठन स्थापित हों जिसमें सभी स्तर के व्यक्तियों की सहभागिता हो।

6.8.7 सामाजिक समानता का साधन

गाँधी ने रोटी के लिए शारीरिक श्रम को व्यक्ति तथा समाज अर्थात् सम्पूर्ण मानवता के लिए महत्वपूर्ण माना है। उनका मत था कि शरीर श्रम के धर्म की अनुपालना से समाज में ऐसी अहिंसक क्रान्ति होगी जहाँ परस्पर, सेवा के द्वारा मानव धर्म की संस्थापना होगी। गाँधी पूंजी पर आधारित निर्भरता को समाप्त कर पूंजी निवेश के बदले श्रम निवेश को श्रेयस्कर मानते थे। उनका मानना था कि इससे समाज में समानता आएगी और वर्ग-संघर्ष, वर्ग-भेद एवं

भूखमरी को दूर करने में भी सहायता मिलेगी। उन्होंने देश को सम्पन्न एवं आत्म-निर्भर बनाने के लिए अपनी आर्थिक नीति को यह आधार प्रदान किया था कि प्रत्येक उपभोक्ता उत्पादक हो। रोटी के लिए शारीरिक श्रम के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था- श्रम न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है बल्कि मन को भी प्रेरित करता है। इससे कृषि उपज बढेगी, जिससे न अन्न की कमी होगी व न ही जनसंख्या वृद्धि पर आपत्ति होगी। व्यक्तियों की जीवन पद्धति सादगी प्रधान होगी व सभी सादे भोजन व पोशाक से संतुष्ट होंगे। इससे स्वत: आवश्यकताएँ सीमित हो जायेगी व विलासिता की वस्तुओं की आकांक्षा भी कम हो जाएगी। बुद्धि व श्रम के सहयोग से कृषि-कार्य व मानव अथवा पशु ऊर्जा से चलने वाले लघु यन्त्रों में निरन्तर सुधार होगा। बेरोजगारी, आलस्य, दरिद्रता एवं शोषण का अन्त होगा और भीषण आर्थिक असमानता का अन्त होगा व उससे उत्पन्न आर्थिक अन्याय भी नहीं रहेगा। समाज की आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण से राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण को मजबूती मिलेगी। समाज में व्याप्त सभी व्यवसायों को महत्त्व दिए जाने से ऊँच-नीच की भावना का अन्त होगा व सामाजिक सहयोग स्थापित होगा।

6.9 सारांश

महात्मा गाँधी के समानता संबंधी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने समकालीन विश्व में स्थापित राजनीतिक प्रयोगों या राजनीतिक चिन्तन धाराओं से हट कर समानता संबंधी मौलिक स्वरूप में अपने विचार सामने रखें हैं। उन्होंने उन्हें प्रयोगात्मक कसौटियों पर भी कार्यान्वित करने और सामान्यत: अव्यावहारिक प्रतीत होने वाली अपनी वैचारिक अवधारणाओं को बडी सहजता के साथ प्रयोगात्मक व्यवहार में उतारने का कार्य किया है। उन्होंने सामाजिक समानता के लिए नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिक चेतना, बन्धुत्व भाव, सहिष्णुता, मानवीय दृष्टि, अहिंसा एवं सत्य, सत्ता के विकेन्द्रीकरण, सत्याग्रह पर जोर दिया, जिसकी प्रासंगिकता सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक है।

गाँधी ने समाज में व्याप्त असमानता एवं विषमता के प्रचलित चित्र को बदलने और उसे मानवीय मूल्यों में जोड़ने का चिन्तन किया और उस चिन्तन को क्रियात्मक रूप देने की कोशिश की है। वास्तव में गाँधी मानव इतिहास की एक अप्रतिम एवं महान विभूति थे, जिन्होंने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और शान्ति के विचारों को महत्त्व दिया। अस्पृश्यता निवारण तथा जातीय एवं प्रजातीय विभेदों के निषेध एवं अन्त की कोशिशों के साथ ही सामाजिक समरसता, सहयोग एवं सहकार के प्रयोगों पर बल दिया। वस्तुत: गाँधी ने समानता की समग्रता में समाज व्यवस्था, राजनीतिक संरचना एवं आर्थिक प्रणाली को नैतिक मूल्यों के धरातल पर जिस प्रकार विकसित करने का स्वप्न देखा, वह समूची मानवता को सुख, शान्ति एवं समृद्धि की ओर ले जाने में सहायक है।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी का 'समानता' से क्या आशय है'
2. गाँधीजी के समानता सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिये।

3. गाँधीजी की समानता सर्वोदय में निहित है, स्पष्ट करें।

6.11 संदर्भ ग्रंथ

1. वर्मा, वी.पी, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा, पाँचवा संस्करण, 2003.
2. 2.त्रिपाठी, कमलापति, बापू और मानवता, सरस्वती मन्दिर, बनारस, 1948.
3. 3.धवन, जी.एन., द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा, अहमदाबाद, नवजीवन, 1951.
4. 4.गॅंगोली, बी.एन, गाँधी सोशल फिलॉसफी परस्पैटिक्टव एण्ड रैलेवेन्स नई दिल्ली, विकास, 1969
5. 5.कृपलानी, जे बी., गाँधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 1966
6. 6.कालेलकर, काका गांधीजी का जीवन-दर्शन, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2000
7. 7.सिंह राममूर्ति महात्मा गाँधी और विश्वशान्ति साहित्य विकुंज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946
8. सिंह, रामजी, गाँधी-दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी मथ अकादमी, पटना, 1973
9. गाँधी, एम.के., ट्रथ इज गॉड, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1959
10. राय, रामाश्रय, सेल्फ एण्ड सोसाइटी. ए स्टडी इन गाँधीयन थॉट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985
11. 11.चतुर्वेदी, डी.एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 1991

इकाई - 7

गाँधी एवं सामाजिक न्याय

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 साधन तथा साध्य

7.3 न्याय और संरचनात्मक सुधार

7.3.1 न्याय और राजनीतिक सुधार

7.3.2 न्याय और आर्थिक सुधार

7.3.2.1 नैतिकता पर आधारित अर्थ-व्यवस्था

7.3.2.2 औद्योगीकरण का आधार शोषण

7.3.2.3 कुटीर उद्योगों का समर्थन

7.3.2.4 आर्थिक समानता

7.3.2.5 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

7.3.3 न्याय और समाज

7.3.3.1 सर्वोदय

7.3.3.2 अस्पृश्यता का समाधान

7.3.3.3 गाँधी एवं शिक्षा

7.3.3.3.1 विद्यमान शिक्षा प्रणाली के दोष

7.3.3.3.2 गाँधी की शिक्षा व्यवस्था

7.3.3.4 गाँधी एवं स्त्रियाँ

7.4 सारांश

7.5 अभ्यास प्रश्न

7.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत गाँधी के सामाजिक न्याय संबंधी विचारों को समझ सकेंगे।
- गाँधी की सामाजिक न्याय संबंधी विचार के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक को समझ सकेंगे।
- समझ सकेंगे कि गाँधी की सामाजिक न्याय कुछ संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं और नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित है।
- समझ सकेंगे कि गाँधी की सामाजिक न्याय सर्वोदय समाज में निहित है।

7.1 प्रस्तावना

एक परम्परागत गुजराती वणिक् परिवार के सदस्य के रूप में जीवन की शुरूआत करने वाले मोहन दास कर्मचन्द गाँधी ने तत्कालीन मध्यमवर्ग की मनोवृत्ति और आकांक्षाओं के अनुरूप इंग्लैण्ड से ' 'बैरिस्टर' ' की उपाधि प्राप्त की और इसे आजीविका के साधन के रूप में प्रयुक्त करने के सिलसिले में अफ्रीका गये तो यहां से शुरूआत हुयी जीवन लक्ष्य परिवर्तन की। अफ्रीका में उन्होंने उस अन्याय और अत्याचार को देखा जो वहाँ गोरी सरकार रंग और जाति भेद के आधार पर प्रवासी भारतीयों पर कर रही थी। डर्बन से प्रिटोरिया जाते समय रात मेरित्सबर्ग स्टेशन पर प्रथम दर्जे के रेल के डिब्बे से उतार दिये जाने की सर्वविदित घटना इस दिशा में निर्णायक सिद्ध हुयी। अपने अपमान के बारे में व्यग्र होकर वह जितना ही सोचते गये, एक इस्पाती दृढ़ता और निश्चय उनमें उतना ही बलवान होता गया। इस घटना को वह अपने जीवन का सबसे सृजनशील और नियामक अनुभव मानते थे। उसी क्षण से उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के शासकीय और वर्ण विद्वेषक सामाजिक अन्याय के खिलाफ कमर कस ली।

इस प्रकार गाँधी स्वयं अपमान, उपेक्षा का शिकार होने तथा अपने हिन्दुस्तानी भाईयों को सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक अधिकार दिलाने के संघर्ष के लिए समर्पित हो गये। स्वयं उन्हीं के शब्दों में - 'इस प्रकार मैं हिन्दुस्तानी समाज की सेवा में ओत-प्रोत हो गया, उसका कारण आत्म दर्शन की अभिलाषा थी। ईश्वर की पहचान सेवा से ही होगी, यह मान कर मैंने सेवा धर्म स्वीकार किया था।

गाँधी ने अफ्रीका प्रवास के दौरान ही सभी धर्म पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था। रस्किन की अनटु दिस लास्ट से गाँधी ने ' 'सर्वोदय' ' का विचार ग्रहण किया, जिसे उनके सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य आधार माना जा सकता है। गाँधी ने जीवन के सभी पक्षों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक) की गतिविधियों का मार्गदर्शन का उसके अंतिम ध्येय, ईश्वर प्राप्ति को माना है अत: सभी मानवों की सेवा उसे पाने के प्रयास का आवश्यक अंग बन जाती है।

गाँधी मूलत: मानवतावादी होने के कारण, भारतीय समाज में कुरीतियों व अंधविश्वासों पर आधारित व्यक्ति-व्यक्ति के प्रति जन्म, लिंग या व्यवसाय के आधार पर किये जाने वाले असमानता पूर्ण दुर्व्यवहार का विरोध किया तथा भारतीय समाज में व्याप्त इन बुराइयों को दूर करने के लिए कार्य तथा विचार प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि सम्पूर्ण मानव एक ही परिवार के सदस्य हैं। धर्म जाति, समुदाय तथा राष्ट्रों के द्वारा मानव-मानव के मध्य किये गये भेद में वे विश्वास नहीं करते थे तथा सभी मानवों में पूर्ण समानता के पक्षधर थे। एक बार एक अंग्रेज ने गाँधी से कहा कि वे भारतीय होने के नाते भारतीयों को स्वाभाविक रूप से अन्य देशों के लोगों की अपेक्षा ज्यादा प्रेम करते होंगे। वह गाँधी का यह जवाब सुनकर आश्चर्य चकित रह गये कि- मैं अपने देशवासियों तथा अन्य देशों के लोगों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं करता। मैं बिना जाति, धर्म तथा राष्ट्रीयता के सम्पूर्ण मानव जाति से प्रेम करता हूँ। यदि मैं अपने देशवासियों की सेवा करता हूँ तो ऐसा इसलिए कि यह मेरे लिए आसान है।

गाँधी ने सदियों से दमित तथा पीडित समाज के दो मुख्य वर्गो को न्याय दिलाने का प्रयास किया, ये वर्ग थे- अछूत वर्ग तथा महिला का।

7.2 साधन तथा साध्य

समानता तथा न्याय पर आधारित समाज का पुनर्गठन करने के लिए गाँधी : ने सामाजिक राजनीतिक आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में सुधार के लिए जो विचार प्रस्तुत किये, उनका अवलोकन करने से पूर्व यह देखना आवश्यक होगा कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने किस प्रकार के साधनों को औचित्यपूर्ण माना है।

साधन तथा साध्य को अलग-अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि ये दोनों मिलकर ही नैतिक जीवन का निर्माण करते है। यह केवल नैतिक सिद्धान्त न होकर मनोवैज्ञानिक सत्य है। गाँधी के अनुसार, साध्य तथा साधन को पृथक् करने वाली कोई दीवार नहीं हैं। साधन बीज तथा साध्य पेड़ के समान हैं ओर पेड़ तथा बीज के समान ही इन दोनों का अटूट सम्बन्ध हैं। यही कारण है कि गाँधी के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारों में साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता को अपरिहार्य माना गया है।

गाँधी ने साध्य तथा साधन की एकाग्रता के सिद्धान्त का निरूपण करके क्रांतिकारी कार्य किया है तथा सत्य और अहिंसा की, मानव जीवन तथा सामाजिक सम्बन्धों की आधार शिला के रूप में पूर्व कल्पना की है। उनका कहना था कि यदि मेरे देश के विकास के लिए असत्य तथा हिंसा आवश्यक है तो मेरे देश की अवनति होने दो। मैं पूरी दुनियाँ की कीमत पर भी सत्य तथा अहिंसा की कुर्बानी नहीं दे सकता। सत्य की कीमत पर मैं देश की सेवा नहीं करना चाहता क्योंकि मैं जानता हूँ कि जो व्यक्ति सत्य को त्याग सकता है वह अपने देश तथा सबसे घनिष्ठ व प्रिय को भी त्याग सकता है।

इस प्रकार गाँधी इस मत पर दृढ़ और अटल थे कि चाहे कितना ही महान् उद्देश्य या बडा लाभ अथवा हानि हो अनैतिक साधनों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। नैतिक साधनों पर इतना मल दिये जाने का अर्थ यह नहीं था कि बुराई, अन्याय तथा अत्याचार को सहन किया जाय। गाँधी अन्याय का विरोध करते हुये जिये तथा मरे। गाँधी इस तथ्य से भी अवगत थे कि यदि अन्याय का विरोध अहिंसा से न किया गया तो किसी अन्य तरीके से किया जायेगा अत: उनका कहना था कि ' 'मेरा यह विश्वास है कि जहाँ केवल हिंसा तथा कायरता में से किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा की सलाह दूँगा लेकिन इसके साथ उनका यह भी दृढ विश्वास था कि अहिंसा हिंसा से अपार रूप में महान् है।

साध्य व साधन की पवित्रता के प्रबल समर्थक होने के कारण ही गाँधी ने जीवन के हर क्षेत्र में इसे अंगीकार करने तथा उसे आध्यात्मिकता से अभिन्न बताते हुये व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक गतिविधियों का ही नहीं, अपितु राजनीति का भी आध्यात्मीकरण करने की आवश्यकता महसूस की। गाँधी के सामाजिक विचारों में, 'समस्याओं के जो हल प्रस्तुत किये उसमें साध्य के अनुसार साधनों के प्रयोग व पवित्रता का कोई विकल्प नहीं था।

7.3 न्याय और संरचनात्मक सुधार

समाज के दमित तथा दलित व पिछड़े लोगों को न्याय दिलाने के लिए गाँधी ने विभिन्न सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की साथ ही विभिन्न सामाजिक पक्षों में सुधार के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक, राजनीतिक व्यवस्था के पुनर्गठन की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की है -

7.3.1 न्याय और राजनीतिक सुधार

गाँधी महान् कर्मयोगी थे, जिनका कार्यक्षेत्र समग्र मानवता की सेवा करना था, अत: वह अपने लक्ष्य - ईश्वर प्राप्ति को, अहिंसा रूपी साधन रूपी साधन द्वारा प्राप्त करना चाहते थे और यह कार्य सच्चे समाजसेवक के रूप में ही पूरा हो सकता था। अत: गाँधी के लिए धर्म, मानवीय कार्यकलापों से पृथक् मात्र कर्मकाण्ड नहीं था, अपितु वह सम्पूर्ण जीवन का नैतिक आधार था। वास्तविक धर्म आसन्न न्याय का सिद्धान्त है और सामाजिक सम्बन्धों में न्याय के नैतिक आधार था। वास्तविक धर्म आसन्न न्याय का सिद्धान्त है और सामाजिक सम्बन्धों में न्याय के नैतिक सिद्धान्तों का कियान्वयन ही 'वारत्तविक राजनीति' है। दोनों का (धर्म तथा राजनीति) आधार नैतिकता या सामाजिक आचार है। जीवन विभिन्न अभेद्य खण्ड में विभाजित न होकर समग्र है यही कारण है कि गाँधी ने राजनीति का नीतिकरण किया। प्रश्न यह उठता है कि गाँधी ने एक मानवतावादी, आध्यात्मिक पुरूष होते हुये भी राजनीति को अपने 'कर्म' का आधार क्यों बनाया? स्वयं गाँधी ने इसका कई बार जवाब दिया है। राजनीति उनके जीवन का ध्येय नहीं था, अपितु जनता को, उसके जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति के लिए समर्थ बनाने के विभिन्न साधनों में से एक था। उनका यह मानना था कि राजनीति में भाग लेना इसलिए अनिवार्य है कि राजनीति ने हमारे ' 'सम्पूर्ण जीवन को साँप के समान जकड़ रखा है और कोई कितना ही प्रयास करें वह इस सर्प-समान राजनीति की जकड़न से मुक्त नहीं हो सकता' ' वे इस साँप से कुश्ती (संघर्ष) करना चाहते थे।

समाज सुधार के कार्य को वे राजनीतिक कार्य की तुलना में किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण या गौण नहीं मानते थे, अपितु उनका राजनीति में भाग लेने का करण यह था कि एक हद तक राजनीतिक कार्यो की सहायता के बिना सामाजिक कार्य असंभव हो जाता है। अत: उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों में उसी सीमा तक भाग लिया जितना कि सामाजिक कार्य के लिए सहायक हो।

इसीलिए उन्होंने स्वीकार किया कि जिसे शुद्ध राजनीतिक कार्य कहा जाता है उसकी अपेक्षा इस प्रकृति (राजनीतिक) का समाज सुधार या आत्म शुद्धिकरण उन्हें सैकडों गुणा प्रिय है।

यही कारण है कि गाँधी ने समाज सुधार पर निरन्तर बल दिया हैं। उन्होंने कांग्रेस के उग्रवादियों के इस मत को कभी स्वीकार नहीं किया कि पहले स्वाधीनता प्राप्त कर ली जाय, समाज सुधार की समस्या स्वाधीन भारत स्वत: हल कर लेगा। गाँधी का मानना था कि

सामाजिक कुरीतियाँ स्वराज की ओर, हमारी गति में बाधक हैं। जितना हमारा समाज-सुधार होगा उतनी ही तीव्र गति से हम अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे। समाज सुधार को स्वराज की प्राप्ति तक स्थगित करने का अर्थ है कि हम स्वराज का अर्थ ही नहीं समझतें। सामाजिक पुनर्गठन तथा राजनीतिक स्वराज के लिए संघर्ष का काम साथ-साथ चलना चाहिए। इन दोनों में प्राथमिकता तथा पार्थक्य का प्रश्न ही नहीं है। नयी समाज व्यवस्था को बलपूर्वक थोपा नहीं जा सकता। ऐसी चिकित्सा रोग से भी बदतर होगी। वे अपने आपको व्याकुल समाज सुधारक मानते थे। वे मौलिक तथा सतत सामाजिक पुनर्गठन की प्रकिया चाहते थे लेकिन सब कुछ स्वाभाविक रूप से हो, ऊपर से थोपा न गया हो।

सामाजिक सुधार तथा राजनीतिक स्वाधीनता को गाँधी द्वारा समान महत्व दिये जाने का कारण यह था कि वे समाज के सभी व्यक्तियों को केवल राजनीतिक रूप से ही स्वतंत्र कराने से संतुष्ट नहीं थे अपितु अपार कुरीतियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं तथा धर्मशास्त्रों की अनुपालना के नाम पर भारतीय समाज में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार, अमानवीय भेदभाव तथा शोषण को समाप्त कर समाज को समानता व न्याय के आधार पर पुनर्गठित करना चाहते थे। उनके समाज सुधार की योजना में रचनात्मक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण स्थान था। इसके द्वारा वे गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी को समाप्त कर स्वतंत्रता' के साथ ही आर्थिक रूप से देश को सक्षम बनाना चाहते थे। उनके लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था कि अत्याचार विदेशी लोगों द्वारा किया जा रहा है या स्वयं इसी देश के लोगों द्वारा, उनका लक्ष्य तो अत्याचार को समाप्त करना था इसीलिए उन्होंने 'अस्पृश्यता' के रूप में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा निम्न जातियों पर किये जाने वाले दमन तथा अत्याचार के विरूद्ध आंदोलन चलाया। लेकिन गाँधी ने न तो बल के आधार पर स्वतंत्रता प्राप्ति का सम किया और ना ही नयी सामाजिक व्यवस्था को बलात् जनता पर थोपने का। दोनों ही क्षेत्रों में उन्होंने जनमत कर जनता के हृदय परिवर्तन द्वारा जन-आन्दोलन के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करना चाहा। लेकिन इस संदर्भ में एक बडा अन्तर यह है कि जहाँ गाँधी ने विदेशी शासन के हृदय परिवर्तन के लिए बार-बार 'सत्याग्रह' तथा 'उपवास' की शक्ति का प्रयोग किया, वहीं सवर्ण हिन्दुओं को अस्पृश्यता निवारण हेतु बाध्य करने के लिए इन हथियारों का प्रयोग नहीं किया। यद्यपि 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट में अस्पृश्यों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिये जाने के विरोध में गाँधी द्वारा आमरण-अनशन किया गया था लेकिन इसका लक्ष्य 'अस्पृश्यता' को समाप्त करना नहीं।

वे केवल अंग्रेजी शासन से मुक्ति को ही स्वराज नहीं समझते थे अपितु उनका मानना था कि औसतन ग्रामीण में यह चेतना आये कि वह स्वयं अपना भाग्यदाता तथा अपने द्वारा चयनित प्रतिनिधि के रूप में स्वयं विधायक है, वहीं वास्तविक स्वराज है। सत्ता के केन्द्रीकरण को लोक हित के विरूद्ध मानने के कारण उन्होंने सत्ता के अधिकतम विकेन्द्रीकरण को ग्रामीण इकाई के आधार पर लागू करने का विचार रखा। वे चाहते थे कि 'स्वराज' गरीब व्यक्ति का स्वराज हो और राजकुमारों तथा पूंजीपतियों के साथ ही आप आदमी भी जीवन की आवश्यकताओं का उपभोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि आम आदमी भी जीवन की आवश्यकताओं का उपभोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि आम जनता के पास भी भव्य

महल हो, यह प्रसन्नता के लिए आवश्यक नहीं है। अपितु जीवन की वे सब सामान्य सुविधायें प्राप्त हों, जिनका धनवान व्यक्ति उपभोग करते हैं निस्संदेह इसके बिना स्वराज पूर्ण नहीं हो सकता। गाँधी धर्म या नस्ल के भेदभाव के बिना स्वराज के समस्त व्यक्तियों की भलाई का सपना देखते थे। स्वराज किन्हीं विशेष धर्मानुयायियों या पूँजीपतियों के एकाधिकार की वस्तु न होकर सभी के लिए, विशेष तौर से किसान, अंधों, भूखों तथा विकलांग, दलित' परिश्रमी अर्थात् असहायों का होगा। गाँधी ने यह सपना देखा था कि 'स्वराज' में हमारी सभी दुर्बलतायें समाप्त हो जयेंगी तथा हमारा समाज मानवतावादी मूल्यों पर आधारित होगा। यद्यपि स्वराज को वे अल्पकाल की व्यवस्था मानते थे, उनका लक्ष्य था- राज्य विहीन समाज जिसमें नैतिक सत्ता की सार्वभौमिकता होगी।

गाँधी ने एक ऐसे राज्य का सपना देखा जिसे उन्होंने रामराज्य का नाम दिया लेकिन इसका अर्थ किसी धर्म पर आधारित राज्य से न होकर ईश्वर के राज्य से था। राजनीतिक दृष्टि से यह पूर्ण प्रजातंत्र है, जिसमें गरीबी और अमीरी, रंग तथा मतमतांतर के आधार पर स्थापित असमानताओं का सर्वथा अन्त हो जाता है। रामराज्य में भूमि तथा राज्य जनता का होगा। न्याय शीघ्र पूर्ण और सस्ता होगा, प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीके से पूजा प्रार्थना, स्वतंत्र विचाराभिव्यक्ति और लेखन की स्वतंत्रता होगी और नैतिक कानूनों के' स्वैच्छिक पालन द्वारा ही यह सब होगा।

गाँधी केवल अपने देश के लोगों के लिए ही स्वतंत्रता, समानता और न्याय नही चाहते थे बल्कि उन सेवा के कार्य क्षेत्र में सम्पूर्ण मानवता समाहित थी। उनका कहना था कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिए जीन-मरने को तैयार है, क्योंकि स्वतंत्र भारत ही सम्पूर्ण मानवता की सेवा के लिए खडा हो सकता है, लेकिन यह स्वतंत्रता वे किसी अन्य देश के शोषण या पतन के मूल्य पर प्राप्त नहीं करना चाहते थे। वे देश को स्वतंत्र करवाना चाहते थे ताकि अन्य देश उससे कुछ सीख सकें, और देश के संसाधनों का उपयोग मानव जाति के लाभ के लिए किया जा सके। जैसे देश भक्ति की अवधारणा हमें यह शिक्षा देती है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को गांव के लिए, गांव को जिले को प्रान्त के लिए, प्रान्त को देश के लिए मर जाना चाहिए। इसीलिए एक देश को स्वाधीन हो जाना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर विश्व के कल्याण के लिए वह बलिदान हो सकें।

गाँधी ने अपने जीवन का लक्ष्य सम्पूर्ण मानव समाज के हर व्यक्ति में आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की भावना की स्थापना बताते हुये कहा था कि यदि " मैं मानव-समाज के शारीरिक रूप से कमजोर से कमजोर स्त्री-पुरूष में यह विश्वास जगा सकूं कि अपने आत्म-सम्मान और स्वतंत्रता का वह स्वयं संरक्षक है, तो मेरा लक्ष्य पूरा हो जायेगा। यह विश्वास इतना दृढ होना चाहिए कि संपूर्ण विश्व भी इसे नहीं हिला सकें।

इस प्रकार गाँधी के राजनीतिक विचार भी नैतिकता तथा मानवतावादी आधार पर अवलम्बित थे। राजनीति को उन्होंने सामाजिक न्याय की प्राप्ति तथा मानवता की सेवा के एक साधन के रूप में अपनाया लेकिन सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह जैसे व्यक्तिगत मूल्यों को राष्ट्रीय स्तर पर एक आंदोलन के रूप में परिवर्तित कर उन्होंने राजनीति के मौलिक आधार, प्रकृति

तथा उद्देश्य को अपनी अवधारणाओं के सांचे में ढाल लिया। हिंसा को राज्य का अविभाज्य अंग मानकर अस्वीकार कर दिया और एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसके कानून पालन का आधार राज्य, शक्ति, दण्ड या भय न होकर नैतिकता थी। उन्होंने राजनीति तथा स्वराज को निम्नतम व्यक्ति के हित का साधन बनाने का स्वप्न देखा और विश्व बन्धुत्व तथा संपूर्ण मानव समाज की सेवा के लिए राजनीति को साधन के रूप में अपनाने की बात की।

7.3.2 न्याय और आर्थिक सुधार

जीवन के अस्तित्व के लिए अर्थ आवश्यक है। रोटी, कपड़ा और निवास, तीनों मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुद्रा अनिवार्य है। समाज का एक वर्ग करोड़पति हो और दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग जा भर पेट भोजन भी न प्राप्त कर सके, ऐसे समाज को न्याय पर आधारित या नैतिकता पर आधारित समाज नहीं कहा जा सकता। गाँधी ने इस तथ्य पर बल देते हुये विद्यमान अर्थ-व्यवस्था तथा अर्थ-सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन की व्यवस्था दी जिसके परिणामस्वरूप समाज में सभी व्यक्ति जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक व्यक्ति को इतना काम मिले कि वह अपनी इन मूल आवश्यकताओं को पूरा कर सके और यह सभी संभव हो सकता है जबकि इन आवश्यकताओं के उत्पादन के साधनों पर आम जनता का नियंत्रण रहे, जनता को शोषण का माध्यम न बनाया जाय। इस क्षेत्र में किसी देश या व्यक्तियों के समूह का एकाधिकार होना अनुचित तथा अन्यायिक होगा। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए गाँधी के आर्थिक विचारों के मुख्य पहलू इस प्रकार है -

7.3.2.1 नैतिकता पर आधारित अर्थ-व्यवस्था

राजनीति के समान ही अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में उनका विचार था कि सच्चा अर्थशास्त्र नैतिकता के महान् नियमों के प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय चाहता है और समाज के प्रत्येक व्यक्ति का हित चाहता है, यहां तक कि दुर्बलतम व्यक्ति का भी सामाजिक हित चाहता है और अच्छे जीवन के लिए आवश्यकता भी है। क्योंकि व्यक्ति में नैतिक बोध होगा तभी वह आर्थिक रूप से परोपकार कर सकता है। नैतिकता के आधार पर अर्थ संचालन करने पर ही व्यक्ति या राष्ट्र शोषण की दुर्भावना का त्याग कर सकता है तथा दूसरे व्यक्ति को भूखा-नंगा रखकर अपने ही स्वार्थों को सिद्ध करने में नहीं लगा रह सकता। इसी आधार पर गाँधी ने आर्थिक क्षेत्र में अपरिग्रह के विचार का समर्थन किया और कहा कि यदि व्यक्ति ऐसी चीज लेकर रखता है जिसकी उसे तात्कालिक उपयोग के लिए आवश्यकता नही है तो वह " दूसरे की चोरी करता है। प्रकृति का यह मौलिक नियम है कि वह रोज उतना ही उत्पन्न करती है जितनी जरूरत हो। यदि हर व्यक्ति प्रतिदिन अपनी आवश्यकतानुसार ही ग्रहण करे तो इस दुनियाँ में न तो गरीबी रहे और ना ही एक भी व्यक्ति भूखा रहे।

7.3.2.2 औद्योगीकरण का आधार शोषण!

आधुनिक विज्ञान और तकनीक व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बनता रहा है और इसे सभ्यता और विकास का चिह्न माना हैं वहीं गाँधी ने वैज्ञानिक आविष्कारों पर आधारित

और मशीनों का तीव्र विरोध किया है। विरोध का आधार है नैतिकता। बडे उद्योगों की स्थापना के लिए अधिक मात्रा में कच्चे माल तथा बडे बाजारों की खोज की यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को जन्म देती है जो शोषण पर आधारित और नैतिकता के विरूद्ध है। इस प्रकार औद्योगीकरण पूर्णतया शोषण क्षमता पर आधारित है।

गाँधी द्वारा मशीनीकरण के विरोध का मूल कारण यही था कि मशीनों ने ही राष्ट्र को दूसरे का शोषण करने में समर्थ बनाया है। मशीनों के कारण ही मानव का शारीरिक तथा नैतिक हुआ है। औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप धन थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है और वर्ग को अपना जीवन अत्यधिक निर्धनता में व्यतीत करना पडता है इसलिए गाँधी ने मशीनों के साम्राज्य को समाप्त करने का दृढ मत रखा। उनका कहना था कि मशीनें भी कायम रहे लेकिन वे पूर्णतया मानवीय का स्थान न लें।

7.3.2.3 कुटीर उद्योगों का समर्थन

गाँधी ने औद्योगीकरण के स्थान पर कुटीर उद्योगों का समर्थन किया ' इसके द्वारा ही भारत के करोड़ों ग्रामीण बेरोजगार, भूखे लोगों को शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका का साधन सकता था और उत्पादन जनता के हाथ में आने से अर्थ-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होता था जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गांव को एक आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करना था। भारतीय ग्रामों में कुटीर के रूप में वे खादी को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे क्योकि खादी को वे देश की जनता की, स्वतंत्रता तथा समानता की शुरूआत मानते थे। इस प्रकार समाज को सभी प्रकार के आर्थिक शोषण से मुक्त कर सभी सदस्यों को मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए उन्होंने कुटीर-उद्योगों को मुख्य आधार बनाया।

7.3.2.4 आर्थिक समानता

सामाजिक न्याय की स्थापना में आर्थिक पक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ' सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र समान अधिकारों की स्वीकृति के बावजूद यदि व्यक्ति भूखा हो तो वह न तो उपर्युक्त अधिकारों के प्रयोग में सक्षम हो सकता है और ना ही अपने अंतिम लक्ष्य 'ईश्वर की प्राप्ति' की अग्रसर हो सकता है अपितु उसकी संपूर्ण एकाग्रचितता तथा प्रयास 'रोटी' की व्यवस्था करने की ओर ही होंगे। भूखा व्यक्ति पाप नहीं जानता अत: उससे नैतिकता या सदाचार की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। ओर यदि व्यक्ति के पास अपार आर्थिक संसाधन हो तो वह भौतिक वैभव में डूबकर अपने जीवन के ' लक्ष्य को भूल जाता है अत: गाँधी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के हिमायती थे जिसमें व्यक्ति अर्थोपार्जन को केवल अपना कर्त्तव्य समझकर व्यवसाय करे तथा अपना संपूर्ण ध्यान और ऊर्जा आध्यात्मिक लक्ष्य के लगा सके। गाँधी ने स्वयं रचनात्मक कार्यक्रम' में आर्थिक समानता का अर्थ समझाते हुये लिखा है कि- ' 'आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ है, पूँजी व मजदूरी की बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर धनवानों और करोडों लोग अधभूखे और नंगे रहते हैं उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक

मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ो भूखे रहने वालों के मध्य अत्यधिक अन्तर रहेगा तब तक अहिंसा पर आधारित राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती।

आर्थिक समानता के साम्यवादियों के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये गाँधी का कहना था कि- ' 'साम्यवादी तथा समाजवादी आर्थिक समानता के लिए प्रचार भर कर सकते हैं। इसके लिए लोगों में द्वेष या वैर पैदा करने और उसे बढ़ाने में उनका विश्वास है और सत्ता प्राप्ति के बाद वे लोगों से समानता के सिद्धान्त पर अमल करवायेंगे जबकि मेरी योजना के अनुसार राज्य लोगों की इच्छा पूरी करेगा न कि लोगों को आज्ञा देगा या जबरन आज्ञा का पालन करवायेगा।..... आर्थिक समानता का अर्थ है - जगत के पास समान संपत्ति का होना यानि सबके पास इतनी संपत्ति का होना जिससे वे अपने प्राकृतिक आवश्यकतायें पूरी कर सकें।

7.3.2.5 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

आर्थिक समानता की स्थापना के मार्ग में सबसे बडी बाधा है, समाज के मुट्ठी भर पूँजीपतियों के अधिकार में समाज की अधिकांश सम्पत्ति। इस सम्पति को एक साम्यवादी भी समाज के हित में पूँजीपति से प्राप्त करना चाहता है, लेकिन उसका रास्ता है- वर्ग संघर्ष, खूनी लडाई के परिणामस्वरूप पूँजीपति से प्राप्त करना चाहता है, लेकिन उसका रास्ता है- वर्ग संघर्ष, खूनी लड़ाई के परिणामस्वरूप पूँजीपतियों की सम्पत्ति को छीनना लेकिन गाँधी वर्ग संघर्ष के हिंसापूर्ण मार्ग द्वारा लक्ष्य को प्राप्त नहीं करना चाहते। अहिंसा के पुजारी होने के कारण वे शारीरिक बल या हिंसा का प्रयोग किये बिना आर्थिक शोषण का अंत करना चाहते थे। अत: उनका कहना था कि यदि पूंजीपति और जमींदार वर्ग गरीबों के संरक्षक के रूप में कार्य करें तो शोषण समाप्त किया जा सकता है। ट्रस्टी का अर्थ है कि पूँजीपति या जमींदार सम्पत्ति का मालिक नही है। मालिक वह होता है जो अपने स्वार्थों की रक्षा करता है। जब पूँजीपति या जमींदार अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के खातिर धन कमायेगा और समाज के कल्याण में उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। लेकिन यदि पूंजीपति संरक्षता के सिद्धान्त को स्वीकार न करे तो ऐसी स्थिति में मजदूरों को सत्याग्रह द्वारा हृदय परिवर्तन साधन का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार गाँधी ने पूँजीवाद को समाप्त न करके उसे जनकल्याण की भावना में परिवर्तित करने के लिए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया।

आर्थिक समानता की स्थापना के लिए गाँधी द्वारा दिया गया ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दो तथ्यों पर अवलम्बित है-

समाज में समानता के आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए अहिंसा के सिद्धान्त का सामाजिक स्तर तक विस्तार तथा वर्ग संघर्ष को टालना।

स्वयं गरीबों तथा अमीरों से जुडे रहने के कारण ट्रस्टीशिप के आदर्श को व्यवहार में बदलने का गाँधी का विश्वास।

वस्तुत: न्यास का सिद्धान्त अव्यावहारिक है। गाँधी ने जमनालाल बजाज के उदाहरण रमे यह विश्वास किया कि ट्रस्टीशिप को व्यवहार में लाया जा सकता है लेकिन बड़ी संख्या में पूँजीपतियों द्वारा गाँधी व काँग्रेस को सहयोग देने का मुख्य कारण यह नहीं था कि परोपकारिता और देशभक्ति की भावनाओं से पूँजीपति अभिभूत थे अपितु वे स्वहित से प्रेरित थे

क्योंकि वे जानते थे की गाँधी व काँग्रेस के सहयोग के परिणाम स्वरूप उन्हें विदेशी माल से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पडेगी ओर वर्ग संघर्ष की स्थिति टलने से उनकी स्थिति और भी मजबूत हो जायेगी।

दूसरी मुख्य कमजोरी यह है कि ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त मानव स्वभाव की प्रवृति के प्रतिकूल है क्योंकि कुछ अपवादों को छोड़कर, मानव स्वभाव अधिक से अधिक सम्पत्ति जुटाकर, प्राप्त जीवन स्तर को और ऊपर उठाने का होता है और एक बार स्थापित जीवन स्तर को घटाना व्यक्ति के लिए आसान नहीं है। यदि उसे सम्पत्ति का स्वैच्छिक उपभोग करना ही नहीं है तो वह इतनी कमायेगा क्यों?

7.3.3 न्याय और समाज

7.3.3.1 सर्वोदय

रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट ' से गाँधी ने जो सर्वोदय का जो ' ग्रहण किया उसकी तीन मुख्य बातें इस प्रकार थी-

सबके हित में ही व्यक्ति का हित है।

एक वकील तथा नाई के काम का समान महत्व है क्योंकि सभी को अपने कार्य द्वारा आजीविका कमाने का समान अधिकार है।

एक मजदूर का जीवन भी सार्थक है। (जैसे-शिल्पकार)

इसलिए गाँधी का विचार था कि अहिंसा का पुजारी उपयोगितावादी अवधारणा (अधिकतम लोगों का अधिकतम हित) को स्वीकार नहीं कर सकता। वह सभी लोगों के अधिकतम हित प्राप्त करने के प्रयास में मर जायेगा। इस प्रकार, वह औरों के जीवन के लिए स्वयं मरने को तैयार रहेगा। उपयोगितावादी अपना बलिदान कभी नहीं करेगा जबकि सम्पूर्णतावादी (सभी के हित में विश्वास करने वाला) अपने आपको कुर्बान कर देगा।

इस प्रकार, गाँधी ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता की रक्षा के लिए आर्थिक पर अपेक्षित बल दिया है। यद्यपि नैतिकतावादी और सत्य अहिंसा में अटूट आस्था के परिणामस्वरूप समस्याओं के समाधान के लिए सुझाये गये उपाय आदर्शवादी बन पडे हैं लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि उन्होंने अपने जीवन में और जीवनकाल में इन आदर्शो का समाजीकरण करने का भी प्रयास किया। सर्वोदय विचार की क्रियान्वित करने के लिए ही स्वतंत्र भारत में विनोबा भावे ने सर्वविदित भूदान आंदोलन चलाकर गांधी के सपने को साकार करने का प्रयास किया।

गाँधी व्यक्ति का आंतरिक नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान चाहते थे। उनका मानना था कि यदि सभी व्यक्ति सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन करते हुये, अपनी समस्त इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर इन सिद्धान्तों के अपने विचार तथा व्यवहार का अभिन्न अंग बना ले तो समाज क्रमश: धीरे-धीरे उनके द्वारा चाहे गये आदर्श की अवस्था तक पहुँच जायेगा। तार्किक दृष्टि से तो यह सही है कि यदि एक-एक करके सभी व्यक्तियों का रूपान्तरण होगा तो अंतत: सम्पूर्ण समाज भी सुधर जायेगा लेकिन यह सिद्धान्त सैद्धान्तिक रूप से तार्किक होकर भी

अव्यावहारिक है। यद्यपि यही आत्म सुधार विस्तृत रूप से संभव हो सके तो समस्त सामाजिक रोगों का निदान हो सकता है। स्वयं गाँधी ने अपने जीवन को उपदेशानुसार ढाला। उनका आश्रम व्यवस्थित परिश्रम का साकार रूप था ओर शारीरिक श्रम पर जोर देना गाँधी के महानतम गुणों में से एक था। लेकिन आज के भौतिकवादी युग में उपलब्ध मशीनों की सुविधा का त्याग कर व्यक्ति न तो शारीरिक श्रम के लिए उत्सुक है और ना ही आत्म सुधार द्वारा समाज सुधर के लिए कृत संकल्प। इसका अर्थ यह नहीं कि समाज में समानता की स्थापना का गाँधी का सपना टूट गया है। गाँधी के द्वारा स्थापित आदर्श तथा लक्ष्य अनुचित थे अपितु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा की अनिवार्यता के कारण हृदय परिवर्तन का ही रास्ता बचता है और हृदय परिवर्तन एक रात में नही हो सकता। यह प्रकिया बहुत धीमी है और इस तथ्य को स्वयं गाँधी ने भी स्वीकार किया था।

7.3.3.2 अस्पृश्यता का समाधान

गाँधी ने भारतीय समाज में जन्म के आधार पर एक वर्ग के साथ अमानवीय तथा क्रूर अस्पृश्यता की प्रथा के कारणों को समझने व समाप्त करने का प्रयास किया। गाँधी न तो इस मत से सहमत थे कि जाति-व्यवस्था अस्पृश्यता की उत्पत्ति का मूल कारण है और ना ही अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के ही पक्षधर थे। गाँधी अस्पृश्यता के लिए जाति-व्यवस्था को उत्तरदायी न मानकर ऊँच-नीच की भावना तथा इस वर्ग द्वारा किये जाने वाले सफाई के कार्य को अस्पृश्यता के जन्म व विकास का कारण मानते हैं।

गाँधी ने अस्पृश्यता की प्रकृति को भी समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने इस समस्या को अतार्किक, अधार्मिक माना। उनका मानना था कि दलितों के अलावा भी समाज के कुछ व्यक्ति स्वच्छता का काम करते है, लेकिन इन्हें अछूत नहीं माना जाता अर्थात् इस समस्या का आधार तार्किक न होकर परम्परागत है। हर ब्राह्मण को ऊंचे दर्ज का और पवित्र समझा जाता है जबकि दलितों को अस्पृश्य न तो सामान्य शिष्टाचार तथा न ही न्याय की दृष्टि से अस्पृश्यता का समर्थन करना संभव है। गाँधी ने अस्पृश्यता को विवेकरहित ही नहीं अपितु अमानवीय तथा हिन्दू-धर्म के प्रतिकूल भी बताया, क्योंकि इस व्यवस्था में समाज के एक बडे वर्ग को समस्त मानवीय अधिकारों से न केवल वंचित रखा गया था अपितु रूढिवादी हिन्दुओं ने इसे हिन्दूशास्त्रों का हवाला देकर धर्मसम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया और अस्पृश्यता निवारण को धर्म भ्रष्टता या पाप के रूप में अस्वीकार कर दिया था। उन्होंने यह माना कि यह अन्याय की पराकाष्ठा है कि भारतीय समाज के सर्वाधिक उपयोगी सेवक - दलितों को सफाई का काम करने के कारण अस्पृश्य तथा निम्न जाति का समझते है।

इस अमानवीय प्रथा के पालन के लिए हिन्दुओं की आलोचना में उनकी पीड़ा छुपी हुयी थी, लेकिन उन्होंने इसके लिए हिन्दुओं पर कटु व्यंग्य करते हुये कहा है कि हम स्वराज्य की स्थापना के लिए अधीर है लेकिन अपने सहधार्मियों के पांचवे हिस्से के साथ बदतर व्यवहार करते हैं। उन्होंने गीता का उदाहरण देते हुए अस्पृश्यता को हिन्दु धर्म के प्रतिकुल सिद्ध किया ताकि रूढ़िवादी और अपने मानसिक जंजाल में से निकल कर गाँधी के प्रयासों को सफल बनाने में सहयोग दें। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-गीता में भगवान कृष्ण द्वारा बताये गये समानता के

सिद्धान्त में, मैं विश्वास करता हूँ। गीता हमें यह शिक्षा देती है कि चारों जातियों (वर्णों) के साथ समानता के आधार पर व्यवहार किया जाना चाहिए।

दलितों के प्रति गाँधी की केवल शाब्दिक सहानुभूति नहीं थी। उन्होंने एक ओर अस्पृश्यता का विरोध किया, वही दूसरी ओर इसे समाप्त करने के उपाय भी सुझाये। चूंकि गाँधी साध्य-साधन की पवित्रता तथा सत्य-अहिंसा में अटूट आस्था रखते थे अत: स्वाभाविक रूप से अस्पृश्यता समाप्ति के साधन भी उपर्युक्त सिद्धान्तों की सीमा में ही निर्देशित किये गये। इस हेतु उन्होंने दोहरे सुधार की पेशकश की - एक ओर दलितों की स्थिति में सुधार और दूसरी और सवर्ण हिन्दुओं का हृदय-परिवर्तन। उनका मानना था कि दलितों की सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक स्थिति में सुधार किये जाये तो वे स्वयं जागत होंगे, स्वच्छ रहेंगे तथा अपनी दीनता के लिए स्वयं को दोषी नहीं मानेगे।

7.3.3.3 गाँधी एवं शिक्षा

शिक्षा मानव निमार्ण की कला तथा विज्ञान है अत: शिक्षा का उद्देश्य संपूर्ण मानव स्व निर्माण तथा व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है। शिक्षा व्यक्ति की उन क्षमताओं को उजागर तथा प्रेरित करती है जो व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई या अन्तर्निहित है, शिक्षा क्षमताओं का निर्माण नहीं करती। इस प्रकार सरल शब्दों में शिक्षा वह है जो व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास द्वारा सर्वांगीण विकास करती हो।

गाँधी शिक्षा को मानव निर्माण की कला मानते थे तथा जो व्यक्ति में अन्तर्निहित 'सर्वोत्तम' है, उसे बाहर निकालना वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तथा अन्त में, व्यक्ति के विकास द्वारा समाज का विकास या परिवर्तन व्यक्ति की आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमताओं के समन्वित तथा संतुलित विकास द्वारा ही सर्वांगीण विकास संभव है। ऐसा नहीं है कि किसी एक तत्व को दूसरे से अधिक प्राथमिकता देकर शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि शारीरिक अंगों, जैसे- हाथ, पैर, आँखें,कान,नाक आदि के उचित व्यायाम तथा प्रशिक्षण द्वारा ही उसकी मानसिक शक्तियों का श्रेष्ठ व तीव्र विकास हो सकता है। लेकिन शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के साथ-साथ यदि समान रूप से आत्म-जागृति न हो तो उपर्युक्त दोनों (बुद्धि-शरीर) का विकास बहुत ही निर्बल तथा असंतुलित होगा। आध्यात्मिक शिक्षा का अर्थ है, हृदय की शिक्षा। अत: शारीरिक व आध्यात्मिक विकास के साथ ही बच्चे के मस्तिष्क का उचित तथा सर्वांगीण विकास हो सकता है। ये तीनों ही अविभाज्य रूप से पूर्णता का निर्माण करते है। इसलिए, इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानना भारी भूल होगी कि शारीरिक, बोद्धिक व आध्यात्मिक विकास जो, एक दूसरे से पृथक करके या एक-दूसरे से स्वतंत्र रखकर प्राप्त किया जा सकता है।

गाँधी के अनुसार- ' 'शिक्षा का लक्ष्य है व्यक्ति के चरित्र का निर्माण। उसमें' साहस, शक्ति, गुणों का इस प्रकार विकास करना कि वह महान् उद्देश्यों के लिए काम करते हुये अपने-आप को भुला दे। साक्षरता या अकादमिक शिक्षा इस उच्चतर लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मात्र है। यही कारण है कि भारत में साक्षरता की शोचनीय स्थिति के बावजूद मुझे ऐसा महसूस

नहीं होता कि भारत स्वशासन के लिए अयोग्य है। साक्षरता शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, यही तक कि शिक्षा का आरंभ भी नहीं है। यह व्यक्ति के नैतिक स्तर को एक इंच भी ऊपर नहीं उठा सकती। चरित्र-निर्माण साक्षरता से पूर्णतया अलग या स्वतंत्र है।

7.3.3.3.1विद्यमान शिक्षा प्रणाली के दोष

विद्यमान विदेशी शिक्षा गाँधी द्वारा मान्य शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल नहीं थी। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में गाँधी को निम्नलिखित दोष दिखाई दिये-

विद्यार्थियों के लिए निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के पाठ्यक्रम का उनके आसपास के वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं है अपितु यह उनके लिए पूरी तरह अजनबी चीजों से सम्बद्ध है। इन पाठ्य-पुस्तकों से विद्यार्थी यह नहीं सीख सकता कि गृहस्थ जीवन में क्या उचित है और क्या अनुचित? उसे अपनी भूमि पर गर्व करने की शिक्षा नहीं दी जाती है जितनी ऊंची शिक्षा वह प्राप्त करता जाता है, उतना ही अपने घर से दूर होता जाता है और अपनी शिक्षा के अंतिम चरण में वह अपने ही घर तथा वातावरण से अजनबी हो जाता हैं। उसे अपने गृह जीवन मे सरसता नहीं महसूस होती। गाँव के दृश्य उसके लिए बंद किताब के समान हैं। उसके सामने उसकी अपनी सभ्यता को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह नितान्त दुर्बल, बर्बर, अंधविश्वासों से परिपूर्ण तथा समस्त व्यावहारिक लक्ष्यों की दृष्टि से व्यर्थ है। यह शिक्षा उसे अपनी पारम्परिक संस्कृति से विमुख करने का काम करती है और यदि बहु संख्यक युवाओं का अराष्ट्रीकरण नहीं किया जाता तो इसका कारण है-प्राचीन संस्कृति का युवाओं में गहराई से जड़े जमाना, जो कि विपरीत शिक्षा के बावजूद कायम है।

विद्यमान शिक्षा हृदय तथा हाथ के उपयोग की संस्कृति की उपेक्षा करके केवल मस्तिष्क से सम्बन्धित है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ 60 प्रतिशत जनता किसान तथा 10 प्रतिशत उद्योगों पर निर्भर है अत: ऐसी स्थिति में शिक्षा को केवल साहित्यिक बनाकर विद्यार्थी जीवन के बाद लडके-लड़कियों को शारीरिक काम के लिए अयोग्य और असमर्थ बनाना एक अपराध है। यह सत्य है कि हमारा अधिकतम समय रोजी-रोटी कमाने मे लग जाता है अत: बचपन से हमें अपने बच्चों को ऐसे श्रम की प्रतिष्ठा की शिक्षा देनी चाहिए, न कि उन्हें श्रम विरोधी शिक्षा दी जाय।

विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के कारण बच्चों की नसों पर पडने वाले अनावश्यक दबाव के कारण मानसिक थकान होती है। यही नहीं, इससे वे मौलिक चिन्तन तथा कार्य के लिए असमर्थ होकर केवल रह तथा नकलची बनते हैं और आम जनता तथा परिवार के लिए उनकी शिक्षा उपयोगी नहीं होती। विदेशी माध्यम ने व्यवहार में हमारे बच्चों को अपनी ही भूमि में विदेशी बना दिया है और हमारे देशी भाषाओं के विकास को अवरूद्ध कर दिया।

इस प्रकार विदेशी शासन द्वारा स्थापित और संचालित शिक्षा व्यवस्था से वे संतुष्ट नहीं थे और उसे चरित्र-निर्माण के प्रतिकुल मानते थे। यद्यपि भारतीय समाज सुधारकों ने

अंग्रेजी शिक्षा के दोषों की आलोचना की थी लेकिन 1905 से आरंभ हुये स्वदेशी और बायकॉट आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई।

गाँधी ने विद्यमान शिक्षा व्यवस्था पर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विचार रखा, जो शिक्षा उनकी परिभाषा के अनुसार, व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास को पूर्ण करती हो। गाँधी के शिक्षा सुधार संबंधी विचार सर्वाधिक मौलिक थे। वर्ष 1936 में, गाँधी ने 'नयी तालीम या बुनियादी शिक्षा ' कि नाम से शिक्षा सम्बन्धी जो विचार रखे इन्हें ही शिक्षा की वर्धा योजना भी कहा जाता है।

7.3.3.3.2 गाँधी की शिक्षा व्यवस्था

तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर गाँधी ने जो शिक्षा व्यवस्था की प्रणाली प्रस्तुत की, उसकी मुख्य बातें इस प्रकार है-

केवल मस्तिष्क के विकास पर आधारित शिक्षा को गाँधी अधूरी शिक्षा मानते थे इसलिए उन्होंने न केवल शारीरिक श्रम पर बल दिया अपितु इसे शिक्षार्जन का माध्यम बनाने का आव्हान किया। वे साक्षरता को शिक्षा का एकमात्र साधन न मानकर विभिन्न साधनों में से एक मानते थे इसलिए किसी भी हरस उद्योग के प्रशिक्षण से वे बालक की शिक्षा का आरंभ करना चाहते थे तथा इस प्रशिक्षण के साथ ही वे उसे सम्बद्ध हस्त उद्योग द्वारा उत्पादन में समर्थ बनाना चाहते थे। इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था में ही उन्हें मानसिक तथा आत्मिक विकास संभव दिखाई दिया। हर उद्योग की यांत्रिक तथा वैज्ञानिक तरीके से जानकारी दी जाए ताकि बच्चे को उसकी कार्यप्रविधि का ज्ञान हो सके। यह प्रणाली, कार्यकर्ताओं को कताई सिखाते समय काम मे ले ली जाने के कारण अनुभव पर आधारित है। इस प्रणाली द्वारा इतिहास, भूगोल तथा गणित की शिक्षा भी बालक को स्वाभाविक रूप से दी जा सकती है। वाचन तथा लेखन द्वारा अधिक से अधिक दस बार दोहरा कर भी जो नहीं सिखाया जा सकता, वह हरस-उद्योग द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से बच्चा वैसे ही सीख जाता है। अक्षर-चिन्हों की पहचान तो बाद में, तब आसानी से सिखाई जा सकती है जबकि वह गेहूँ तथा भूसे में अन्तर समझने सुगे और जब वह अपना स्वाद का ज्ञान विकसित कर लें।

यद्यपि यह एक क्रान्तिकारी प्रस्ताव है लेकिन यह प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित भारी मेहनत में कमी करके विद्यार्थी को एक ही वर्ष में इतना अर्जन करने के योग्य बनाता है जिसे प्रचलित प्रणाली में काफी समय लगता है। हस्त-उद्योग का अर्थ है- 'सर्वांगीण मितव्ययता' निश्चित रूप से अपना हस्त उद्योग। सीखते समय गणित भी सीख रहे होते है। हमने अब तक अपना सम्पूर्ण ध्यान बच्चों के मस्तिष्क में, उनके प्रोत्साहन तथा विकास का ख्याल किये बिना, विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को भरा है अत: अब हमें एक गौण कार्यकलाप के रूप में नहीं अपितु बौद्धिक शिक्षण के मुख्य साधन के रूप में हस्त शिल्प को अपनाने पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करना चाहिए विशेष धंधे की शिक्षा के माध्यम से बच्चों का मस्तिष्क, शरीर, हस्तलेख,

कलात्मक बोध आदि स्वत: ही विकसित होंगे। सम्पूर्ण शिक्षा हस्त शिल्प शिल्प या उद्योग द्वारा दी जानी चाहिए।

गाँधी की शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तुत व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह थी कि उन्होंने शिक्षा व्यय को गरीब देश के लिए आसान बनाने के लिए यह विचार रखा कि शिक्षकों के वेतन का भुगतान शिष्यों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य से किया जा सकता है। करोडों बच्चों को शिक्षित करने के लिए इसके अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं है। इसके अलावा, प्राथमिक शिक्षा में जो बाते शामिल होंगी, वे हैं-स्वास्थ्य, उपचार विज्ञान, आरोग्य शास्त्र पोषहार, अपना काम स्वयं करना तथा घर में माता-पिता के काम में हाथ बँटाना व अनिवार्य शारीरिक प्रशिक्षण।

संपूर्ण देश के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा में गाँधी का दृढ़ विश्वास थी, और उनका मानना था कि बच्चों को उपयोगी उद्योग का प्रशिक्षण देकर ही हम उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं और इसको उसके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकते है। शिक्षा के इस आर्थिक पक्ष का अर्थ यह नहीं कि यह व्यवस्था अपवित्र है। सच्ची अर्थव्यवस्था कभी उच्च नैतिक स्तर के विरूद्ध नहीं होती।

शहरी बच्चों को किस प्रकार के उद्योग सिखाये जायें इस संदर्भ में कोई कठोर नियम गाँधी ने नहीं बनाया लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप रो कहा कि वे ग्रामीण भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। गांव शहर का एक हिस्सा मात्र रह गये हैं और शहर के शोषण के लिए ही जीवित हैं, यह स्थिति अप्राकृतिक है। यह स्थिति तभी समाप्त हो सकती है जबकि शहर अपने दायित्व को महसूस करे और गाँवों से अपनी शक्ति तथा पोषणाहार प्राप्त करने के बदलें में उचित देय का भुगतान करे। यदि शहरी बालक सामाजिक पुनर्गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहते हैं तो जिन व्यवसायों के माध्यम से वे शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण आवश्यकताओं से सम्बन्धित होने चाहिये।

इसके अलावा, उच्च शिक्षा का भी उन्होंने विरोध नहीं किया लेकिन उनका कहना था कि राज्य को उच्च शिक्षा का खर्च तभी देना चाहिये जबकि इसका राज्य के लिए उपयोग हो। उन्होंने धर्म निरपेक्ष शिक्षा का समर्थन किया है लेकिन शिक्षा में नैतिकता की शिक्षा को अनिवार्य माना।

इस प्रकार गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार भी सामाजिक समानता व न्यायप्रियता से ओतप्रोत है, लेकिन यहाँ शोषित वर्ग अछूत या स्त्रियों के रूप में न होकर ग्रामीण तथा नगरीय समाज में समानता का लक्ष्य है। शिक्षा द्वारा वे आर्थिक रूप से नगरीय जनता द्वारा किये जाने वाले ग्रामीणों के शोषण को समाप्त करना चाहते थे। अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा लागू करके वे समाज के निम्न से निम्न व अति गरीब व्यक्ति को भी शिक्षा सुलभ करवाना चाहते थे। गाँधी परम्परागत शिक्षा को पूर्णतया अस्वीकार करते हुये एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जो कि भारतीय समाज की बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक शोषण, किताबी ज्ञान, भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव, जैसी समस्याओं को समूल रूप से नष्ट कर सके। यह बात दीगर है कि गाँधी द्वारा निर्देशित शिक्षा को लागू करना व्यावहारिक रूप में कठिन है। लेकिन गाँधी ने इसी शिक्षा को समानता व न्याय पर आधारित समाज के पुनर्गठन का आधार मानते हुये कहा है-

कताई तथा धुनाई जैसे ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने में, मेरी योजना मौन सामाजिक कांति द्वारा दूरगामी परिणामों को प्राप्त करने की कल्पना पर आधारित है। यह ग्राम और शहर के मध्य सौहार्द्र तथा नैतिकता पर आधारित सम्बन्धों का संचालन करेगी तथा इस प्रकार वर्तमान विभिन्न वर्गो में विद्यमान सामाजिक असुरक्षा और जहरीले सम्बन्धों को समाप्त करने की ओर अग्रसर होगी। यह हमारे ग्रामों के बढ़त पतन को रोककर एक एसी न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की नींव रखेगी जिसमें सुविधा सम्पन्न तथा सुविधाहीन जैसा कोई अप्राकृतिक विभाजन नहीं होगा और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-यापन के लिए मजदूरी तथा स्वतंत्रता का अधिकार मिलेगा। यह सब बिना किसी आतंक या खूनी वर्ग संघर्ष के होगा और भारत जैसे बड़े महाद्वीप के मशीनीकरण के लिए विशाल पूंजी का व्यय भी नहीं करना पड़ेगा। स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था द्वारा गाँधी ने समाज में गरीब लोगों को शोषण व दरिद्रता से मुक्त कर समानता की स्थापना की ओर सामाजिक व्यवस्था को उज़ख किया है। यद्यपि गाँधी ने ऐसी शिक्षा में मशीनों का विरोध किया है जो आधुनिक समाज में आलोचना का विषय है, यद्यपि गाँधी ने ऐसी शिक्षा में मशीनों का विरोध किया है जो आधुनिक समाज में आलोचना का विषय है, लेकिन फिर भी गाँधी द्वारा दिमागी श्रम के साथ-साथ शारीरिक श्रम की आवश्यकता तथा प्रतिष्ठा को प्रतिपादित किया गया है क्योंकि इसके अभाव में ही हमारे समाज में कई शिल्पकारों को हीन दृष्टि से देखा जाता है।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए सामाजिक -समानता की स्थापना आवश्यकता है। गाँधी इसके प्रबल समर्थक थे, लेकिन केवल वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना या अस्पृश्यता निवारण से ही सामाजिक न्याय की स्थिति का प्राप्त होना कठिन वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना या अस्पृश्यता निवारण से ही सामाजिक न्याय की स्थिति का प्राप्त होना कठिन था, अत: गाँधी ने इसके साथ ही समाज की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन कर सम्पूर्ण समाज की एक ऐसी परिवर्तित व्यवस्था का विचार रखा जिसमें सभी व्यक्तियों का अधिकतम हित हो सके। गाँधी के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक अवस्था तथा शिक्षा व महिलाओं की स्थिति में निम्नलिखित सुधार व परिवर्तन द्वारा ही ऐसे समाज की स्थापना की जा सकती है, जिसमें सभी लोगों को न्याय मिल सकें।

7.3.3.4 गाँधी एवं स्त्रियाँ

भारतीय समाज के लगभग आधे सदस्यों से धर्म तथा शास्त्रों के नाम पर उसी प्रकार निर्योग्य घोषित किया गया जैसे कि अछूतों को और यह वर्ग है-स्त्रियों का। समाज में शूद्रों के समान ही स्त्रियों को भी शिक्षा तथा किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता से वंचित करके सम्पूर्ण मानवीय अधिकारों से वंचित कर रखा था, वह पुरूष के हाथ का खिलौना थी जिसे वह जब, जैसे चाहे अपनी आवश्यकता और इच्छानुसार उपभोग की वस्तु के रूप में काम में लेता था। समाज में मनु का यह निर्देश सुस्थापित होकर एक सामान्य नियम बन गया था कि ' स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना चाहिए। वे दिन लद चुके थे जब वैदिककाल में गार्गी, घोषा,अपाला जैसी विदुषियों का अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का पुरूषों के समान ही अधिकार था। मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की स्थिति

इतनी दयनीय हो गई कि वह घर की चार दीवारी में कैद, ऐसी कैदी थी जिसका काम बच्चों का पालन-पोषण तथा पति की सेवा करना था।

ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद आरम्भ हुये समाज सुधार कार्यक्रम में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा स्त्रियों की स्थिति के सुधार का ही रहा। राजाराम मोहन राय से लेकर मोहन दास कर्मचन्द गाँधी तक-सभी समाज सुधारकों ने यह विचार रखा कि स्त्रियों की स्थिति में सुधार करके ही हम अपने समाज का विकास कर सकते है, अन्यथा नहीं। एक आध्यात्मिक व्यक्ति तथा महान् मानवतावादी होने के कारण हर इंसान के दुखदर्दो से गाँधी को हमदर्दी थी। यही कारण है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर वे व्यग्र हो उड़े। एक पुरूष होते हुये भी उन्होंने स्त्री की अन्तर वेदना को महसूस किया तथा उन सभी पक्षों पर प्रकाश डाला जो स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थिति तथा समानता के अधिकार को प्राप्त करने में सहायक थे। सर्वप्रथम, गाँधी का यह मानना था कि मौलिक रूप से स्त्री तथा पुरूष समान हैं और सारतः दोनों की समस्या भी एक ही है। दोनों में आत्मा एक समान ही है, दोनों समान जीवनयापन करते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक के सक्रिय सहयोग के अभाव में दूसरा जी नहीं सकता। गाँधी के अनुसार, स्त्रियों की स्थिति में गिरावट तब आयी, जब युगों पहले पुरूष ने किन्हीं कारणों से स्त्रियों पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों में धीरे-धीरे हीनभावना का विकास होता गया। उसने पुरूष के इस स्वार्थपूर्ण दावे पर यकीन कर लिया कि वह पुरूष से निम्न है, उसके बराबर नहीं, लेकिन इन्हीं पुरूषों में से जो सिद्ध पुरूष थे उन्होंने स्त्रियों को पुरूषों के साथ पूर्ण समानता के दर्जे का मान्यता दी। गाँधी की मान्यता के अनुसार केवल कुप्रथा के आधार पर ही सर्वाधिक मूर्ख तथा अयोग्य व्यक्ति भी स्त्रियों के ऊपर अपना वर्चस्व कायम रखते हैं जिसके वे कतई पात्र नहीं होते।

गाँधी इस बात के लिए कतई तैयार नहीं थे कि स्त्री पुरूषों द्वारा थोपे गये मिथ्या अहंकार व अपमान के बोझ को केवल इसलिए ढोते रहे कि ये परम्परा से इसी प्रकार, सदियों से चले आ रहे हैं। पुरूषों द्वारा स्त्रियों पर अकारण लगाये गये अपार अमानवीय प्रतिबन्धों की गाँधी को केवल जानकारी ही नहीं थी अपितु इसे देखकर उनके हृदय में पीड़ा व आक्रोश भी था इसलिए उन्होंने यहाँ तक कहा था - ' 'यदि मैं झी होता तो पुरूषों के ऐसे किसी भी दावे के विरूद्ध विद्रोह कर देता कि स्त्री पुरूष के लिए एक खिलौना हैं समाज का, परिवार का एक अति महत्वपूर्ण अंग होने के लिए, उसे अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा और सम्मान दिलाने के लिए, उसे पुरूषों के समकक्ष खड़ा करने के लिए स्त्री इनकी उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करनी है। स्त्री को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए, स्त्री में किसी प्रकार के नये गुण, योग्यता या सामर्थ्य पैदा करने की आवश्यकता नहीं थी। आवश्यकता केवल इस बात की थी कि उसकी सामर्थ्य पर पर्दा डालने वाली परम्पराओं तथा उसकी प्रतिभा को कुंठित करने वाले प्रतिबन्धों को निडर होकर अस्वीकार कर दिया जाय। इसी उद्देश्य से, गाँधी का कहना था कि हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त नैतिक आचार संहिता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि परम्परा से चला आ रहा है, वह सब अभ्रान्त या अटल सिद्धान्त है। यह कौन कह सकता है कि प्राचीन काल में वस्तुत: क्या सच था' क्या 108 उपनिषद् समान रूप से पवित्र थे? हमें

जहाँ तक संभव हो 'सके, हर बात का तर्क की कसौटी पर परीक्षण करना चाहिए और जो बात इस आधार पर खरी न उतरे, वह चाहे कितनी ही पुरानी क्यों ना हो, अस्वीकार कर देनी चाहिए।

गाँधी के अनुसार, स्त्री तथा पुरूष में मौलिक समानता होने के बावजूद शारीरिक रूप से भिन्नताएँ हैं और दोनों के शारीरिक आकरों में इस भिन्नता के आधार पर ही कार्य विभाजन किया गया है। अधिकतम महिलाओं को मातृत्व उत्तरदायित्व का पालन करना होता है और इस कार्य के लिए जिस प्रकार के गुण स्त्री में होने चाहिए वैसे पुरूषों के लिए आवश्यक नहीं। स्त्री धीर-गंभीर तथा सहनशील होती है जबकि पुरूष साहसी तथा उद्योगी होता है। स्त्री गृहस्थी की मालकिन होती है पुरूष रोजी-रोटी कमाने वाला या परिवार का पोषक होता है, स्त्री रोटी को रखने व वितरण करने का काम करती है। मानव जाति के शिशु को जन्म देने की कला का एकमात्र तथा विशेष परमाधिकार उसी का है और उसकी देखभाल के बिना मानवजाति निश्चित रूप से विनष्ट हो जाती। उनका यह मानना था कि स्त्री-पुरूष सामाजिक स्थिति, सम्मान तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से तो समान है लेकिन इसका अर्थ लैंगिक समानता से नहीं है। महिला के शिकार करने या भाला बछीं फैंकने, चलाने पर कोई कानूनी रोक न होने पर भी वह स्वाभाविक रूप से ऐसा नहीं करती। प्रकृति ने ही इन दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाया है और उनकी शारीरिक बनावट के अनुसार ही उनके कार्यो को परिभाषित किया है। लेकिन कार्य चाहे गृहस्थी का हो या साहस का, दोनों को समान प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। घर को व्यवस्थित रखना भी उतने ही साहस का काम है जितना कि बाहरी आक्रमण से उसकी रक्षा करना। इस प्रकार गाँधी ने तार्किक ढंग से स्पष्ट किया कि स्त्रियों को केवल इसलिए हीन ना समझा जाय कि वे दिनभर घर में रहकर काम करती है और पुरूष बाहर रहकर साहस का काम करता है। सम्पूर्ण सामर्थ्य के आधार पर भी यदि स्त्री पुरूष की तुलना की जाय तो गाँधी ने स्त्री को पुरूष के समकक्ष ही पाया। उन्होंने इस तुलनात्मक समानता को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

'यदि शक्ति का अर्थ पाश्विक शक्ति से है तो पुरूष से, निश्चित रूप में नारी कम पाश्विक है लेकिन यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति से है तो नारी पुरूष से अपरिमित मात्रा में श्रेष्ठ है। शारीरिक बनावट की भिन्नता के बावजूद गाँधी यह मानते थे कि वस्तुत: शारीरिक बल में कभी नारी उतनी निर्बल नहीं है जितना समाज ने उसे बना रखा है। उनके अनुसार स्त्रियों की यह मानसिकता बना दी गई है कि वह पुरूष का मुकाबला नहीं कर सकती। यदि महिलायें अपने दिमाग से यह बात निकाल दें कि वे कमजोर हैं कि कोई व्यवसाय किसी लिंग विशेष के लिए ही आरक्षित है। भोजन बनाना मुख्य रूप से स्त्रियों का काम है लेकिन जो सैनिक अपना खाना ना बना सके वह सर्वथा अयोग्य सैनिक होगा। जहाँ घर में खाना महिलायें ही बनाती हैं वही, बड़े पैमाने पर व्यवस्थित रूप से खाना बनाने का काम पुरे विश्व में पुरूषों द्वारा किया जाता है। युद्ध में भाग लेना मुख्य रूप से पुरूषों का पेशा है, अरब में इस्लाम के आरंभिक संघर्षों में महिलाओं ने अपने पति के साथ नायिका के समान युद्धों में भाग लिया है। सिलाई का काम महिलाओं का माना जाता है लेकिन दुनिया में कुशल दर्जी पुरूष ही हैं। गाँधी की यह मान्यता थी कि स्त्रियाँ घर का काम ही करें लेकिन उनका कहना था कि जहाँ परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो, वहाँ स्त्रियों को मजदूर वर्ग की औरतों के समान घर खर्च में हाथ

बंटाना चाहिए। घर में कमाने वाला एक तथा खाने वाले बहुत लोग हों तो उस पर अनुचित बोझ पडे बिना नहीं रह सकता।

गाँधी के विचारों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि शारीरिक भिन्नता के आधार पर स्त्री को घर की देखभाल व पुरूष को आजीविका के काम का दायित्व सौंपते है लेकिन वे इस कार्य विभाजन को अंतिम रेखा नहीं मानते। वे तो सामर्थ्य तथा परिस्थिति के अनुसार दोनों को अपना काम धंधा करने की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। कार्य के इस क्षेत्र में जहाँ स्त्रियों को नितान्त निर्बल माना जाता है वहाँ गाँधी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुत. स्त्री ऐसे तो की स्वामिनी है जो उसे पुरूष रो भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं अत: स्त्री को अपनी ही भावना का परित्याग करके यह समझना चाहिए कि उसमें शक्ति, संयम, सहनशीलता का अपार भंडार है। गाँधी के अनुसार-

"इस दिशा में स्त्रियों को अपने पति को भी 'ना' कहने की कला सिखाना ही उन्हें वास्तविक शिक्षा देना है। उसे यह शिक्षा दी जाये कि वह अपने पति के हाथ का खिलौना नहीं है। जिस उसके कर्त्तव्य है, वैसे ही उसके अधिकार भी।

भारतीय समाज में स्त्रियाँ की स्थिति में गिरावट का एक मुख्य कारण विवाह सम्बन्धित अनेक बुराइयाँ हैं जो धीरे-धीरे पनपी थीं। विवाह एक स्वाभाविक तथा सामाजिक प्रथा है जिसे हिन्दुओ ने एक धार्मिक कर्म का रूप दे रखा हैं। लेकिन धर्म के नाम पर किये जाने वाले विवाहों में सकारात्मक तथा नकारात्मक रूप में इतनी अमानवीय परम्पराओं को शामिल कर लिया गया था कि जिसके परिणाम स्वरूप स्त्री को वासना पूर्ति के साधन के रूप में माना जाता था। विवाह कब, किससे, क्यों किया जाना है, इनके निर्धारण का एकमात्र अधिकार माता-पिता को था। गाँधी ने विवाह से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम, वे विवाह को आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का साधन मानते थे। उनके अनुसार- विवाह का अर्थ लक्ष्य शारीरिक एकता के माध्यम से आध्यात्मिक एकता है। ' 'विवाह के माध्यम से जो मानवीय प्रेम मूर्त रूप ग्रहण करता है वह दैवीय या सार्वभौगिक प्रेम की आधार शिला है। अत: विवाह का सर्वप्रथम और मुख्य उद्देश्य। आध्यात्मिक विकास होना चाहिए।

अपना जीवन साथी चुनने के लिए गाँधी न केवल स्त्री की स्वीकृति या सहमति को आवश्यक मानते थे अपितु बिना सहमति के किये गये विवाह को ' 'विवाह' ' के रूप में भी मानने को सहमत न थे। इसीलिए सर्वप्रथम बाल विवाह के संदर्भ में उनके विचारों को जानना उचित होगा। बाल-विवाह के संदर्भ मै, उनके विचारों को जानना उचित होगा। बाल-विवाह को वे एक अपराध मानते थे। जब कुछ ब्राह्मण लड़कों ने इस संदर्भ में गाँधी के समक्ष यह समस्या रखी कि यदि वे ज्यादा उम्र में विवाह करना भी चाहें तो फिर लड़कियाँ नहीं मिलती।

इस पर गाँधी का जवाब था कि ऐसी स्थिति में वे 16 वर्ष की किसी ब्राह्मण विधवा से विवाह करें और यदि विधवा न मिले तो किसी भी जाति की लड़की से विवाह कर लें लेकिन बाल-विवाह ना करें। बाल विवाह से उत्पन्न एक गंभीर समस्या थी विधवाओं की क्योकि बहुत छोटी उम्र में विवाह के कारण लडके की मृत्यु पर लड़की को आजीवन ब्रह्मचारी के रूप में ही रहना पडता था। उसे पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं था। गाँधी इन बाल-विधवाओं की पीड़ा

से बहुत व्यवस्थित थे और उनका मानना था कि यदि ऐसी कोई लड़की विधवा होती हैं तो उसके माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे उसका पुनर्विवाह करे। जहाँ तक अन्य विषयों का प्रश्न है, यदि वे पवित्र जीवन नहीं व्यतीत कर सकतीं तो उन्हें भी विधुरों की तरह ही विवाह करने का समान अधिकार है। यदि हम हिन्दू धर्म को बचाना चाहते हैं अपने आपको पवित्र रखना चाहते हैं तो हमें बलात् विधवा-प्रथा के जहर को समाप्त करना होगा। यह सुधार उन लोगों को आरम्भ करना चाहिए जो कि बाल-विधवाओं के माता-पिता हैं और उनका विवाह करना चाहिए- पुनर्विवाह नहीं क्योंकि वस्तुत: उनका विवाह तो कभी हुआ ही नहीं था। यदि विवाह एक धार्मिक कर्त्तव्य तथा नये जीवन की शुरूआत है तो लड़कियों को पूरी तरह वयस्क होने पर जीवन साथी के चयन में भागीदारी बनाया जाना चाहिए तथा अपने कर्म के फल के बारे में परिचित होना चाहिए। बच्चों को विवाहावस्था में पहुँचा कर तथा मानवता के प्रति अपराध है। गाँधी ने विधवा विवाह को पाप नहीं माना और कहा कि यदि विधवा विवाह पाप भी है तो वैसा ही है जैसे किसी विधुर-विवाह का पाप।

गाँधी ने पर्दा प्रथा का विरोध किया तथा कहा कि गौरवशाली सीता तथा द्रौपदी के युग में कोई पर्दाप्रथा नहीं थी, गार्गी पर्दे के पीछे से अपना व्याख्यान नहीं दे सकती थी। वर्तमान में भी पर्दा प्रथा सम्पूर्ण भारत मैं प्रचलित नहीं है। दक्षिण भारत, गुजरात तथा पंजाब में इस प्रथा से लोग अपरिचित है। ऐसा नहीं है कि दुनिया में जहाँ कहीं है वही नैतिकता में कमी आयी हो। पवित्रता या सदाचार शीशे के मकान में विकसित नही होता ना ही पर्दा की चाहरदीवारी के माध्यम से इसकी रक्षा की जा सकती है। सदाचार अन्तरात्मा से विकसित होना चाहिए तथा उसमें किसी भी प्रकार के आकर्षण या लालच से मुकाबला करने की सामर्थ्य होनी चाहिए और स्त्रियों की पवित्रता के लिए ही यह सब दूषित व्यग्रता क्यों है ' क्या औरत ने पुरूषों की पवित्रता के विषय में कभी कुछ कहा है' हम उनके मुहँ से ऐसा कुछ नहीं सुनते। पवित्रता किसी के ऊपर, बाहर से थोपी नहीं जा सकती। यह आंतरिक उन्नति से सम्बद्ध होने के कारण स्वयं के प्रयासों से ही विकसित हो सकता ह।

स्पष्ट है कि गाँधी ने न केवल स्त्रियों को दबाने वाली प्रथाओं का विरोध किया अपितु उन्हें पुरूष के समान स्थिति न दिये जाने के कारण भी पूछे। वे यह नहीं चाहते थे कि पुरूष औसतन कम सदाचारी और पवित्र है इसलिए औरतों को भी अपने सदाचार का त्याग कर पुरूष के समकक्ष खडे होना चाहिए बल्कि उन्होंने सीधे पुरूषों से यह प्रश्न किया कि जो स्वयं पवित्र ना हो उसे स्त्रियों की पवित्रता पर उँगली उठाने या तहकीकात करने का क्या अधिकार है?

देशवासी के रूप में किये जाने वाले स्त्री के प्रति अमानवीय व्यवहार का भी गाँधी ने विरोध किया तथा इसे मानवता व ईश्वर के प्रति अपराध माना। जब उन्हें देवदासी का वास्तविक अर्थ समझ में आया तो नाबालिग लड़कियों को इस अनैतिक उद्देश्य के लिए समर्पित करने की प्रथा के विरूद्ध उनकी सम्पूर्ण आत्मा विद्रोह कर उठी और उन्होंने कहा कि इन्हें हम देवदासी कह कर धर्म के नाम पर ईश्वर की तौहीन करते हैं तथा एक ओर अपनी वासना पूर्ति के लिए इन बहनों का प्रयोग करते हैं दूसरी ओर, उसी साँस में हम ईश्वर का नाम (देवदासी) लेकर दोहरा अपराध करते हैं। यदि हिन्दुधर्म को जीवित रहना है तो व्यवभिचार को स्थायित्व

देने वाली अस्पृश्यता तथा देवदासी प्रथा को समाप्त करना होगा। इसके लिए सुधाराकों को धैर्यपूर्वक तथा अनवरत रूप से तरफा काम करने होंगे-

देवदासियों का वासनापूर्ति के रूप में उपयोग करने वालों के मध्य सुधार कार्य देवदासी समुदाय के मध्य काम क्योंकि यदि यह वर्ग व्यभिचार का पात्र बनना अस्वीकार कर देगा तो प्रथा स्वत: एक बारगी समाप्त हो जायेगी। लेकिन भूखा व्यक्ति पाप नहीं जानता अत: देवदासियों के लिए आजीविका का कोई अन्य साधन भी खोजना होगा।

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत अथवा अस्पृश्यता निवारण के लिए गाँधी ने अन्तर्जातीय विवाह को अस्वीकार कर दिया लेकिन स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु उन्होंने दो परिस्थितियों में स्वयं ही अन्तर्जातीय विवाह का प्रस्ताव किया है।

बाल विवाह की समाप्ति के लिए तथा दहेज प्रथा की समाप्ति के लिए। उनका मानना था कि दहेज प्रथा जाति व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई है अत: इस व्यवस्था को समाप्त करने के लिए युवतियों तथा उनके माता-पिता को जातिगत बन्धन तोड़ने होंगे। यदि योग्य वर न मिले तो लड़कियों को कुँवारी रहने का साहस करना होगा।

विवाह की आयु बढ़ानी होगी तथा उपर्युक्त कदम उठाने के लिए ऐसे व्यक्तित्व को शिक्षित करना जो इस हेतु देश के युवकों के मानस को उद्वेलित कर सकें।

स्त्री शिक्षा को गाँधी ने समर्थन किया लेकिन वे लड़कियों को व्यावसायिक शिक्षा देने के पक्षधर नहीं थे। उनका मानना था कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय कि वह घर तथा बच्चों का पालन पोषण सुसंस्कृत ढंग से कर सके। लेकिन वे तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था को जीवन तथा व्यवहारिकता से असम्बद्ध मानते थे। युवा-युवतियों के महाविद्यालयों की शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद को मुख्य तथा करीब से प्रभावित करने वाली कुरीतियों का विरोध करने के इच्छुक और योग्य न होने से वे असन्तुष्ट थे। उनका कहना था कि यदि शिक्षित लड़कियाँ आत्महत्या करती है तो ऐसी शिक्षा का क्या महत्त्व है?

गाँधी के महिलाओं की स्थिति में सुधार सम्बन्धी विचारों के अध्ययन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग यह है कि गाँधी ने स्त्री-स्वभाव और मनोवृति को अपने सत्य और अहिंसा सम्बन्धी सिद्धान्तों के सर्वाधिक अनुकूल पाया। उनके अनुसार, स्त्री अहिंसा का मूर्तरूप हैं। अहिंसा का अर्थ है- अपार स्नेह और जिसका पुन: अर्थ है- दुख सहन करने की अपार क्षमता। पुरूष की जननी, स्त्री के अतिरिक्त यह क्षमता और किसमें बो सकती हैं? वह नौ महिने तक बच्चों को अपनी कोख में रखकर और उसके बाद इससे सम्बद्ध पीड़ा उठाने में आनन्द प्राप्त करती है, ऐसी प्रसव पीड़ा की वेदना को कौन पराजित कर सकता है-इस स्नेह को सम्पूर्ण मानवता के रूपान्तरित करके उसे (नारी) यह भूल जाने दो कि वह कभी पुरूष की वासना का साधन रही थी या हो सकती है।

सत्य, अहिंसा की प्रवृत्ति व प्रकृति के कारण ही गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्त्रियों को आह्वान किया जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों ने घर की चाहरदीवारी के सदियों पुराने बन्धन तोड़ कर सत्याग्रह व सविनय अवज्ञा के कार्यक्रमों में भाग लिया और स्वतंत्रता आन्दोलन को समस्त भारतीयों का आन्दोलन बना दिया।

7.4 सारांश

इस प्रकार जीवन के सभी पक्षों की अद्य सम्बद्धता की धारणा में विश्वास के आधार पर गाँधी चिन्तन में ' 'सामाजिक न्याय ' की अवधारणा, व्यक्ति तथा समाज के समस्त पक्षों - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक आदि में परिशोधन की अपेक्षा पर आधारित है। सामाजिक समानता की स्थापना में बाधक ऐसी सभी मान्यताओं, परम्पराओं, प्रथाओं और विश्वासों की उन्होंने तार्किक आलोचना की जो व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य संचालित सम्बन्धों में असमानता और शोषण का पोषण करती हो। समाज सुधार द्वारा " 'सामाजिक न्याय' ' के लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र प्रभावी साधन व्यक्ति के हृदय परिवर्तन द्वारा सामाजिक समानता पर आधारित आचरण को स्वत: आत्मसात् और अंगीकार करने की सीमा तक परिशोधन व्यक्ति की आत्मस्वीकृति पर निर्भर है। यही कारण है कि समाज-परिवर्तन के लिए उन्होंने राज्य की कानूनी शक्ति को निष्प्रभावी कह कर अस्वीकार कर दिया है। किन्तु, वर्ग विहीन समाज की स्थापना की सीमा तक व्यक्ति के परिष्कार की आदर्शोन्मुख विचारधारा अव्यावहारिक है। सम्पूर्ण विचारधारा की आधारशिला के रूप में ' 'अहिंसा' ' के सिद्धान्त को आत्मसात् करने का ही परिणाम था कि समाज परिवर्तन के लिए गाँधी द्वारा स्वीकृत एकमात्र विकल्प हृदय परिवर्तन रह गया। जीवन के अंतिम लक्ष्य की आध्यात्मिकता से सम्बद्धता के कारण गाँधी चिन्तन में नैतिकता, पवित्रता, सादगी आदि जीवन मूल्यों को प्रदत्त प्राथमिकता ने विस्तृत औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण को भी अस्वीकार कर दिया। यद्यपि वर्तमान उपभोक्तावादी प्रवृत्ति और संस्कृति में निरन्तर परिवर्द्धन व्यक्ति और आत्मसुधार के औचित्य हेतु कृत संकल्प होना सहज नहीं, किन्तु उपर्युक्त समस्या गाँधी के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के औचित्य को संदिग्ध नहीं बनाती, अपितु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गाँधी द्वारा ' 'अहिंसा' ' को अनिवार्य साधन के रूप में अंगीकार करने के कारण हृदय-परिवर्तन का ही मार्ग और विकल्प शेष रहता है।

7.5 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी के न्याय संबंधी विचारों को समझाइये।
2. गाँधीजी के सामाजिक न्याय संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में न्याय की स्थापना गाँधीजी के अनुसार कैसे हो सकती है।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन: दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राघवन: द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

4. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिषिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
5. वर्मा, वी. पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज्य लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
6. वर्मा, वी. पी., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1966
7. शंकधीर, एमएम., अण्डरस्टेंडिन्ग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996

इकाई - 8

गाँधी एवं नारी विमर्श

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 लिंग भेद परिभाषा

8.3 विश्व परिदृश्य और महिला

- 8.3.1 महिला सशक्तिकरण के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास
- 8.3.2 विश्व में महिला मानवाधिकार
- 8.3.3 संयुक्त राष्ट्र संघ अधिसमय, 1979
- 8.3.4 महिलाओं के अधिकार सम्बंधी अन्य सम्मेलन

8.4 भारत में स्त्री-मध्यकाल की परिस्थितियाँ

- 8.4.1 सती प्रथा
- 8.4.2 जौहर
- 8.4.3 बाल विवाह
- 8.4.4 विधवा विवाह पर पाबंदी
- 8.4.5 पर्दा प्रथा
- 8.4.6 स्त्री शिक्षा पर पाबंदी
- 8.4.7 दया देवदासी

8.5 आधुनिक काल और महिला

- 8.5.1 आधुनिक भारतीय महिलाऐं तथा उनसे जुड़ी समस्याएँ
  - 8.5.1.1 कुपोषण
  - 8.5.1.2 खराब स्वास्थ्य
  - 8.5.1.3 शिक्षा की कमी
  - 8.5.1.4 हिंसा
  - 8.5.1.5 दहेज प्रथा
  - 8.5.1.6 कन्या भ्रूण हत्या
  - 8.5.1.7 महिलाओं से सम्बद्ध आकड़े
  - 8.5.1.8 अनुच्छेद तथा कानून

8.6 महिलाओं के सम्बंध में महात्मा गाँधी के विचार तथा दर्शन

- 8.6.1 गाँधी जी और परिवार
- 8.6.2 विवाह सम्बंधी विचार

8.6.3 महिलाओं का सामाजिक स्तर
8.6.4 देवदासी प्रथा और गाँधी
8.6.5 गांधीजी की महिलाओं को सलाह
8.7 सारांश
8.8 अभ्यास प्रश्न
8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी :-

- लंग भेद के विश्वव्यापी रूप की सत्यता परख सकेंगे।
- महिलाओं से सम्बंधित विश्व तथा भारत में बने कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय समाज में महिलाओं से जुडी समस्याओं को जान सकेंगे।
- महिलाओं के सम्बंध में गाँधी के दर्शन तथा विचारों को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

लिंग भेद भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित एक अन्यायपूर्ण सामाजिक कुप्रथा है। महिलाओं की स्थिति के संदर्भ में कई वर्षो से लिंग भेद को समझने का प्रयास किया जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व तथा भारत में संविधान के समक्ष महिलाओं को समानता दी गई है तथा कानून द्वारा समानता के इस अधिकार को सुरक्षित रखने का प्रयास भी किया जा रहा है। आज विश्वभर में लिगींय समानता के मुद्दे पर न सिर्फ चर्चा की जा रही है वरन् इन चर्चाओं को कार्यरूप में बदल कर महिलाओं के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। देश के कानून के साथ-साथ समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञ और स्वयं महिलाओं की जागरूकता इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। अनेक आन्दोलनों तथा सम्मेलनों के माध्यम से लिंग भेद को मिटाने की मुहिम छिड़ी हुई है। भारत में भी औपनिवेशिक समय से ही महिलाओं के प्रति विभेद को खत्म करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सम्बंध में राष्ट्रनायकों राजाराम मोहनराय ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिराव फूले, स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गाँधी के प्रयास विशेष सार्थक रहे है। तथा उनके योगदान के फलस्वरूप भारत में महिलाओं की स्थिति में निरन्तर सुधार हुआ है। वर्तमान में कई संस्थाएं भी इस प्रकार के कार्यो से जुडी हुई है।

8.2 लिंग - भेद : परिभाषा

जेण्डर (gender) या लिंग का प्राणीशास्त्रीय शाब्दिक प्रयोग प्रथम बार 1955 में जॉन मनी द्वारा किया गया था। समयान्तर से यह शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा। स्त्री तथा पुरूष की शारीरिक भिन्नता से सम्बंधित यह व्याख्या कालान्तर में लिंग भेद के विभत्स रूप में परिवर्तित हो गई। स्त्री तथा पुरूष के अस्तित्व का विभेद उसके शारीरिक रूप से कम तथा अधिक सक्षम होने से किया जाने लगा। जो वर्ग (पुरूष) शारिक रूप से अधिक सक्षम था उसने अनाधिकृत रूप से अधिकारों का हरण कर लिया तथा दूसरे पक्ष (स्त्री) को ना सिर्फ अधिकारों से वंचित कर दिया गया बल्कि लिंग भेद के नाम पर उस पर अनेकानेक वर्जनाएं भी

लगा दी गई। अधिकार विहीन उत्तरदायित्व तथा वर्जनाओं की यह परिपाटी जब ओर अधिक आगे बढ़ी तो प्रताड़नाओं तथा अत्याचारों का दौर प्रारम्भ हो गया।

8.3 विश्व परिदृश्य और महिला

आधुनिकता की ओर बढ़ते विश्व के प्रत्येक हिस्से में लिंग भेद की घटनाएँ जा सकती है। इस विभेद का क्षेत्र इतना व्यापक है कि स्त्रियों के सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक और शैक्षणिक सभी पक्षों पर आघात होने लगा है। लिंग भेद का सबसे घिनौना रूप मानवीयता का लोप हो जाना है। स्त्री को शक्तिहीन समझकर उस पर अत्याचार करने में हम सम्भवत: उसके मानव होने के सत्य को विस्मृत कर देते है। ईश्वर द्वारा रचित मनुष्य की संरचना में से हम स्त्री को पूरी तरह अलग-थलग कर देते है।

किन्तु लिंग भेद के विश्वव्यापी रूप में जितनी समस्याएं निहित है उतने ही भी प्रस्तुत है। इस समस्या के समाधान हेतु सम्पूर्ण विश्व प्रयासरत है। राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री तथा मानवाधिकार कार्यकर्त्ता विस्तृत स्तर पर महिला विभेद या लिंग भेद से जुड़े मुद्दों पर कार्य कर रहे है। महिलाओं से जुड़ी इस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उठाया जा रहा है। महिलाओं को शिक्षा से जोड़कर आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के प्रयत्न किये जा रहे है। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़कर उनकी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप में, स्वयं महिलाओं में लिंग भेद के प्रति जागरूकता लाने ' प्रयास किया जा रहा है।

8.3.1 महिला सशक्तिकरण के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

यद्यपि विश्व के किसी भी कानून द्वारा महिलाओं को असमान नहीं माना है तथापि महिलाओं की सामाजिक समानता को सुरक्षित रखने के लिए (वीमेन इन डिवलपमेंट) की प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष महिलाओं की समस्याओं की दुनिया का ध्यान आकर्षित करने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया। इस विशेष वर्ष में लिंगीय समानता के लिये कार्य करने पर जोर दिया गया ताकि स्त्री व पुरूषों समान अधिकार और समान अवसर प्राप्त हो सकें। इस दौरान संयुक्त राष्ट्र महासंघ ने महिलाओं व पुरूषों के समता स्थापित करने के लिये प्रयास किए।

अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष से सम्बंधित संकल्प 18 दिसम्बर, 1972 को किया गया था। इस संकल्प में' कहा गया था कि सभी सदस्य देश तथा संगठनों को महिलाओं के विरूद्ध की समाप्ति पर घोषणा के आधार पर महिलाओं के अधिकारों के पूर्ण तथा उनके विकास को सुनिश्चित करने लिए कदम उठाएंगे। इसमें कहा गया था कि सम्पूर्ण विकास प्रयासों में महिलाओं को पूर्ण निष्ठा विशेषकर संयुक्त राष्ट्र विकास दशक के दौरान विशेष तौर पर राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अवसरों पर आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में महिला के दायित्व एवं महत्वपूर्ण भूमिका पर विशेष जोर सुनिश्चित किया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में एक विश्व महिला सम्मेलन 19 जून-2जुलाई, 1975

को मैस्को नगर में आयोजित किया गया था। सम्मेलन के अंत में एक घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसे आज हम मैक्सिको घोषणा के नाम से जानते है।

15 दिसम्बर, सन् 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने निर्णय लिया की सन् 19776 से 1985 की कालावधि को महिला-दशक के रूप में मनाया जाए। इसे 'समता, विकास एवं शान्ति' के लिए महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्र दशक के रूप में मनाया गया था। इसके बाद समता, विकास एवं शान्ति के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ दशक का विश्व सम्मेलन सन् 1980 में कोपेनहेगन में आयोजित किया गया था। महिलाओं के लिए कामयाबी का पुनरावलोकन एवं मूल्यांकन करने के लिए विश्व सम्मेलन सन् 1985 में नैरोबी में आयोजित किया गया था। महिलाओं के विकास के लिए नैरोबी में अभिस्वीकृत की गयी कार्यसूची यद्यपि महत्वाकांक्षी थी लेकिन यह यथार्थवादी नहीं थी। सन् 1989 में चौथा विश्व महिला सम्मेलन बीजिंग (चीन में सम्पन्न हुआ)। इस सम्मेलन की कार्यसूची में, वर्ष 2000 की महिलाओं के विकास के लिए आगे की दिशा में देखने वाली नैरोबी रणनीतियों का क्रियान्वयन भी सम्मिलित था। इस प्रकार स्पष्ट है कि महिलाओं के समग्र विकास और लिंगी समानता के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी प्रयास किए गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन 2002 की घोषणा में जिन आठ उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया, उनमें लिंग समानता तथा महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य भी प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया तथा 2015 तक शैक्षिक विभेद को मिटाने का संकल्प लिया गया।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य तथा कृषि संस्थान में सन् 2009 में साधन, ससांधन तथा सेवाओं के विशेष संदर्भ में ग्रामीण क्षेत्रों में से लिंग भेद मिटाने तथा समानता लाने के लिये कई कार्यक्रमों को अपने हाथ में लिया और उसका कार्य निरन्तर जारी है।

संयुक्त राष्ट्र (UN) द्वारा लिंग भेद को दर्शाने के लिये एक सूची GDI (gender related development index) भी जारी की गई जिसमें लिंग भेद के क्षेत्रों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया। इस सूची में शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन जीने के मानकों पर किए जा रहे भेद को विशेष रूप से इंगित किया गया है।

UNDP (यूनाईटेड नेशन्स डिवलपमेंट प्रोग्राम) द्वारा लिंग भेद पर कार्य करने हेतु कई कार्यक्रम तथा सूचियां तैयार की गई।

जैसे

- HDI (ह्यूमन डिवलपमेंट इन्डेक्स)
- GDI (जेण्डर रिलेटेड डिवलपमेंट इण्डेक्स)
- GEM (जेण्डर एमपॉवरमेंट मेशर)
- GII (जेण्डर इनइक्वलिटी इन्डेक्स) सन् 2010

8.3.2 विश्व में महिला मानवाधिकार

यह एक प्रमाणित तथ्य है कि दुनिया में सबसे अधिक अपराध तथा अत्याचार महिलाओं के खिलाफ ही होते है। चाहे घर या बाहर, स्कूल हो या कार्यस्थल महिलाओं को हर

जगह विभिन्न प्रकार के अपराधों का सामना करना पड़ रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिये विश्व के लगभग सभी देशों ने महिलाओं को विशेष अधिकार प्रदान किए हैं ताकि वे सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी समय-समय पर प्रयास किये है। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों से सम्बंधित चार्टर की प्रस्तावना में भी महिलाओं और पुरूषों के लिए समान -अधिकारों की वकालत की गई है। इसमें कहा गया है कि ' 'हम संयुक्त राष्ट्रों के लोग..... मूलभूत मानवाधिकारों में, मानव व्यक्ति की गरिमा व मूल्य में तथा पुरूष व स्त्री के समान अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं..... ।"

8.3.3 संयुक्त राष्ट्र संघ अभिसमय, 1979

महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के विभेदों की समाप्ति सम्बंधी अभिसमय की घोषणा सन् 1979 में की गई थी और 3 सितम्बर, 1981 से यह अभिसमय विश्व भर में लाग हो गया। इस अधिकार पत्र में पुरूषों और महिलाओं के समान अधिकारों में आस्था को गम्भीरतापूर्वक दोहराया गया तथा कहा गया कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र तथा समान अधिकारों के हकदार है और लिंग सम्बंधी विभेद सहित हर प्रकार के विभेद के बिना संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में उल्लेखित अधिकारों के हकदार है। विश्व कल्याण तथा शान्ति के लिये समाज मे महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों ने इस अभिसमय पर हस्ताक्षर किए। इस अधिसमय के प्रावधान 01 से लेकर 16 तक सभी में स्त्रियों के अधिकारों, उनके कानूनी पक्ष, विरूद्ध हो रहे अत्याचारों, उनकी शिक्षा, समानता, आर्थिक स्वावलम्बन, स्वास्थ्य, रक्षा सुविधाओं आदि को सम्मिलित किया गया।

8.3.4 महिलाओं के अधिकार सम्बंधी अन्य सम्मेलन

इस सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र के अलावा अन्य अनेक सम्मेलन तथा दस्तावेजों द्वारा भी लिंगीय समानता की बात कही गई है जो निम्नलिखित है :-

- महिलाओं के राजनैतिक अधिकार सम्बंधी कन्वेंशन।
- विवाहिताओं की राष्ट्रीयता पर कन्वेंशन।
- महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव के सभी प्रारूपों पर कन्वेंशन।
- दासता उन्मूलन पर अन्तर्राष्ट्रीय पूरक कन्वेंशन।
- वैवाहिक रजिस्ट्रीकरण पर अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन।
- विवाह की न्यूनतम आयु पर सहमति पर कन्वेंशन।
- शरीर के दुर्व्यापार पर कन्वेंशन।
- वेश्यावष्टि में शोषण पर अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन।
- भूमिगत विश्व महिला कन्वेंशन।
- समान पारिश्रमिक कन्वेंशन।
- भेदभाव (रोजगार तथा अधिभोग) कन्वेंशन।
- पारिवारिक दायित्व पर अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन।

- कार्य करने का अधिकार (महिला) कन्वेंशन।

<u>अन्य महत्वपूर्ण प्रयास</u>

- अन्तर्राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना।
- महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव उन्मूलन समिति।
- सन् 1975 अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित।
- 7 दिसम्बर, 1967 का महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव समाप्ति का घोषणा-पत्र।
- संयुक्त राष्ट्र महिला विधि निधि (यूनीफेम) की स्थापना, 1985
- 1976 से 1985 को महिला दशक के रूप में मनाने की घोषणा।

8.4 भारत में स्त्री-मध्यकाल की परिस्थितियाँ

भारतीय इतिहास महिलाओं की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में 'अंधकारमय युग' माना जाता है। विदेशी आक्रान्ताओं के भारत में आने से महिलाओं की स्वतंत्रता में और अधिक कमी आयी। उन्हें पुत्री तथा पत्नी के रूप में व्यक्तिगत सम्पत्ति माना जाने लगा। स्त्रियों की स्थिति में गिरावट का एक कारण यह भी था कि भारतीय समाज अपनी महिलाओं को विदेशी आक्रान्ताओं से सुरक्षित रखना चाहता था। आततायियों के प्रभाव से महिलाओं को मुक्त रखने के प्रयासों में महिलाओं पर अनेक प्रकार के नियंत्रण रखने प्रारम्भ हुए जो कालान्तर में कुप्रभाओं के रूप में सामने आने लगे। उन्हें पर्दे में रखा जाने लगा। स्वतंत्रतापूर्वक कहीं भी आने-जाने की उनकी छूट को पाबंद कर दिया गया। उन्हें बोझ समझा जाने लगो, अत: उनके जन्म को भी अशुभ माना जाने लगा। पुत्र को जहां आर्थिक सम्बल माना गया, वहीं स्त्रियों की सुरक्षा से जुड़े प्रश्नों और उनसे जुडी तथाकथित समस्याओं के कारण उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया। स्त्रियों की समस्याओं का एक ऐसा दुष्चक्र प्रारम्भ--हुआ जिसने महिलाओं से सम्बंधित कुछ और बुराइयों को उत्पन्न कर दिया।

8.4.1 सती प्रथा

पति की मृत्यु के पश्चात् महिला के उसी चिता पर जल जाने को सती अथवा सहगमन ' कहा जाता है। ऐसा माना जाता था कि पति के साथ सती हो जाने वाली स्त्री को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। सतीत्व की रक्षा के लिए विधवा के रूप में जीवन यापन करने की अपेक्षा सती हो जाना मध्यकाल में श्रेयस्कर माना जाने लगा था। यद्यपि अपने प्रारम्भिक स्वरूप में सभी महिलाओं के लिए यह अनिवार्य रीति नहीं थी तथापि हिन्दू समाज में सती होने वाली स्त्री के प्रति अत्यधिक सम्मान दर्शाया जाता था।

8.4.2 जौहर

जौहर की प्रथा विशेष रूप से राजपूत समाज में प्रचलित थी। राजपूत स्त्रियों को जब यह ज्ञात हो जाता था कि उनके पति युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए है तो अपने स्वत्व की रक्षा हेतु वे स्वयं को सामुहिक रूप से अग्नि को समर्पित कर दिया करती थी। जौहर सती का ही दूसरा रूप था जिसमें स्त्रियाँ समूह में जल जाया करती थी।

8.4.3 बाल विवाह

मध्यकाल में स्त्रियों की सुरक्षा को लेकर समस्याएं जितनी बढ़ती गई उतनी ही समस्याएं स्वयं स्त्रियों के लिये भी उपस्थित होती गई। इन्ही में से एक थी बाल विवाह। 8 से 10 वर्ष की उम्र की बालिकाओं का विवाह करके भारतीय समाज बालिकाओं के प्रति अपने कर्त्तव्यों से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था। बाल विवाह के दुष्परिणाम अत्यधिक घातक सिद्ध हुए। बालिकाओं की शिक्षा का मार्ग अवरूद्ध हो गया। उनके लिये विकास की सम्भावनाएँ क्षीण हो गई। कम उम्र में विवाह ने उनके स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया।

8.4.4 विधवा विवाह पर पाबंदी

मध्यकालीन भारतीय हिन्दू समाज में विधवा महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। बाल विवाह का एक दुष्परिणाम विधवाओं की संख्या में अभिवृद्धि भी था। विधवाओं को अत्यन्त कष्टकर जीवन जीने को विवश किया जाता था। वे किसी भी समारोह में भाग नहीं ले सकती थी। कई बार दुःख के प्रतीक के रूप में सिर का मुंडन भी करवाना पडता था। किसी भी शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी। पति की मूल्य के बाद उनको पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। विधवाओं के लिए कष्टकर जीवन की परिपाटी ' भी सती प्रथा को बढ़ावा दिया।

8.4.5 पर्दा प्रथा

विदेशी आक्रान्ताओं से सुरक्षित रखने के क्रम में मध्यकालीन महिलाओं पर एक और कुप्रथा का बोझ डाल दिया गया। यह थी पर्दा प्रथा। स्त्रियों को हर समय पदों से अपने चेहरे को ढ़क्कर रहना पड़ता था। इस प्रथा ने भी स्त्रियों को स्वतंत्रता से वंचित कर दिया।

8.4.6 स्त्री शिक्षा पर पाबंदी

स्त्रियों की शिक्षा सम्बंधी अधिकारों के सम्बंध में भी मध्यकाल अंधकारमय युग ही प्रतीत होता है। स्त्रियों के लिए औपचारिक शिक्षा का मार्ग बंद कर दिया गया था। उन्हें गृहकार्यों से सम्बद्ध शिक्षा को प्राप्त करने तक ही सीमित कर दिया गया था। यद्यपि हिन्दू समाज के बजाय जैन, बौद्ध तथा ईसाई ' में महिलाओं की शिक्षा की स्थितियां कुछ हद तक ठीक थी। इसी प्रकार उत्तर भारत के विपरीत दक्षिणी महिलाओं को शिक्षा के अधिकार कुछ अधिक मात्रा में प्राप्त थे। तथापि बाल विवाह के बढ़ते स्वरूप के कारण ' की शिक्षा में हर जगह गिरावट देखी जा सकती थी।

8.4.7 देवदासी

देवदासी प्रथा मुख्यत: दक्षिण भारत में प्रचलित थी। इस कुप्रथा में कन्याओं ईश्वर की अराधना और सेवा के कार्य के लिए मन्दिरों में रखा जाता था जहां गाने और नाचने की क्रियाओं वे ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास करती थी। कालान्तर में कुछ देवदासियों को राजा और के मनोरंजन करने हेतु राजदरबारों में भी बुलाया जाने लगा। ऐसी देवदासियां राजदासी

कहलाती थी। काल में देवदासी प्रथा को रोकने के लिए सामाजिक सुधारों को प्रारम्भ किया गया था।

8.5 आधुनिक काल और महिला

यद्यपि लिंगीय विभेद पूरे विश्व की समस्या है, तथापि पितष्सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के कारण भारत इस विकार से कुछ ज्यादा ग्रसित है। भारतीय संविधान स्त्री पुरूष में किसी प्रकार का विभेद नहीं करता और ना ही इनके लिए अधिकारों की अलग-अलग व्याख्या करता है किन्तु भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति सदैव से ही दोयम दर्जे की रही है। समयान्तर से महिलाओं की स्थितियों में सुधार अवश्य हुआ है किन्तु जैसे-जैसे समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है महिलाओं से सम्बंधित नित नयी समस्याओं का क्रम भी विकसित हुआ है। मध्यकालीन भारतीय महिला जिन कुप्रथाओं से ग्रसित थी, उनमें से अधिकांश आज भी जस की तस बनी हुई है। एक तरफ जहां स्त्री सफलता की सीढ़िया चढ़ रही है, वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों के प्रति हिंसा के मामलों में भी वृद्धि हुई है। मनुष्य के विकासशील मस्तिष्क में नकारात्मक सोच भी उतनी ही तीव्र गति से पनप रही है जितनी सुधार की सम्भावनाएं। आधुनिक समय की स्त्री ने विकास का एक लम्बा मार्ग तय किया है किन्तु विकास की अनेक सीढ़िया चढ़ना अभी बाकी भी है। महिलाओं ने घर से बाहर निकलकर जीवन के नये अनुभव सीखे है, वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी भी हुई है लेकिन 2011 की जनगणना के स्त्री-पुरूष आकड़ों (महिलाएं-917 पुरूष- 1000) पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज अभी भी कन्या जन्म को वरदान नहीं अभिशाप मानता है। प्रत्येक 1000 पुरूष पर 917 स्त्रियों का भारतीय आकड़ा प्रत्येक 1000 पुरूष पर 990 स्त्रियों के विश्व आकड़े से काफी पिछड़ा हुआ है। इस दिशा में अभी और प्रयास करने की आवश्यकता है।

8.5.1 आधुनिक भारतीय महिलाएँ और उनसे जुड़ी समस्याएँ

लिंगीय विभेद के दुष्परिणामों के रूप में आधुनिक भारतीय महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये समस्याएं अनगिनत तो नहीं कही जा सकती लेकिन समस्याओं के प्रभाव अवश्य ही अनगिनत तथा विकराल है। इन समस्याओं का हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते है -

8.5.1.1 कुपोषण

कुपोषण भारतीय महिलाओं से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण समस्या है। भारत के कई हिस्सों विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं के पोषण की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है। गरीबी के शिकार परिवारों में यदि भोजन की व्यवस्था होती भी है तो महिलाओं का उस भोजन का ग्रहण करने का अधिकार परिवार में सबसे अन्तिम होता है। कम तथा कुपोषित भोजन की शिकार स्त्रियों का शारीरिक विकास इस कारण बहुत बुरी तरह से अवरूद्ध होता है। 1996 की यूनीसेफ की रिपोर्ट से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दक्षिणी एशिया की महिलाएं विश्व की अन्य महिलाओं की अपेक्षा कुपोषण से अधिक ग्रसित है।

8.5.1.2 खराब स्वास्थ्य

कुपोषण, रखरखाव की कमी, स्त्रियों सम्बंधी पूर्वाग्रह जैसे अनेक तथ्य है जो स्त्रियों के स्वास्थ्य में गिरावट के कारण है। कन्या को स्तनपान का पूरा अवसर न मिलना, सम्पूर्ण तथा पोषक भोजन प्राप्त न होना, परिवार द्वारा स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल न करना, चिकित्सकीय सुविधाओं का उपभोग न कर पाना आदि अनेक कारण है जिसकी वजह से भारतीय स्त्रियों के स्वास्थ्य में गिरावट दर्ज हो रही है।

8.5.1.3 शिक्षा की कमी

भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा कभी भी प्राथमिक मुद्दा नहीं रहा है। समाज द्वारा आधुनिकता के नवयुग में प्रवेश कर जाने के उपरान्त भी भारतीय स्त्रियों के लिए घरेलू जिम्मेदारियां महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस वजह से ग्रामीण क्षेत्र रमी शिक्षा में अभी भी बहुत पिछड़े हुए है। भारत में अभी भी स्त्री शिक्षा समय तथा धन की बर्बादी माना जाता है। हालांकि शहरी विकास की धारा में स्त्री शिक्षा गौण विषय नहीं है किन्तु विकास की चर्चा करते समय हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत की जनसंख्या का 80 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में ही निवास करता है।

8.5.1.4 हिंसा

भारतीय समाज विकास की नई दिशा में बढ़ रहा है। उसी समाज में महिलाओं के प्रति हिंसा के नित नए प्रतिमान बनाए जा रहे है। महिला हिंसा के मामले गाव तथा शहर दोनों जगहों पर समान रूप से देखे जा सकते है। महिलाओं के प्रति शारीरिक तथा मानसिक हिंसा के अनेक उदाहरण भारत में महिलाओं की स्थिति पर पुनर्विचार करने को बाध्य करते है। भारत में हर एक घण्टे में एक महिला बलात्कार की शिकार होती है, वहीं प्रत्येक 93 मिनट पर दहेज की मांग को लेकर एक महिला को जला दिया जाता है। यद्यपि महिलाओं की सुरक्षा को लेकर भारत में अनेक कानून बनाए गए है तथापि अपराधों को पूरी तरह रोकने में ये काह अक्षम दिखाई पड़ते है ।

8.5.1.5 दहेज प्रथा

प्राचीन समय में विवाह के पश्चात् कया को 'स्त्रीधन' दिया जाता है। यह 'स्त्रीधन' माता-पिता द्वारा अपनी पुत्री को दिया गया उपहार था जिसको वह स्वयं तथा अपनी संतान के लिये उपयोग में ले सकती थी। पति अथवा ससुराल के सदस्यों कां इस धन पर कोई अधिकार नहीं था। कालान्तर में 'स्त्रीधन' की यह परम्परा 'दहेज प्रथा' के रूप में परिवर्तित हो गई। वर्तमान में ससुराल वालों द्वारा विवाह से अवसर पर कन्या के माता-पिता द्वारा धन की मांग की जाने लगी है। अधिक धन लाने वाली स्त्री को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। दहेज की मांग को लेकर स्त्रियों के साथ अमानुषिक अत्याचार वर्तमान में अत्यन्त साधारण बात हो गई है। न्यायालयों में आने वाले मामलों में से बहुत बडी संख्या में मामले दहेज अत्याचार अथवा दहेज प्रथा से सम्बन्ध होते है।

8.5.1.6 कन्या भ्रूण हत्या

भारतीय समाज में महिलाओं को एक ओर जहां दैवीय रूप में मण्डित किया गया है, वहीं दूसरी ओर कन्या जन्म को अशुभ मानकर उसकी हत्या करने जैसे दुष्कर्म भी किए जाते रहे है। मध्यकाल में राजपूत समाज में कन्या को जन्म के तुरन्त बाद मार दिया जाता है। आज हम तकनीकी युग में प्रवेश कर चुके है। इस तकनीकी विकास का दुरूपयोग कन्या की हत्या के लिये भी किया जाने लगा है। जन्म से पूर्व ही, यदि भ्रूण कन्या है तो गर्भ में ही उसकी हत्या कर दी जाती है। पारिवारिक दबाव के चलते महिलाओं को अपने गर्भस्थ शिशु (कन्या) की 'हत्या जैसा पाप करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इस सम्बंध में अनेक कानून भी बनाए गए है। निश्चित रूप से कानून द्वारा इस अपराध को रोकने का प्रयत्न काफी हद तक कारगर हुआ है किन्तु अभी भी समाज की सोच कन्या जन्म के प्रति सकारात्मक नहीं है।

8.5.1.7 महिलाओं से सम्बन्ध आकड़े (प्रतिशत मे)

	भारत	विश्व
महिला शिक्षा	58	77.6
कन्याओं का विद्यालय में नामांकन	47	62
आर्थिक स्वावलम्बन	26	58
सरकार में महिलाएं	6	7
शिशु मृत्यु दर	73	60
(प्रत्येक 1000 जीवित पर)		
माता मृत्यु दर	570	430
(प्रत्येक 100000 जीवित पर)		
कम वजन वाले शिशुओं की जन्म दर	33	17

8.5.1.8 अनुच्छेद तथा कानून

उपर्युक्त आकड़े भारत में महिलाओं की स्थिति के यथार्थ का वर्णन प्रस्तुत करते है। किन्तु कानूनी रूप से महिलाओं को प्राप्त अधिकारों से अवश्य ही कुछ सुधार हुए है तथा भविष्य में भी उत्तरोत्तर सुधारों की अपेक्षा बनी हुई है। भारतीय संविधान विधि के समक्ष सभी को (स्त्री-पुरूष) समान मानता है। संविधान के निम्नांकित अनुच्छेदों में स्त्रियों के अधिकारों की सुरक्षा का प्रावधान है।

- 'अनुच्छेद 15' धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म के आधार पर विभेद का प्रतिषेध
- 'अनुच्छेद 16' लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता
- 'अनुच्छेद 23' मानव के दुर्व्यापार और बलातश्रम का प्रतिषेध
- 'अनुच्छेद 39' राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व
- 'अनुच्छेद 26' समान न्याय और निःशुल्क सहायता
- 'अनुच्छेद 42' काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता का उपबंध

<u>महिलाओं से संबन्धित कानून</u>

- भारतीय दण्ड संहिता, 1860
- दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961
- दण्ड प्रक्रिया, 1973
- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
- मुसलमान उत्तराधिकार सम्बंधी विधि
- हिन्दू विवाह अधिनियम,, 1956
- मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939
- हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956
- संरक्षकता तथा अभिरक्षा के मामले में मुस्लिम विधि
- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872
- बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929
- हिन्दू (विधवा पुनर्विवाह) अधिनियम, 1956
- सती अधिनियम, 1987
- सती निवारक (अधिनियम) एवं राजस्थान सती अधिनियम, 1987
- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
- गर्भावस्था समापन चिकित्सा अधिनियम, 1971
- चलचित्र अधिनियम, 1952
- स्त्री अशिष्ट (प्रतिबंध) अधिनियम, 1986
- विशेष विवाह अधिनियम, 1954
- कारखाना अधिनियम, 1948 (संशोधन-1976)
- अपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1986
- मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961

8.6 महिलाओं के सम्बंध में महात्मा गाँधी के विचार तथा दर्शन

19 वीं शताब्दी में भारत में सामाजिक सुधारों का दौर चल रहा था। महात्मा गाँधी ने भारतीय स्त्रियों के इसे सुधारवादी आन्दोलन को एक नयी दिशा प्रदान की। गाँधी जी मानते थे कि गृहस्थी की जिम्मेदारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है किन्तु राष्ट्र के लिये महिलाओं के उत्तरदायित्वों तथा उनकी सहभागिता को नकारा नहीं जा सकता। गाँधी ने स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

महात्मा गाँधी जब भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े उस समय महिला शिक्षा का भारतीय प्रतिशत मात्र 2 प्रतिशत था। भारतीय महिलाओं को घर रवे बाहर निकालकर देश की मुख्य धारा से जोड़ना अत्यन्त कठिन कार्य था किन्तु गाँधी जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाओं में चेतना जागृत हुई। सरोजिनी नायडु, विजयलक्ष्मी पंडित अरूणा आसफ अली, सुचेता कष्पलानी तथा राजकुमारी अमष्त कौर जैसी अनेक महिलाएं आगे आयी और लिंगीय समानता

का संदेश जन-जन तक पहुंचाया। गाँधी जी ने अपने प्रयत्नों से भारत की जनता को यह समझाने का प्रयास किया कि बालिकाएं किसी भी रूप में लड़कों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होनें बाल विवाह का जबरदस्त विरोध किया और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। बालिकाओं के सम्बंध में उनकी विचारधारा थी कि वे समस्त कार्यो को सम्पादित करने में सक्षम है। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि उन्हें अवसर प्रदान किए जाए। गाँधी जी के प्रयासों से ही भारतीय महिलाओं को मताधिकार की प्राप्ति स्वाधीनता के साथ ही हो गई थी जबकि इंग्लैण्ड तथा अमेरिका जैसे विकसित देशों में महिलाओं को मत देने का अधिकार काफी बाद में मिला वह भी विरोध के बाद।

एक सुधारक के रूप में महात्मा गाँधी समाज में व्याप्त प्रत्येक प्रकार के अन्याय के विरूद्ध थे। समाज के प्राकृति निम्न वर्ग तथा महिलाओं के प्रति सामाजिक अन्याय गाँधी के लिए एक प्रकार की हिंसा था। गाँधी जी की परिकल्पना वाला भारत एक ऐसा देश था जिसमें सभी व्यक्ति प्रेम तथा सौहार्द की भावना से रहे। समाज के प्रत्येक वर्ग महिला-पुरूष, उच्च-निम्न, शिक्षित-अशिक्षित सभी को जीवन जीने के समान अवसर प्राप्त हो। समाज के कमजोर तथा प्रतिशत वर्ग के प्रति महात्मा गाँधी का विशेष लगाव था। जीवन पर्यन्त वे उन्हीं के अधिकारों की मांग को लेकर आन्दोलन करते रहे। अन्याय के विरूद्ध प्रेरणा बनकर महात्मा गाँधी सदैव महिलाओं के पक्ष को समझने का प्रयास भी करते रहे तथा उनके अधिकारों के लिए कार्य भी करते रहे। महिलाओं के प्रति गाँधी जी के विचार और दर्शन को समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन करना आवश्यक है :

8.6.1 गाँधी जी और परिवार

महात्मा गाँधी के अनुसार परिवार एक 'ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट संस्थान' है, जो लौकिक तथा पवित्र है। पति और पत्नी के बीच का सम्बंध मित्रता होना चाहिए। गाँधीजी को यह देखकर दुःख होता था कि भारतीय समाज में यह सम्बंध नौकर और मालिक सदाशय दिखाई पडता है। पुत्र और पुत्री के बीच किए जाने वाले भेदभाव को भी गाँधी जी सही नहीं मानते थे।

8.6.2 विवाह संबंधी विचार

महात्मा गाँधी बाल विवाह के एकदम विरूद्ध थे। उनके अनुसार 12 या 13 साल की उम्र की लड़कियों की शादी करके उन पर घर की जिम्मेदारी का बोझ डालना न्यायसंगत नहीं है। हिन्दू समाज में धार्मिक प्रथाओं के नाम पर किया जाने वाला बाल विवाह लड़कियों के शारीरिक तथा मानसिक विकास को अवरूद्ध कर देता है। सन् 1929 में जब बाल विवाह निषेध बिल पारित किया गया, तो गाँधी जी ने अपना पूरा समर्थन प्रदर्शित किया। उन्होनें भारत के प्रत्येक युवा को 16 वर्ष की उस से कम की किसी भी कन्या से विवाह न करने की सलाह दी।

महात्मा गाँधी विवाह सम्मेलन में किये जाने वाले अनावश्यक खर्चे के भी विरूद्ध थे। उनका मानना था कि देश के आर्थिक संसाधनों का इस रूप में दुरूपयोग नहीं किया जाना चाहिए। उन्होने धनाढ्य व्यक्तियों से आग्रह किया कि वे शादी का खर्च मात्र 10 रूपये रखकर समाज के गरीब लोगों के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करें अस्पष्टता तथा उच्च-निम्न वर्ग भेद

को मिटाने के लिए गाँधी जी अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धर्मीय विवाहों को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते थे। समाज में जिन वर्गो को निम्न या अछूत माना जाता है, उनको समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में इस प्रकार के विवाह एक अच्छा उपक्रम हो सकते है।

गाँधी जी समाज में विधवाओं की स्थिति देखकर अत्यन्त क्षुब्ध होते थे। यदि कोई स्त्री स्वेच्छा से पुनर्विवाह नहीं करना चाहती है तो समाज तथा परिवार द्वारा उसके फैसले का सम्मान किया जाना चाहिए किन्तु समाज और धर्म के परम्परावादी फैसलों के मध्यनजर किसी भी स्त्री को पुनर्विवाह से रोकना गाँधी जी (के अनुसार उसके जीवन जीने के मूल अधिकारों का हनन है। बाल विवाह के दुष्परिणामों को विधवा विवाह के सुधारवादी कदम के रूप में अपनाया जाना चाहिये।

दहेज प्रथा महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार समाज के लिए अभिशाप है। गाँधी जी ने 'यंग इण्डिया' ' तथा 'हरिजन' में लिखा कि ' 'माता-पिता अपनी कन्याओं को इतना शिक्षित करें कि वे स्वयं ही दहेज की मांग करने वाले युवाओं से विवाह करने से मना कर दें। " और इस अभिशाप को समाज से जड़ से उखाड़ फेंके।

8.6.3 महिलाओं का सामाजिक स्तर

महिलाओं से सम्बंधित एक मुख्य समस्या जिस ओर गाँधी जी का विशेष ध्यान आकर्षित हुआ वह थी समाज में महिलाओं की स्थिति। गाँधी जी मानते थे कि स्त्री और पुरूष दोनों ही समान क्षमताओं के साथ जन्म लेते है अर्थात् दोनों में ईश्वरीय विभेद का कोई स्थान नहीं है। फिर महिलाओं को समाज में दोयम दर्ज का क्यों माना गया है। पुरूषों के एकमात्र स्वामित्व तथा सत्ता को गाँधी जी ने एक सिरे से नकारा। गाँधी जी कानून द्वारा महिलाओं को समानता का अधिकार दिये जाने के पक्ष में थे और इस विभेद को मिटाना चाहते थे। उनके अनुसार यदि अपने अधिकारों के प्रति महिलाएं स्वयं जागरूक हो जाए और अहिंसक तरीके से आन्दोलन चलाएं तो सामाजिक जागृत की सम्भावना अधिक है। फिर भी गाँधी जी कांग्रेस के मंच के माध्यम से भी महिलाओं के लिए समानता की मांग आवश्यक रूप से उठाते रहे।

महिलाओं के लिए प्रचलित पर्दे की प्रथा पर भी गाँधी जी का रोष था। वे मानते थे कि महिलाओं के स्वाभाविक विकास के लिए इस प्रकार की पाबन्दियां अनावश्यक है। समाज के किसी भी एक वर्ग को किसी दूसरे वर्ग के प्रति इस प्रकार की वर्जनाओं का अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

8.6.4 देवदासी प्रथा और गाँधी

भारतीय समाज में देव अराधना के नाम पर देवदासी प्रथा का प्रचलन रहा है ' कन्याओं को सेवा सुश्रुषा के लिए मन्दिरों में रखा जाता था। गाँधी जी कहते है कि जब वह एक देवदासी से मिले और उनसे बात की तो उनकी आत्मा चीत्कार उठी और लगा कि कन्याओं के साथ इस तरह अन्याय करके तो हम स्वयं देवताओं को भी अपमानित करते है। उन्होनें समाज के पुरूष वर्ग से अपील की कि इस प्रथा के विरूद्ध वे कोई ठोस कदम उठाएं।

8.6.5 गाँधी जी की महिलाओं को सलाह

जब किसी महिला को अन्याय अथवा अत्याचार का सामना करना पड़े, ऐसी स्थिति में एक सत्याग्रही का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए जैसे सवाल महात्मा गाँधी के सामने कई बार उपस्थित हुए। गाँधी जी मानते थे कि स्त्रियां शक्ति की परिपोषक है इसलिए पुरूषों की तुलना में निश्चिय ही अधिक धैर्यवान तथा अहिंसक प्रीति की होती है। हिंसा के प्रतिकार के रूप में समर्पण का गाँधी जी के दर्शन में कोई स्थान नहीं है। अपने नैतिक बल के साथ अत्याचारी का हर सम्भव प्रतिकार ही गाँधी जी के विचारों से एकमात्र उपाय है।

8.7 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त, स्त्री पुरूष विभेद को समाप्त करने के प्रयास निरन्तर जारी है। प्राचीन समय से ही आशिक या अधिक रूप में यह विभेद किसी न किसी रूप में कायम रहा है। समयान्तर से रची-पुरूष समानता का विषय और अधिक चर्चा का विषय बन गया क्योंकि तकनीकी विकास तथा आधुनिकता ने विकास के साथ-साथ समस्याओं को भी प्रस्तुत किया और पितृसत्तात्मक समाज की कुंठित मानसिकता ने इस समस्याओं का अधिकाधिक भार महिलाओं पर डाल दिया। किन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्रताड़ित पक्ष कभी न कभी अत्याचार के विरूद्ध आवाज अवश्य बुलंद करता है फिर वह आवाज भारत की हो या सम्पूर्ण विश्व की उसका प्रभाव निश्चित ही निर्णायक होता है। और यदि महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्रनायकों का नेत्रतत्व हो तो किसी भी बुराई और कुप्रथा से सहज ही सामना किया जा सकता है।

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. लिंग विभेद से आप क्या समझते है?
2. लिंग विभेद के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयत्नों पर प्रकाश डालिए।
3. मध्यकाल में भारतीय महिलाओं की स्थिति का वर्णन कीजिये।
4. आधुनिक भारतीय महिलाओं की समस्याओं को स्पष्ट कीजिये।
5. महिलाओं के सम्बंध में महात्मा गाँधी के विचारों को रेखांकित कीजिए।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी एम.के. विमेन्स् रोल इन सोसाइटी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1959
2. जोन्स, ई. स्टेनले, महात्मा गाँधी - एन इन्टरप्रिटेशन, हॉडर एंड स्टॉग्टन, लंदन, 1948
3. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी द लास्ट फेज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1956
4. नंदी, आशीष, ' 'आपरेशन एंड ह्यूमन लिबरेशन. टुवर्ड्स ए पोस्ट गांधियन यूटोपिया, '' इन पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इंडिया, संपादित थामस पेन्थम एंड केनेथ एल. उश, सेज, नई दिल्ली, 1986

5. हिंगोरानी ए. टी., गाँधी फॉर द 21स्ट सेंच्युरी खण्ड 9, भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली
6. मधू पी. किश्वार गाँधी एण्ड विमेन, मानुशी प्रकाशन, दिल्ली, 1986
7. 7 वर्मा, दी पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
8. गँगोली बी. एन., गाँधी सोशल फिलॉसफी परस्पैटिक्टव एण्ड रैलेवेन्स विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1969

इकाई - 9

गाँधी और साम्प्रदायिक सद्भाव

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 साम्प्रदायिकता का अर्थ

9.3 भारत में साम्प्रदायिकता, उद्भव व विकास

9.4 महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयास

9.5 सारांश

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त

- आप साम्प्रदायिकता की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- भारत में साम्प्रदायिकता के उदय व विकास को जान सकेंगे।
- साम्प्रदायिकता पर गाँधी के दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।
- साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु गाँधीवादी साधनों की उपादेयता को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

साम्प्रदायिकता वर्तमान वैश्वीकृत एवं उदारीकृत युग में भी भारत के समक्ष प्रमुख चुनौती के रूप में अडिग है। जिससे भारत की समृद्धि, शांति, स्थिरता एवं विकास के मार्ग में निरंतर अवरोध की स्थिति बनी रहती है। साम्प्रदायिकता की समस्या भारत में औपनिवेशिक शासन की देन है। यह एक कृत्रिम रूप से निर्मित सामाजिक समस्या थी जिसे अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की स्थिरता हेतु राजनीतिक रंग दिया और उसका लाभ उठाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा उत्पन्न की गई राजनीतिक चेतना व राष्ट्रवाद की भावना को क्षीण करने हेतु ब्रिटिशों द्वारा मुस्लिम नेताओं को अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में प्रोत्साहित किया गया जिससे साम्प्रदायिकता की भावना पृथकता व अलगाव में परिवर्तित हो गई परिणामस्वरूप भारत का विभाजन हुआ किंतु इसके बावजूद साम्प्रदायिकता की भावना समाप्त नहीं हुई अपितु राष्ट्रीय एकता के समक्ष एक शाश्वत समस्या बनी हुई है।

9.2 साम्प्रदायिकता का अर्थ

साम्प्रदायिकता सम्प्रदाय शब्द से निर्मित है जिसका साधारण अर्थ है-अपने सम्प्रदाय से आबद्धता अथवा पहचान। यह साम्प्रदायिकता का सकारात्मक अर्थ है। किंतु जब साम्प्रदायिकता एक ऐसी प्रवृति बन जाती है जिसमें अपने धर्म या सम्प्रदाय विशेष से कट्टर लगाव रखना तथा

उसके हितों को राष्ट्रीय हितों से सर्वोपरि मानना व उसके लिए संघर्ष करना सम्मिलित हो तो साम्प्रदायिकता विभाजनकारी एवं नकारात्मक प्रवृति के रूप में उभरती है। विंसेट स्मिथ के अनुसार, ' 'एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति सच, वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषायी समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक एवं राजनीतिक इकाई मानता है जिसके हित अन्य समूहों के हितों रवे पृथक होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता कहा जायेगा। "

यहां यह स्पष्ट है कि किसी धर्म को स्वीकार कर आचरण करना साम्प्रदायिकता नही है। रशीदुदीन खान के अनुसार कर्मकांड में लिप्त होना, अंधविश्वास, अज्ञानता, जादू-टोना पर विश्वास आदि साम्प्रदायिकता में नहीं आते। साम्प्रदायिकता अज्ञात भय अथवा पक्की परम्पराओं के कारण अपने व्यवहार और अपने स्वयं में व्यक्ति की अतार्किक, अवैज्ञानिक और पुरानी सोच मात्र है। साम्प्रदायिकता आधुनिकीकरण के दौर से गुजर रहे बहुल समाज में एक समुदाय द्वारा अपनी पहचान को कायम रखने हेतु राजनीतिक मूर्खता का परिणाम है। आमतौर पर यह संकीर्ण, स्वार्थी, विभाजनकारी तथा आक्रामक दृष्टिकोण से युक्त किसी धार्मिक से सम्बद्ध होती है। ऐसे समाज में राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण बनने तथा राजनीतिक सौदेबाजी के धर्म या संस्कृति का राजनीतिकरण हर समुदाय चाहे वो बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक सबसे आसान बन जाता है।

संक्षेप में साम्प्रदायिकता एक ऐसी राजनीतिक रणनीति है जो राष्ट्रवाद को बहुजातीय, बहुधार्मिक एवं बहुभाषी समुदायों पर आक्रमण के रूप में परिभाषित कर विरोध करती है और अपने समुदाय के हितों व अन्य समुदाय के हितों को परस्पर विरोधी मानकर उन्हें प्राप्त करने हेतु असंवैधानिक व आक्रमक साधनों का प्रयोग करती है।

9.3 भारत मे साम्प्रदायिकता: उद्भव व विकास

सर्वधर्म समभाव व गंगाजमुनी संस्कृति के प्रतीक भारत को साम्प्रदायिकता की आग में झौंकने का घृणित कृत्य औपनिवेशिक शासन के दौरान महज निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु किया गया था। हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक विरोध की घटना और अलगाव का आंदोलन ब्रिटिश शासनकाल से ही अस्तित्व में आया। सर जॉन मेनार्ड के अनुसार, ' 'बेशक यह सच है कि यह फूट और विघटन वृत्ति न होती तो ब्रिटिश सत्ता भारत में पैर नहीं जमा सकती थी और न इस समय टिक सकती थी। हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य उसी विघटन की वृत्ति का लक्षण है। यह भी सच है कि दोनों समुदायों के बीच वैमनस्य ब्रिटिश राज में शुरू हुआ,.... वरना पद्धति हिन्दु और मुस्लिम जनता शांति के साथ अपने-अपने उन्हीं देवस्थानों में साथ-साथ शांतिपूर्वक पूजा करती रही थी।

1600 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के समय भारत की सत्ता हिन्दु-मुस्लिम शासकों के अधीन थी। अंग्रेजों ने भारत में अपने पैर टिकाने हेतु दोहरी नीति अपनाई। उन्होंने हिन्दुओं को कम्पनी में नौकरियों में प्रोत्साहित कर मुसलमानों के प्रति उपेक्षित रवैया अपनाया जिसका परिणाम बहावी आंदोलन के रूप में मुस्लिम असंतोष का अभिव्यक्तिकरण था। 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हिंदु-मुस्लिम एकता अंग्रेजों को खतरा लगने लगा। अत: उन्होंने

' 'फूट डालो और राज करो' ' की कुटिल नीति अपनायी। अब अंग्रेजो की नीति पूर्णत. मुसलमानों को संतुष्ट करने तथा भारतीय जनता के दो फाड़ करने की रही ताकि उनके द्वारा किये जा रहे सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरूद्ध उत्पन्न प्रखर विरोध व असंतोष को दबाया जा सके। इस नीति के परिणाम स्वरूप ' 'मुहम्मडन-एंग्लो-औरियण्टल डिफेन्स एसोसिएशन' की स्थापना हुई। लार्ड कर्जन ने मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति के तहत 1905 में साम्प्रदायिकता आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया। 1906 में मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा हेतु ढाका में 'ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग' की स्थापना की गई। इसी लीग की मांग पर 1909 में मार्ले-मिण्टो सुधारों में साम्प्रदायिक आधार पर पृथक चुनावों की व्यवस्था का समावेश किया गया। यहीं से भारतीय राजनीति के दुखद अध्याय का प्रारंभ हो गया। 1916 के लखनऊ पैक्ट में लीग का अस्तित्व मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार किया गया जो पूर्णत: गलत कदम था। इस नीति पर चलते हुए 1919 के मोण्टेस्क्यू-चेम्सफोर्ड एक्ट द्वारा न केवल मुसलमानों को अपितु सिक्खों, यूरोपियनों और आंग्ल भारतीय समुदायों के लिए भी पृथक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपना कर साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का विस्तार किया गया।

राष्ट्रीय नेताओं द्वारा ऊपरी तौर से एकता बनाने की नीति ने भी साम्प्रदायिकता को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब कभी कोई धार्मिक मतभेद होता तो विभिन्न समुदायों के शीर्ष नेताओं से विचार विमर्श किया जाता था जो उनके वास्तविक नेता कभी नही थे। जबकि जन साधारण को उपेक्षित रखा जाता था। इस नीति का परिणाम रहा कि साम्प्रदायिक नेतृत्व सामुदायिक समूहों को अपने स्वार्थ विशेषकर राजनीतिक स्वार्थ साधने हेतु मरने-मारने के लिए प्रोत्साहित करते रहे।

इस प्रकार औपनिवेशक शासन की नीतियों एवं राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा इनका सामाजिक व पंथनिरपेक्ष आधार पर दृढ़ता से मुकाबला करने में असफलता ने साम्प्रदायिकता की आग को ओर अधिक प्रज्जवलित कर दिया जिसका सर्वाधिक गम्भीर परिणाम भारत का विभाजन था और जिसकी त्रासदी भारत आज भी झेल रहा है।

9.4 गाँधी और साम्प्रदायिकता

अहिंसा गाँधी का जीवन दर्शन था और सत्य का साक्षात्कार उनकी सार्थकता विचार के स्तर पर सबके साथ सद्भाव एवं कर्म के स्तर पर सबकी सेवा ही गाँधी की अहिंसा का मूल तत्व था। साम्प्रदायिकता एकता भी मानव मैत्री की अन्य प्रवृतियों की तरह गाँधी की अहिंसा का जीवंत अंग रही। गाँधी कहा करते थे कि साम्प्रदायिक विद्वैष यदि समाप्त नहीं होता तो वह उनकी अहिंसा की विफलता ही नही अपितु जीवन की निरर्थकता भी है।

महात्मा गाँधी के अनुसार साम्प्रदायिकता की समस्या भारत के लिए नवीन है। वे इसके लिए अंग्रेजी शासन को जिम्मेदार मानते थे जो भारत में साम्प्रदायिक असामंजस्य के माध्यम से अपने साम्राज्य को स्थायी बनाना चाहते थे। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट लिखा है, ' 'क्या जब ब्रिटिश शासन नहीं था और अंग्रेज लोग यहां दिखायी नही पड़ते थे, तब हिंदु-मुसलमान और सिख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते रहते थे? हिंदु इतिहासकारों और मुसलमान इतिहासकारों ने उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि उस समय हम बहुत हद तक हिल-मिलकर और शांतिपूर्वक

ही रहते थे और गांवों में तो हिंदु मुसलमान आज भी नहीं लड़ते, उन दिनों वे बिल्कुल नहीं लड़ते थे। यह लड़ाई-झगडा पुराना नहीं है। मैं तो हिम्मत के साथ यह कहता हूँ कि वह ब्रिटिश शासकों के आगमन के साथ ही शुरू हुआ है। "

गाँधी का अहिंसा में अटूट विश्वास उन्हें हर समय साम्प्रदायिक हिंसा के सम्मुख अडिग रखता था। उनका मानना था कि साम्प्रदायिक एकता के लिए अहिंसा संजीवनी है किंतु यह कायरों की नहीं दुर्बल हृदयों की नहीं अपितु वीरों की, सिर पर कफन बांध कर चलने वालों की अहिंसा होनी चाहिए। जिसने अहिंसा को उसके सम्पूर्ण शौर्य में अपने भीतर उतारा तथा अपने कर्म में प्राणवंत किया हो। महादेव देसाई के शब्दों में ' व्यक्ति समाज, देश एवं विश्व की ऐसी कौन-सी व्याधी है, हिंसा है जो अहिंसा को समर्पित ऐसे बलबीर के सन्मुख अपनी हठ कायम रख सके। '

गाँधी ने साम्प्रदायिक एकता को व्याखित करते हुए कहा था, ' 'साम्प्रदायिक एकता दिलों की अटूट एकता का नाम है और जो आदमी राष्ट्रीयता की भावना को समझते हैं वह एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते। यदि ऐसा करते हैं तो वह एक राष्ट्र समझ जाने के योग्य नहीं है। दुनिया के किसी भाग में भी राष्ट्रीयता और धर्म पर्यायवाची शब्द नहीं है। न कभी ऐसा भारत में हुआ है। "

महात्मा गाँधी का कहना था कि अगर हिन्दुस्तान में सभी अपने धर्म का पालन करें तो सारा हिन्दुस्तान खुश हो सकता है। उनके अनुसार आवश्यकता यह नहीं है कि एक धर्म हो, बल्कि यह है कि विभिन्न धर्मो के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो। गाँधी ने तो बहुत पहले घोषित कर दिया था कि, ' 'मैं ऐसी आशा नहीं करता हूं कि मेरे सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा, यानी वह सम्पूर्णत: हिन्दु या ईसाई बन जायेगा। मैं तो यह सोचता हूं कि वह पूर्णत: उदार और सहिष्णु बने और उसके सब धर्म साथ-साथ चलते रहें।

गाँधी का मानना था कि साम्प्रदायिक हिंसा का मुख्य कारण धर्म के सार तत्वों को ग्रहण नहीं कर पाना है। राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु धार्मिक कट्टरपन, अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के प्रति अमानवीय व्यवहार करते हैं। इसलिए हम धर्म के नाम पर धार्मिक उन्माद में हिंसक हो जाते हैं। इसके निदान हेतु गाँधी हमें धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने एवं ग्रहण करने को आवश्यकता पर बल देते है। उनके अनुसार सभी धर्म एक ही स्थान पर पहुंचने के अलग-अलग रास्ते हैं। अगर हम एक ही लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं तो अलग- अलग रास्ते में क्या हर्ज है? वास्तव में जितने मनुष्य है उतने ही धर्म है। धर्म अत्यंत व्यक्तिगत वस्तु है। धर्म का संचार, ज्ञान, मत, पंथों के बीच की दीवारों को हटाकर सहिष्णुता उत्पन्न करता है। " गाँधीजी सब धर्मों के गहरे अध्ययन के बाद इस परिणाम पर पहुंचे थे कि सभी धर्मो के बुनियादी सिद्धान्त एक हैं, अंतर रूढियों और कर्मकाण्ड और ऊपरी रीति रिवाजों में है। परंतु रूढियॉ और कर्मकाण्ड हमेशा बदलते रहते हैं पर धर्म के बुनियादी सिद्धांत कभी नहीं बदलते। सभी धर्म यह उपदेश देते हैं कि दुनिया में सब इन्सान भाई-भाई हैं हर एक इन्सान बराबर-बराबर है, न उनमें कोई बड़ा है न छोटा न ऊँच हे न नीच है। प्रेम से दुनिया चलती है। ईर्ष्या, घृणा और बदले की भावना मनुष्य को मानवता के रास्ते से

हटाकर जंगलीपन ओर ले जाती है। दूसरों को तकलीफ देना, पीड़ा पहुंचाना, किसी पर अत्याचार और जबरदस्ती करना-यह इंसानियत का नहीं, हैवानियत का काम है। सभी धर्मो ने बुराई का बदला बुराई से नही भलाई से देने को कहा है। जहां भलाई है, वहाँ प्रेम है, जहां प्रेम है वहाँ अहिंसा जहाँ अहिंसा है वहां सच्चाई है और जहां सच्चाई है वहां का राज्य है।

अतः साम्प्रदायिक एकता सिर्फ दूसरों के साथ आत्मीयता का अनुभव करने, सुख-दुख में सहभागी बनने और एक-दूसरे के धर्म के प्रति मन में प्रेम और आदर की भावना को संजोने विकसित करने से ही प्राप्त की जा सकती है।

गाँधी धर्म परिवर्तन का विरोध करते थे। उनके अनुसार थोडे या बहुत अंशों में सभी धर्म सच्चे है। सबकी उत्पति एक ही ईश्वर से हुई है, परंतु सब धर्म अपूर्ण हैं-क्योंकि वे अपूर्ण मानव- द्वारा हम तक पहुंचे है। सच्चा शुद्धि आंदोलन या परिवर्तन यह होना चाहिए कि हम सब अपने अपने धर्म में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार की योजना में एक मात्र चरित्र ही मनुष्य की कसौटी होगा। एक धर्म से निकल कर दूसरे में चले जाने से कोई नैतिक उत्थान न होता हो तो धर्म परिवर्तन का क्या अर्थ है' दबाव में आकर धर्म परिवर्तन अनुचित है। लेकिन यह स्वेच्छा से कोई ऐसा करना चाहे तो वह कर सकता है। फिर भी यह बहुत आसान नहीं है। गाँधी के अनुसार, ' 'क्या मजहब वस्त्र के समान सरल चीज है कि मनुष्य जब चाहे उसे पहन ले और जब चाहे उसे बदल ले? मजहब का संबंध कई पीढ़ियों से रहता है। धर्म परिवर्तन से एकता नहीं मिलती है वरन् इससे धर्म विरोधी मनोवृत्तियाँ पनपती है। अत: हमारी प्रार्थना है कि हिन्दु अपने को अच्छा हिंदु, मुसलमान अपने को अच्छा मुसलमान और ईसाई अपने को अच्छा ईसाई साबित करने का प्रयास करे। यह एक साथ मिलजुल कर रहने की कुंजी ही बुनियादी सच्चाई है। '

अत: गाँधी की दृष्टि में दबावकारी साधनों से किया गया धर्म परिवर्तन अनुचित है इसलिए आवश्यकता संसार के महान धर्मो के अनुयायियों में सजीव और मित्रतापूर्ण सम्पर्क स्थापित करने की है न कि हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे धर्मो की अपेक्षा अपने धर्म की श्रेष्ठता जताने की व्यर्थ कोशिश करके आपस में संघर्ष' पैदा करने की। ऐसे मित्रतापूर्ण संबंध के द्वारा हमारे लिए अपने अपने धर्मों की कमियाँ और बुराईयाँ दूर करना सम्भव होगा।

गाँधी की दर्शन का केन्द्र बिंदु मनुष्य है इसलिए उन्हें मानवतावादी विचारकों की श्रेणी में रखा गया है। उनके अनुसार मनुष्य में सद्गुण व दुर्गुण दोनों ही विद्यमान रहते हैं। सच्चा मानव वही है जिसमें मानवोचित गुण व्यवस्थित हों। गाँधी के अनुसार इन्हीं मूल्यों और गुणों को विकसित करके साम्प्रदायिक एकता को प्रस्थापित किया जा सकता है। नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतार कर उन्हें आचरण के माध्यम से अभिव्यक्ति कर के ही मानवता घृणा व द्वेष पर आधारित मजहबी हिंसा व तनाव से मुक्ति पा सकती है। गाँधी के अनुसार, ' 'जब तक मनुष्य भय, घृणा और द्वेष के धरातल से ऊपर नहीं उठेगा तब तक साम्प्रदायिक सौहार्द और दोस्ती का वातावरण बनाने के लिए भय, द्वेष और घृणा जो उसके दुश्मन हैं, की हत्या जरूरी है। "

गाँधीजी धर्म व राजनीति को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित मानते है इसी कारण वे कहते हैं कि राजनीति को धर्म से पृथक नही किया जा सकता। यहां धर्म का अर्थ सम्प्रदाय, कर्मकाण्ड या संस्कारवाद अथवा हिन्दुधर्म इस्लाम या जैन धर्म आदि नहीं है अपितु ईश्वर और सत्य में विश्वास और धर्म को जीवन को दिशा देने वाले तत्व के तौर पर मानने का पारम्परिक विश्वास है। जब उन्होंने धर्म की बात की तो उसका अर्थ नैतिकता और मूल्यों में विश्वास है और वही धर्म उनके पूरे जीवन का मूल आधार था।

गाँधी ने यह भी बार-बार कहा था कि सभी धर्मो के आधारभूत मूल्य एक ही हैं और यह भी कहा था कि भगवान के लिए धर्म और मूल्यों को एक ही ना समझे। इसी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने ईश्वर सत्य है के कथन को 'सत्य ही ईश्वर है' में बदल दिया। मगर बाद में जब उन्होंने देखा कि हिंदु और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक धर्म का इस्तेमाल लोगों को राजनीतिक तोर पर विभाजित करने और उनमें साम्प्रदायिकता व घृणा फैलाने का कार्य बहुत सुनियोजित तरीके से कर रहे हैं और धर्म पर आधारित राज्य की मांग भी कर रहे है तो उन्होंने अपनी इन व्याख्याओं को अर्थात् धर्म और राजनीति के मध्य संबंधो को पुनर्परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि विभिन्न धर्मो को राजनीति से पृथक रहना चाहिए। गाँधी का कहना था कि ' 'धर्म को यथार्थ के रूप में एक निजी सरोकार और मनुष्य व ईश्वर के बीच संबंध के तौर पर स्वीकार किया जाना चाहिए। " 1947 में गाँधी ने कहा, ' 'धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है और इसे राजनीति या राष्ट्र के मामलों से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। '

गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में पदार्पण से लेकर मृत्युपर्यन्त तक हिन्दु-मुस्लिम एकता हेतु भागीरथ प्रयास किये। उनका कहना था कि, ' 'मैं हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्यासा हूँ क्योकि मैं जानता हूँ कि बिना उसके सच्चा स्वराज्य हो ही नहीं हो सकता गाँधी एकता में विश्वास करते थे न कि यूनियन में। हिंदु और मुसलमान मिलकर एक नहीं हो सकते क्योंकि उनके सामाजिक और धार्मिक जीवन में फर्क है। ' उनकी विशिष्टता और पहचान मिटाना नहीं चाहते अपितु दोनों समुदायों में एकता स्थापित करना चाहते थे समझौतों और सद्भावना से ही संभव है। उन्होंने साम्प्रदायिकता की उस बीज धारणा को भी गलत ठहराया हिन्दु और मुसलमानों के राजनीतिक और आर्थिक हित इसलिए अलग हैं क्योंकि उन दोनों के धर्म पृथक हैं। गाँधीजी ने कहा, ' 'राजस्व, सफाई, पुलिस, न्याय और सार्वजनिक वाहनों के इस्तेमाल के मामले में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच क्या टकराव हो सकता है। मतभेद केवल धार्मिक आचरण और धर्म के पालन के तरीकों मे हो सकता है। मगर एक धर्म निरपेक्ष राज्य का उससे कोई लेना-देना नहीं है। " गाँधीजी के अनुसार साम्प्रदायिकता हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक मिथ्याबोध और असहिष्णुता के गर्भ से उत्पन्न होती है क्योंकि दोनो समुदायों के मध्य धार्मिक भिन्नता है। अत: तनाव और संघर्ष उत्पन्न होते हैं। साम्प्रदायिक दंगों में धार्मिक स्थलों की तोड़-फोड़ की जाती है और उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचायी जाती है। गाँधीजी यह मानते थे कि दबाव डालकर या जोर-जबरदस्ती करके हिंदू गोवध बंद नहीं करा सकते और न ही मुसलमान मस्जिद के सामने संगीत पर रोक लगा सकते हैं। इसे अनुनय-विनय से ही रोका जा सकता है।

गाँधी ने सत्याग्रह की तकनीक का प्रयोग न केवल अंग्रेजो को भारत से ' फैंकने के लिए वरन् साम्प्रदायिक संघर्ष को रोकने के लिए भी किया। उनके अनुसार हिंसात्मक संघर्ष स्थिति उत्पन्न होने पर सत्याग्रह रूपी साधन का प्रयोग कर शांति स्थापित की जा सकती है। हिंसा की स्थिति उत्पन्न होने पर यदि एक धार्मिक समुदाय दूसरे का सहयोग ना करे, सहिष्णुता का परिचय दे और स्वयं कष्ट सहने के लिए तैयार हो तो दूसरे समुदाय को आगे झुकना पड़ेगा और शांति स्थापित हो जाएगी।

गाँधी सांप्रदायिक एकता हेतु सत्याग्रह के एक अंग सविनय अवज्ञा को भी प्रयोग में लाने की बात करते हैं। उनके अनुसार अनैतिक कानूनों को सविनय भंग करना सविनय अवज्ञा है अर्थात् ऐसे कानून जो अनुचित एवं समाज के हित के विपरीत होते हैं उनका विरोध एवं अवहेलना करना सत्याग्रही पुनीत कर्तव्य है। प्रत्येक धार्मिक समुदाय के कुछ विशिष्ट नियम और कानून होते हैं। ऐसे नियम जो समाज लिए अहितकर हों उन्हे सविनय तोड़ा जा सकता है। उपवास सत्याग्रह प्रविधि का अंतिम अस्त्र है। जब सभी रास्ते बंद हो जाते हैं तो अहिंसा के पुजारी उपवास का प्रयोग करते है। गाँधी के अनुसार, ' 'जब मानव-बुद्धि कुंठित हो जाती है और चारों-तरफ अंधकार नजर आता है तब अहिंसा का पुजारी उपवास करता है। उपवास प्रार्थना की भावना तीव्र होती है। " गाँधीजी ने स्वयं भी तीन विशेष अवसरों (1926, 1947, 1948) पर उपवास की सफलता को असंदिग्ध रूप से स्थापित किया।

गाँधीजी ने साम्प्रदायिकता एकता एवं सद्भाव स्थापित करने हेतु एक धर्म निरपेक्ष राज्य की आवश्यकता पर बल दिया। महात्मा ने स्पष्ट कहा था कि, ' 'बेशक, राज्य धर्म-निरपेक्ष होना चाहिए। उसमें रहने वाले हर नागरिक को बिना किसी रूकावट के अपना धर्म मानने का हक होना चाहिए। जब तक वह मेरे देश के कानून को मानता है। हुकूमत तो सब लोगो के लिए बनाई है। " उन्होंने कहा कि अपने धर्म पर मेरा अटूट विश्वास है। मैं उसके लिए अपने प्राण दे सकता हूँ। लेकिन वह मेरा निजी मामला है। राज्य को उससे कुछ लेना-देना नहीं है। राज्य हमारे लौकिक कल्याण, स्वास्थ्य, आवागमन, विदेशों से संबंध, करेंसी (मुद्रा) आदि की देखभाल करेगा लेकिन हमारे या तुम्हारे धर्म की नहीं। धर्म हर एक का निजी मामला है। गाँधी के अनुसार, ' 'आजाद हिन्दुस्तान में राज्य हिन्दुओं का नही, बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदाय के बहुमत पर नहीं बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा। स्वतंत्र हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर ही चुने जायेंगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

9.4 महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयास

गाँधीजी ब्रिटिश राज की ' 'बाटों और शासन करो' की नीति से भारतीय राजनीति में प्रवेश करने से पूर्व ही भलीभांति परिचित थे। इसलिए मार्च 1920 में जब उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम की बागडोर अपने हाथ में ली तो गाँधी ने अपने राजनीतिक कार्यो में सर्वप्रथम स्थान हिन्दू - मुस्लिम एकता को दिया। खिलाफत आंदोलन को गाँधीजी ने हिन्दु-मुस्लिम एकता के रूप में स्थापित किया। उन्होंने स्वयं कहा कि ' 'यदि शांतिपूर्ण असहयोग

आंदोलन न्याय स्थापित करने में असफल होता है तो मैं इस्लाम की पवित्र पुस्तकों में बताये मार्ग पर चलने का पूर्ण समर्थन करता हूँ। " जब भारतीय मुसलमानों ने अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया तब भी गाँधीजी ने साम्प्रदायिक एकता को बनाये रखने के लिए हृदय से उस आंदोलन को स्वीकार किया।

सन् 1921 में स्वयंसेवकों के प्रतिज्ञा पत्र में अहिंसा के बाद जो सबसे पहली शपथ थी वह यह थी कि ' 'मैं भारत में रहने वाले सब सम्प्रदायों-हिन्दु, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी और भारत में बसने वाली सब जातियों की एकता को शक्तिशाली बनाने में विश्वास करता हूँ। मैं इस एकता की हमेशा कोशिश करूंगा। "

गाँधी ने साम्प्रदायिक उन्माद को उपवास के माध्यम से शांत करने का प्रयास किया। 18 सितम्बर 1926 को दिल्ली, गुलमर्ग, लखनऊ और शाहजहांपुर में साम्प्रदायिक दंगों के विरोध में 21 दिनों का उपवास किया। उनका मानना था कि इससे आत्म शुद्धि होती है और सामुदायिक एकता व सद्भाव को बनाए रखने में मदद मिलती है।

सन् 1930 के सत्याग्रही प्रतिज्ञा पत्र में गाँधी द्वारा इस बात का स्पष्ट आदेश था कि, ' 'कोई सत्याग्रही जानबूझकर साम्प्रदायिक झगडे का कारण नहीं बनेगा। साम्प्रदायिक दंगे की सूरत में वह किसी की तरफदारी न करेगा। जिस तरफ न्याय होगा उसकी सहायता करेगा। अगर वह हिंदू है तो मुसलमानों और दूसरे सम्प्रदायों के साथ उदारता का व्यवहार करेगा और यदि उन पर ही हमला करेंगे तो उनकी रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान करने से न हिचकेगा। यदि हिन्दुओं पर हमला होगा तो मन में बिना बदले की भावना लाये हिन्दुओं की रक्षा में अपने प्राणों की बलि चढा देगा। वह अपनी पूरी ताकत से हर ऐसी स्थिति को रोकेगा जो साम्प्रदायिक दंगे का कारण बन सकती है। "ऐसी ही आशा प्रत्येक मुसलमान, सिख व ईसाई सत्याग्रही से भी की गई थी। गाँधीजी ने हिंदु धर्म व इस्लाम धर्म तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य सद्भाव व सौहार्द बनाने हेतु अनेक क्रियात्मक कदम उठाये। रोमां रोला ने लिखा है, ' '20 नवम्बर को गाँधीजी ने 'नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ गुजरात' स्थापित की थी हिन्दुओं का हिन्दुधर्म और मुसलमानों का इस्लाम, दोनों पर ही यह युनिवर्सिटी आधारित थी। इसका ध्येय भारत की भाषाओं की रक्षा ' करके उन्हें राष्ट्रीय भावना का स्त्रोत बनाना था। गाँधीजी को पूर्ण विश्वास था कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन पश्चिमी विज्ञान के अध्ययन से कम आवश्यक नहीं था। संस्कृत अरबी, फारसी, प्राकृत, पाली और मागधी के विस्तृत कोष का पूर्ण अध्ययन के आधार पर नई भारतीय सभ्यता की सृष्टि करना है। यह नई सभ्यता स्वभावत: स्वदेशी ढंग में होगी जिसमें प्रत्येक सभ्यता को अपना उचित स्थान मिलेगा और कोई एक अकेली सभ्यता किसी दूसरी सभ्यता पर हस्तक्षेप या अधिकार न जमावेगी। हिन्दुओं को ' भी कुरान का अध्ययन करने का अवसर मिलेगा और मुसलमानों को हिन्दु शास्त्र का।"

विभाजन के दौरान दिल्ली, कलकत्ता, नौआखली, चंदीगांव बिहार, पूर्वी बंगाल जैसे सभी क्षेत्र साम्प्रदायिकता की आग में जल रहे थे। गाँधीजी ने इस क्षेत्रों में शांति अभियान जारी रखा तथा उनके प्रयास से आपसी सद्भावना पुन: स्थापित होने के फलस्वरूप करोड़ों हिन्दु पूर्वी पाकिस्तान में अपने ग्रह त्यागने को विवश नहीं रहे। सितम्बर 1947 में दंगे भड़कने पर

गाँधीजी ने तीन दिन का उपवास किया। जिसका हिन्दुओं और मुसलमानों पर आश्चर्यजनक रूप से प्रभाव पड़ा। 13 जनवरी को दिल्ली की सडकों पर लाशें बिछी देखकर गाँधीजी ने करूण हृदय से आमरण अनशन की घोषणा कर दी जिसका वांछनीय प्रभाव सभी समुदायों पर पडा।

गाँधी का पूरा जीवन स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु भारत के विभिन्न समुदायों के मध्य एकता स्थापित करने में लग गया। हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए गाँधी ने व्यग्रता प्रकट करते हुये कहा कि, ' 'मेरे दिल में लगातार 24 घंटे, चाहे मैं जागता हूँ या सोता हूँ हिंदु-मुस्लिम एकता के लिए प्रार्थना और आध्यात्मिक प्रयत्न चलते रहते है। मुझे पूरा विश्वास है कि हिंदु और मुसलमानों में सच्ची और स्थायी दिली एकता, पैबन्द लगी हुई राजनीतिक एकता नही, देर सवेर अवश्य, देर से नही शायद जल्दी ही होगी। ' अन्ततः गाँधी ने साम्प्रदायिक एकता हेतु अपने प्राण न्योच्छावर कर दिये। वे साम्प्रदायिकता के पूरी तरह खिलाफ थे और इसलिए नाथुराम गोड़से ने उनकी हत्या की।

9.5 सारांश

साम्प्रदायिकता विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और वर्गो के मध्य, घृणा, ईर्ष्या, परस्पर द्वेष व प्रतिशोध की भावना के कारण संगठित हिंसा व संघर्ष है। गाँधीजी ने अपना सर्वस्व इसी साम्प्रदायिकता के उन्मूलन में होम कर दिया किंतु जैसी उनको आशा थी कि अंधकार रूपी साम्प्रदायिकता का आजादी सूर्य के प्रकाश से नाश हो जाएगा, ऐसा नहीं हुआ। आजादी से लेकर वर्तमान तक की अनेक साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओ से यह सिद्ध होता है कि राजनीति और धर्म के गठजोड ने अपने न्यस्त हितों की पूर्ति हेतु साम्प्रदायिकता को बढावा देने का कार्य किया है। समय की आवश्यकता है कि लोकतंत्र, विकास और सामाजिक समरसता के समक्ष इस चुनौती का मुकाबला करने हेतु सक्षम, सबल और निष्पक्ष राज्य तंत्र के साध पंथनिरपेक्ष व वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित शिक्षा प्रदत्त की जाये।

भारत साम्प्रदायिकता को समाप्त कर विभिन्न धर्मो के मध्य एकता स्थापित करने का सर्वप्रमुख उपाय गाँधी के निम्नांकित कथन में निहित है। गाँधी ने कहा कि, ' 'साम्प्रदायिक एकता की जरूरत को सब मंजूर करते है लेकिन सब लोगों को अभी यह बात जंची नहीं कि एकता का मतलब सिर्फ राजनीतिक एकता नहीं है। राजनीतिक एकता तो जोर जबरदस्ती से भी लादी जा सकती है। मगर एकता के सच्चे अर्थ तो है वह दिली-दोस्ती, जो किसी के तोड़े ना टूटे। इस तरह की एकता पैदा करने के लिए सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि कोई भी व्यक्ति फिर किसी भी धर्म के मानने वाले हों अपने को हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी व गैरा सभी कौमों का नुमाइन्दा समझें। हिन्दुस्तान के करोड़ों बाशिन्दों में से हर एक के साथ वे अपने पन का आत्मीयता का अनुभव करे। यानी वे उनके सुख-दुख में अपने को उनको साथी समझे। इस तरह की आत्मीयता सिद्ध करने के लिए हर एक व्यक्ति को चाहिए कि वह अन्य धर्म का पालन करने वाले लोगों के साथ निजी दोस्ती कायम करे। और अपने धर्म के लिए उसके मन में जैसा प्रेम हो, ठीक वैसा ही प्रेम बह दूसरे धर्म से भी करे।

9.6 अभ्यास प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता की अवधारणा को समझाइये।
2. भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिये।
3. साम्प्रदायिकता पर गाँधी के विचारो का विश्लेषण कीजिए।
4. साम्प्रदायिकता के निवारण हेतु गाँधीवादी साधनो की व्यवहारिकता का विश्लेषण कीजिए।

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1960
2. महात्मा गाँधी, हिन्द-स्वराज्य, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
3. महात्मा गाँधी. प्रार्थना प्रवचन, खण्ड 1 व 2 नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1960
4. एस.एम.चाँद, महात्मा गाँधी और साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीय एकता प्रकाशन, ब्यावर (राज.) 1991
5. विपिन चन्द्रा, साम्प्रदायिकता, एक प्रवेशिका, नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली, 2008
6. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी, द लास्ट फेज, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1958
7. सुनील कुमार अग्रवाल, गाँधी और साम्प्रदायिक एकता, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,

इकाई - 10

भ्रष्टाचार की समस्या और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 गाँधी के चिन्तन के मूल तत्व

10.3 गाँधी की राज्य संबंधी अवधारणा तथा विकेन्द्रीकरण

10.3.1 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण

10.3.2 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

10.4 गाँधी के विचार तथा भ्रष्टाचार

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

यह इकाई भ्रष्टाचार की समस्या और महात्मा गाँधी के द्वारा प्रस्तुत इस की समस्याओं के निदान सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालती है। इसका उद्देश्य है :-

- गाँधी के विचारों के मूल तत्वों को समझना
- गाँधी के राज्य, सरकार और लोकतंत्र के प्रति दृष्टिकोण को समझना।
- यह बताना कि राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण की धारणा किस तरह राज्य की व्यवस्था का आधार बन सकेगी।
- उपर्युक्त संदर्भ में हम जान पायेंगे कि किस प्रकार केन्द्रीकरण, राज्य व औद्योगिकरण भ्रष्टाचार व अनैतिकता के जनक है।

10.1 प्रस्तावना

राजनीतिक चिंतन के इतिहास में यदि सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दियाँ जहाँ विवेकवाद का युग रहीं हैं तो उन्नीसवीं शताब्दी वाद-विवाद का युग थी। बीसवीं शताब्दी को चिन्तन का युग कहने की अपेक्षा व्यवहार का युग कहना ठीक होगा क्योंकि अधिकांश विचारक दार्शनिक तत्व मीमांसक होने के साथ राजनेता भी रहे, फिर चाहे वो इंग्लैंड में लॉस्की व रसैल हों, रूस में लेनिन तथा स्टालिन या फिर जर्मनी व इटली में हिटलर या मुसोलनी। भारत के राजनीतिक व सामाजिक चिंतन में उसी तरह महात्मा गाँधी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गाँधी को विश्व में सहिष्णुता, स्वतन्त्रता तथा शांति के पुजारी के रूप में जाना जाता है। उन्होनें इन सब को न केवल सैद्धांतिक रूप में माना बल्कि व्यवहारिक जीवन में भी उतारा। उन्होंने व्यक्ति में

स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता को उत्पन्न करने के निरंतर प्रयास किये। वे शोषण को भी एक प्रकार की हिंसा के रूप में देखते थे और इसी कारण राजनीतिक शक्ति के साथ साथ सामाजिक सम्मान व आर्थिक मौकों की बराबर सहभागिता पर जोर दिया करते थे। वो एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे और उन्होने राजनीति की समस्याओं को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से व्यक्त किया।

उनका चिन्तन रहस्यमय व स्वप्नलोकी नहीं है। भले ही उनके विचारों में सत्य, अहिंसा, धर्म व नैतिकता सदृश्य अवधारणाओं की प्रमुखता रही पर उन्होने धर्म को साम्प्रदायिक मत के रूप में नहीं माना। हिन्दू धर्म पर उनका अद्य विश्वास था पर उसे उन्होने हठधर्मिता के रूप में नहीं ग्रहण किया। उन्होने सत्य, अहिंसा व धर्म को जिस रूप में प्रतिपादित किया उसी रूप में स्वयं उस पर आचरण किया। साध्य व साधन के विषय पर गाँधी जी आदर्शवादियों तथा निरंकुशवादियों से सहमत नहीं थे। उनकी दृष्टि में मानव जीवन का लक्ष्य व्यक्ति को आत्मानुभूति की प्राप्ति कराना है। इसलिए उन्होने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रहमचर्य जैसे पाँच नैतिक सिद्धान्तों को राजनीतिक साधनों के रूप में अपनाने को कहा। राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई साध्य नहीं परन्तु लोगो के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की क्षमता प्राप्त करने का साधन मात्र है।

मनुस्मृति में उल्लेख है कि 'शासन का अधिकार' सत्ता में बैठे लोगों को भ्रष्ट होने का अधिकार नही देता। विश्व बैंक की 1997 की एक रिपोर्ट में भ्रष्टाचार को परिभाषा देने की कोशिश करते हुए कहा गया है कि 'जन शक्ति या राजनीतिक शक्ति का निजी लाभ के लिये प्रयोग' भ्रष्टाचार है। यह परिभाषा अपने आप में बहुत सरल है। भ्रष्टाचार बहुआयामी है जो किसी भी व्यवस्था को पूरी तरह नष्ट कर देता है। गाँधी इस बात से वाकिफ थे कि जहाँ राजसत्ता का केन्द्रीकरण होगा वहाँ भ्रष्टाचार पनपेगा और जहाँ राजनेताओं और पूंजीपतियों का गठजोड़ होगा वहाँ शक्ति का दुरूपयोग किसी भी रूप में हो सकता है। इस कारण ही वो भ्रष्टाचार के खिलाफ एक वातावरण बनाना चाहते थे जिससे भ्रष्टाचार नहीं पनप पाये। ग्राम स्वराज्य में उन्होने कहा 'जहाँ शासन या बहुसंख्यक जनता नीतिभ्रष्ट हो और स्वार्थी हो, वही उसकी सरकार अराजकता की स्थिति पैदा कर सकती है, दूसरा कुछ नहीं।

गाँधीजी के विचारों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके विचार किसी दार्शनिक चिंतन की उपज न होकर दिन प्रतिदिन के उनके अनुभाविक परीक्षण की देन थे। उन्होने स्वयं कहा, '' मैं दूसरों को अपना जीवन-दर्शन समझाने में सर्वथा अयोग्य हूँ मैं तो केवल उस दर्शन को, जिसमें मैं विश्वास रखता हूँ अभ्यास में लाने की योग्यता रखता हूँ। ' उन्होने जो कहा उसे पहले अपने आचरण में उतारा। व्यक्ति की आत्मानुभूति को उन्होने जीवन का लक्ष्य माना और उसे ईश्वरीय साक्षात्कार या निरपेक्ष सत्य के ज्ञान के साथ जोड़ा। यह तभी संभव है जब मनुष्य न केवल अपनी आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए काम करता है बल्कि अन्य मनुष्यों के लिए भी। मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य 'सबका अधिकतम हित होता है।

10.2 गाँधी के चिंतन के मूल तत्व

गाँधी मूलत: धार्मिक प्रवृत्ति के थे, यद्यापि उनमें धर्मान्धता व रूढिवादिता का लेशमात्र भी अब नही था। धर्म पर उनके विचार लौकिक तथा मानवतावादी थे। उनका कथन था 'मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं है, इसलिए उन्होनें राजनीति में नीति अर्थात् धर्म को प्राथमिकता दी, राज अर्थात् सत्ता को नहीं। दूसरे शब्दों में उन्होने नैतिकता और राजनीतिक की जरूरत पर जोर देते हुए राजनीति का आध्यात्मिकरण किया है। उनका लक्ष्य था कि सत्य और अहिंसा को न केवल व्यक्तिगत व्यवहार का वरन् सार्वजनिक व्यवहार का आधार बनाना चाहिए। इन दोनों सिद्धांतों को उन्होनें अविभाज्य रूप में जोड़ा। अहिंसा का पालन करना सत्य के उपासक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। सत्य का पालन करने वाले का अर्न्तमन शुद्ध होना चाहिए और यह अस्तेय, अपरिग्रह ब्रहमचर्य को अपना कर किया जा सकता हैं। सत्य का पालन मन, कर्म तथा वचन तीनों से होना चाहिए। सत्य, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र दोनों से जुडा है, हिंसा उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। अहिंसा का क्रियान्वयन इस सिद्धांत पर आधारित है कि जो किसी प्राणी के बारे से उत्तम है वहीं सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध ने भी समान रूप से उत्तम है। अहिंसा, सत्य की भांति ही सर्वशक्तिमान व शाश्वत है। इसका अर्थ केवल निशेधात्मक नही बल्कि विशेष परिस्थितियों में असाध्य रोग में असहयनीय कष्ट से मुक्ति के लिए प्राण लेना भी अहिंसा, है। ईर्श्या क्रोध या हानि पहुँचाने की इच्छा से रहित हो कार्य करना अहिंसा है। स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधी ने इन दोनो साधनों, सत्य और अंहिसा को सर्वाधिक महत्व दिया।

अस्तेय, सत्य तथा अहिंसा से सम्बद्ध नैतिक सिद्धांत है। इसका अर्थ केवल यह नहीं है कि किसी अन्य की वस्तु को परोक्ष रूप में न लिया जाये। अस्तेय का अभिप्राय है जिस वस्तु की हमें आवश्यकता नहीं उसे प्राप्त न करना, अपनी आवश्यकता में अनुचित वृद्धि न करना तथा भविष्य में संचय की इच्छा न बनाना। गाँधी ने अस्तेय को अपरिग्रह से जोड़ा है। वे व्यक्तिवाद तथा उदारवाद के उन विचारों से सहमत नहीं थे जिन्होनें पूंजीवाद को जन्म दिया, परन्तु साथ ही वे समाजवाद के विशुद्ध भौतिकतावादी विचारों के भी विरूद्ध थे। उन्होनें सत्य और अहिंसा के आदर्शो की भांति अपरिग्रह को भी निरपेक्ष तथा सापेक्ष दोनों रूपों में माना है। मनुष्य अपनी मौलिक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र व आवास के निमिन्त किसी वस्तु का संग्रह न करें, यही तक कि अपने भौतिक शरीर को भी अपना न मानकर दूसरों को समर्पित कर दे। चूंकि ऐसा करना पूर्णत: व्यवहारिक नहीं अत: व्यक्ति अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का संचय इस दृष्टि से करे की अन्य को उसकी जरूरत नहीं है और ऐसा करने में वह हिंसा व शोषण के साधनों से मुक्ता रहें।

ब्रहमचर्य, गाँधी के चिंतन का एक अन्य अहम् तत्व है। बोलचाल की भाषा में यह काम-वासना पर नियंत्रण है और शाब्दिक मायने में उसका अभिप्राय- 'ब्रहम का ज्ञान करने के अनुशासन' से है। वास्तव में यह मन की वो शक्ति है जहाँ आकर्षक वस्तुओं के साथ रहते हुए भी उनकी वासना (इच्छा) से दूर हो जाये। यह दमन नहीं शमन या आत्मसंयम है, और यही मनुष्य को जीवन के अन्य आदर्शो की दिशा में बढने में सहयोग करता है। ब्रहमचर्य ही वो

सद्गुण है जो मन को सभी क्षेत्रों नियमित करता है; मन कर्म तथा वचन की पवित्रता, सत्य और अहिंसा की उपलब्धि के लिए आवश्यक है।

गाँधी जी ने एक सक्रिय राजनेता के रूप में सत्याग्रह को एक अहम् साधन के रूप में अपनाया। वे मैकियाविली के 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' के सिद्धांत को अहिंसा के विरूद्ध मानते थे। साध्य व साधन के मध्य संबंध के विषय पर भी उनका मत था कि साधन की पवित्रता ही साध्य की पवित्रता निर्धारित करती है। सत्याग्रह से उनका अर्थ आत्मा की श्रेष्ठता से था, एक सत्याग्रही किसी को चोट नहीं पहुँचाता वरन् हृदय परिवर्तन कर उसे जीतता है। सत्याग्रही में सत्य, अहिंसा, अनुशासन व आत्मत्याग के गुण होने चाहिए। सत्याग्रह व्यक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार का होता हैं। इसके विभिन्न रूप हैं जिन्हें गाँधी ने प्रयुक्त किया, जैसे निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, हड़ताल, बहिष्कार, धरना, अनुशासन सविनय अवज्ञा व हिजरत।

10.3 गाँधी और उनकी राज्य संबंधी अवधारणा

जैसा शुरूआत में भी कहा गया है गाँधी का दर्शन विशुद्ध राजनीतिक नहीं था वरन् व्यापक था। अत: पाश्चात्य चिन्तकों के समान यहाँ राज्य की परिभाषिक व्याख्या, उत्पत्ति व विकास की विवेचना नहीं है। विशेषतया भारत के सन्दर्भ में उन्होनें एक अहिंसक राज्य की स्थापना का चित्र खींचा। सामान्यतया राज्य के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण अराजकतावादी है। टालस्टाय, बाकुनिन, मार्क्स की परम्परा में गाँधी निवर्तमान राज्य-व्यवस्था के कटु आलोचक थे परन्तु उन्होने राज्य को वर्ग संगठन न कहकर हिंसा का केन्द्रीय व संगठित रूप कहा है। वे राज्य के औचित्य को ऐतिहासिक, नैतिक व आर्थिक किसी भी आधार पर स्वीकार नहीं करते। राज्य आत्माविहीन यन्त्र के समान है जो मनुष्य की व्यैक्तिकता को समाप्त करके उसके विकास के मार्ग को अवरूद्ध करता है। राज्य, मानव स्वतन्त्रता के मार्ग में रूकावट है जो स्वयं साध्य बन कर व्यक्ति को साधन बना देता है। गाँधी ने कहा है 'राजनीतिक सत्ता मेरा साध्य नही बल्कि मनुश्य की उन्नति के क्षेत्र में साधन मात्र है, एक आदर्श समाज में न कोई राज्य होगा और न ही राजनीतिक सत्ता। इस दृष्टि से गाँधी अराजकतावादियों तथा मार्क्स की राज्य विहीन, व्यवस्था के बहुत करीब आ जाते हैं। परन्तु हिंसात्मक साधनों के द्वारा राज्य को नष्ट करने के वे कट्टर विरोधी थे। राज्य अहिंसा की राजनीतिक अभिव्यक्ति का साधन है।

10.3.1 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण

गाँधी ने जिस आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना की है वह दार्शनिक अराजकतावाद पर आधारित है और इसे उन्होने राम राज्य' का नाम दिया है। यह राज्यविहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था है। गाँधी राज्य में कानूनी प्रभुसत्ता की धारणा के घोर विरोधी है क्योंकि यह राज्य को एक केन्द्रीय संगठन के रूप में बदल देता है। इससे सत्ता कुछ विशेषज्ञों के हाथों में सिमट जाती है और वे हिंसात्मक साधनों द्वारा सत्ता का प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत गाँधी का आदर्श ऐसी विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था है जिसमें जीवन स्व-चालित व स्व-नियमित होगा न कि बाहर के कानून तथा राजसत्ता के द्वारा। ऐसे में न तो कोई शासक होगा और न कोई शासित; यह प्रबुद्ध अराजकतावाद की स्थिति होगी।

गाँधी के आदर्श राज्य में छोटे-छोटे जन-समूह ग्रामों में निवास करते हैं और उनके संगठन तथा शांतिपूर्ण अस्तित्व की मुख्य शर्त ऐच्छिक सहयोग की होगी। लोकतन्त्र की सफलता के मूल में राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण है। गाँधी जी इस विकेन्द्रीकरण के द्वारा नागरिकों या जनप्रतिनिधियों को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में ज्यादा हिस्सेदारी देना चाहते थे क्योंकि जनसहभागिता पर आधारित निर्णय समाज के विविध हितों में ज्यादा गहराई से जुड़ सकेंगे। इन छोटे-छोटे स्वशासित जन-समूहों के श्रमिक संगठनों द्वारा क्षेत्रीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तरों पर संघात्मक व्यवस्थाऐं निर्मित होंगी, जिनका आधार भी ऐच्छिक सहयोग होगा। यहाँ विधि का आधार सहयोग और सहचर होगा न की कानूनी सत्ता, क्योंकि लोकतंत्र की भावना को कानून सदृश्य बाह्य साधन के द्वारा लागू नहीं किया जा सकता, यह तो जनता की अन्तरात्मा में आ सकती है। राज्य स्वयं सम्प्रभु नहीं होगा, बल्कि यह शक्ति जनता में निहित होगी। राज्य व्यक्ति के जीवन के विविध क्षेत्रों में उसे सम्पूर्णता प्रदान करने में साधन बनेगा। सामाजिक जीवन के संचालन के लिए राज्य जिन कानूनों की व्यवस्था करेगा यदि वे मनुष्य की नैतिक भावनाओं के विरूद्ध हुए तो उनका विरोध करने का न केवल उसे अधिकार होगा वरन् ऐसा करना उसका परम कर्त्तव्य होगा। परंतु ऐसा विरोध पूरी तरह अहिंसक होगा। वे अराजकतावाद की इस धारणा से सहमत थे कि अराजकता व्यवस्था का आभाव नहीं अपितु शक्ति का आभाव है। ये एक ऐसा व्यक्तिगत समाज है जिसका संगठन व संचालन उसके सदरचों के ऐच्छिक सहयोग से होता है। वे थोरों के उस कथन को मानते थे कि दही सरकार सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करती है।

विश्व शांति की आकांक्षा रखने वाले संसार के राजनीतिज्ञ ऊपर से नीचे की ओर जाने वाली योजना बनाने की बात सोचते हैं, जबकि गाँधी जी की सारी योजना नीचे से ऊपर की दिशा में कल्प करने की थी। इसलिए उन्होने कहा स्वतंत्रता नीचे से प्रारंभ होगी चाहिए। ग्राम-स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथों में रहेगी। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डें' इस प्रकार 'ग्राम-स्वराज्य स्व-राज्य' की भावना का प्रतीक होगा। स्वराज्य से गाँधी का अभिप्राय था लोकसम्मति के अनुसार होने वाला शासन। यदि स्वराज्य हो जाने पर भी लोग अपनी हर छोटी बड़ी बात के नियमन के लिए सरकार का मुहँ ताकना शुरू कर दें, तो ऐसा स्वराज्य और सरकार किसी काम के नहीं होगी। ये व्यवस्था, बिना उच्चतर सत्ता के नियंत्रण के, व्यक्ति को निर्णयन प्रक्रिया में शामिल होने देगी। इस से गाँधी का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को उच्च बनाना था न की जीवनयापन के स्तर को। गाँधी ने जिस आदर्श राम-राज्य की कल्पना की वह विशुद्ध लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिसकी आधारभूत धारणायें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समानता तथा सामाजिक न्याय हैं। उन्होने केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को लोकतंत्र का निषेध माना। लोकतंत्रीय सरकार वो है जहाँ जनता, चेतन या अचेतन रूप में, शासन के क्रिया-कलापों में अपनी सहमति प्रदान करती है। गाँधी ने पाश्चात्य संसदीय लोकतंत्र का विरोध किया क्यों कि वह दलगत आधार पर संगठित व संचालित होता है। दलीय संगठन चूंकि केन्द्रीकृत होते है उनमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बनी रहती है, लोगों को अपने अनुसार प्रत्याशियों के चयन का मौका नही मिल पाता और पूंजीपतियों द्वारा पोषित दलों द्वारा प्रस्तावित उम्मीदवारों में से ही

चुनाव करना पडता है। संक्षेप में, मतदान के अलावा शासन संचालन में जनता की कोई भागीदारी नहीं होती। ऐसे में बहुसंख्यक दल अल्पसंख्यकों के ऊपर स्वेच्छाचारी शासन करता है। अत: युरोपीय देशों में जनता के पास राजनीतिक शक्ति तो रहती है परन्तु गाँधी के शब्दों में स्वराज्य नही रहता। गाँधी की रामराज्य की कल्पना में 'सर्वाधिक शक्तिमान व्यक्ति को जो अवसर प्राप्त होते हैं, वे निर्बलतम व्यक्ति को भी सुलभ हो।

गाँधी जी का राम राज्य (ग्राम-स्वराज्य) ग्रामीण गणतन्त्रों की संघात्मक व्यवस्था है, जिसमें सबसे निचले स्तर पर हर ग्रामीण जन-समूह एक स्वायत्तशासी इकाई का निर्माण करेगा। इस व्यवस्था में ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति जन-समूह के सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में भाग लेगा। शासन की मूलभूत इकाई एक आत्मनिर्भर तथा स्वायत्तशासी ग्राम होगा। ग्राम की सभी व्यवस्थायें ग्राम-पंचायत के द्वारा होगी। अपने वर्ष भर के कार्यकाल में पंचायत स्वयं धारासभा, न्यायसभा तथा व्यवस्थापिका का कार्य संयुक्त रूप में करेगी। पंचायत सदस्य प्रत्यक्ष रूप में जनता द्वारा चुने जायेंगे। निम्नस्तरीय संस्थायें उच्च स्तरीय संस्था के लिए प्रतिनिधियों को चुनेगी, इस तरह प्रत्येक स्तर की पंचायत अपने से निम्नतर स्तर की संस्था द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था होगी। इससे राजनीतिक दलबन्दी के आधार पर चुनाव करने में जो अनावश्यक खर्च होता है और झूठे राजनीतिक प्रचार होते हैं उन सबसे बचा जा सकेगा। गाँधी के इन विचारों का विकास बाद में विनोबा भावे व जयप्रकाश नारायण ने किया।

इस प्रकार अनगिनत गाँव पंचायतों होंगी, पंचायतों के समूह (circle) होगें, जो बड़े तो होते जायेंगे, परन्तु एक दूसरे के आधीन नहीं। यह व्यवस्था एक समुद्री वस्तु होगा जिसका केन्द्र सदैव व्यक्ति होगा, जो गाँव के लिए बलिदान देने के लिए तत्पर है। हर ग्राम, ग्रामों के लिए मिटने को तत्पर है और इस तरह सम्पूर्ण वृत्त व्यक्तियों से बनी इकाई बन जाता है जो समुद्री की प्रतिभा में भागीदार है और उसके वे अभिन्न अंग है। सबसे अन्तिम वस्तु की परिधि अन्दरूनी वृत्तों को दबाने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग नही कर सकेगी, बल्कि सबको शक्ति प्रदान करेगी और सबसे शक्ति ग्रहण भी करेगी। गाँधी की यह व्यवस्था आत्मनिर्भर ग्रामीण गणराज्यों के एक संकेन्द्रित मंडल की है जिसमें संकेन्द्र व्यक्ति होगा। इस से स्वशासन का अधिकार साकार होगा।

10.3.2 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

राजनीतिक सत्ता की भांति आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है। गाँधी ने अपने प्रसिद्ध 'आखिरी वसीयतनामे में कहा था कि भारत ने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली, लेकिन उसे ' 'अभी शहरों और कस्बों से भिन्न अपने सात लाख गांवों के लिए सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है' ' उनकी कल्पना का ग्राम-स्वराज्य मानव-केन्द्रित है जबकि पश्चिमी अर्थव्यवस्था धन केन्द्रित है। गाँधी ने धन, सम्पदा तथा उत्पादन का कुछ हाथो में सिमटना व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिए हानिकारक माना। औद्योगिकरण व बड़े पैमाने पर उद्योगों का विस्तार सत्ता के

केन्द्रीकरण तथा भ्रष्टाचार को जन्म देगा; इसीलिए विशेष तौर पर उन्होने उत्पादन के साधनो को विकेन्द्रित करने पर जोर दिया। देश में बेरोजगारी की समस्या का भी यही एक मात्र समाधान उन्हे नजर आया। उनका यह विचार इसलिए भी युक्तियुक्त था क्योंकि बडे पैमाने पर औद्योगिकरण के लिए विदेशी बाजार तथा ढेरी सारी पूंजी दोनो की आवश्यकता थी और यह उस समय भारत जैसे राष्ट्र के लिए सम्भव नही था। गाँधी की यह अवधारणा भारतीय व्यवस्था के गहन अध्ययन पर आधारित थी जहाँ उन्होने पाया कि काफी सारी सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समस्याओं का जन्म औद्योगिकरण के कारण हुआ है। बर्टरेंड रसैल ने गाँधी जी के विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए कहा है उन देशों में जहाँ औद्योगिकरण की प्रक्रिया की अभी शुरूआत है वही इस प्रक्रिया से उत्पन्न विसंगतियों से बचा जा सकता है। इन देशों की परम्परागत जीवनशैली को यदि एक दम से बदला जायेगा तो यह गलत होगा और उसके परिणाम भी घातक होंगे। बडे पैमाने पर उद्योगों का विस्तार निश्चित तौर पर राजनीतिक शक्ति को कुछ हाथों मे केन्द्रित करेगा क्योंकि यह औद्योगिकरण की प्रकृति में निहित है और शक्ति का यह केन्द्रीकरण लोकतंत्र की भावना के ही विरूद्ध है।

इन राजनीतिक परिणामों के अलावा भी गाँधीजी का मानना था कि बड़े उद्योगों का मानव व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि ये मनुष्य को उसकी जडों से उखाड़ देते हैं। पूरी औद्योगिक व्यवस्था में व्यक्ति मात्र एक पुर्जा बनकर रह जाता है। इससे कार्य करने की क्षमता की विविधता समाप्त हो जाती है, व्यक्ति प्रयास करना छोड़ देता है, उसकी अभिव्यक्ति कुंठित हो जाती है और स्वाभाविक विकास रूक जाता है। गाँधी जी का मानना है कि औद्योगिकरण से व्यक्ति की पहचान केवल सामूहिक रह जाती है क्योंकि वह अपने व्यक्तित्व को समूह के साथ जोड़ देता है। इससे सामूहिक हित में उसे किसी भी तरह के शोषण और ज्यादती को सहने की आदत पड़ जाती है। ऐसी समस्याओं का समाधान ढूंढने का काम फोरियर, सेन्ट साइमन व कार्ल मार्क्स ने भी किया परन्तु उनके चिन्तन में व्यक्ति की स्वतंत्रता का लोप हो गया। समाज को शक्ति प्रदान करने की प्रतिस्पर्धा में उनके चिन्तन में मनुष्य का अस्तित्व गौण हो गया। निःसंदेह निजी स्वामित्व वाली पूंजीवादी व्यवस्था सारी समस्या का मूल है, गाँधी इसी के साथ उत्पादन की तकनीक को भी समस्या का कारण मानते हैं। इसीलिए वे बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण करने के बजाय छोटे स्तर पर उत्पादन के पैरोकार थे। बड़ी संख्या में उत्पादन पूंजीवाद, शोषण और भ्रष्टाचार को जन्म देगा।

गाँधी जी 'स्वराज्य, स्वदेशी, सर्वोदय तथा विकेन्द्रित लोकतंत्र के समर्थक थे क्योंकि उसमें सत्ता पदक्रम का कोई स्थान नहीं है। उनके ये विचार आज की परिस्थितियों में नितांत उपयोगी हैं क्योंकि इससे ही एक समतावादी समाज की स्थापना में मदद मिलेगी । यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में मदद करेगा। अस्तेय और अपरिग्रह को अपने आर्थिक विचारों में प्राथमिकता देते हुये गाँधी जी ने जोर दिया 'कि हर मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो और उत्पादन प्रणाली इस लक्ष्य से प्रेरित हो। सादा जीवन, न्यूनतम आवश्यकतायें, आत्मनिर्भरता, घरेलू कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, मशीनीकरण व औद्योगिकरण को कम से कम स्वीकारना व सहकारिता को प्रोत्साहन देना गाँधी जी के चिन्तन के मूल मंत्र थे। उनकी ग्राम स्वराज्य, की व्यवस्था में भी पंचायत का मूल कर्त्तव्य ग्रामवासियों की मूलभूत भौतिक

आवश्यकताओं को पूरा करना है। खाद्यान्न, कपास, मनोरंजन व खेल के मैदान, पानी व शिक्षा की व्यवस्था जैसी जिम्मेदारी पंचायत की है।

10.4 गाँधी के विचार तथा भ्रष्टाचार

भारत की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों में गाँधी जी लघु और कुटीर उद्योगों को ही सही मानते थे, वे बडे कारखाने लगाये जाने के विरूद्ध थे क्योंकि जहां ऐसा होगा वहां पूंजी: का केन्द्रीकरण होगा व शोषण/भ्रष्टाचार बढेगा। गाँधी जी इन सभी के विरोधी थे। उनके अनुसार वर्तमान पाश्चात्य पूंजीवाद व औद्योगिक सभ्यता में न तो नैतिकता है, न धर्म, केवल शुद्ध भौतिकतावाद है हिन्द स्वराज में उन्होने इस सब के लिए मशीनों को दोषी माना है। उन्होंने मशीनों की तुलना सांपों के बिल से की है जो एक ही जगह सैकडों होते हैं और पूरी व्यवस्था का सर्वनाश कर देते हैं। डॉक्टर व वकील के पेशे को भी अनावश्यक व हानिकारक माना। वकालत में व्यक्ति का एक मात्र उद्देश्य धन कमाना होता है, ये विवाद बढ़ाते हैं और जोंक की तरह गरीब का खून चूसते हैं। इससे सबसे ज्यादा नुकसान देश को हुआ, और अंग्रेजों ने अपने शासन को वैध साबित करने के लिये न्यायालय स्थापित किये। उपर्युक्त सभी से कुटीर उद्योग, आत्मनिर्भरता व नैतिकता को नुकसान हुआ है और स्वार्थजनित भ्रष्टाचार को बढावा मिला है।

देखा जाये तो आज जीवन में साधनों की पवित्रता नष्ट हो गई है। बढ़ती हुई जनसंख्या और रोजगार के घटते अवसरों से व्यक्ति की न्यूनतम जरूरत भी पूरी नहीं हो पा रही है ऐसे में मनुष्य उलटे-सीधे किसी भी तरह के कार्य करने लगा है आत्मनिर्भरता के अभाव में भ्रष्टाचार को बढावा मिला है। इसके लिए राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण काफी हद तक जिम्मेदार रहा है। ऐसा नहीं है कि देश और समाज में नैतिक पतन आज हुआ है, गाँधी जी ने स्वतंत्रता से पहले ही मई 1939 में भ्रष्टाचार पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करी थी "I would go to the length of giving the whole congress a decent burial, rather than put up with the corruption that is rampant" अर्थात भ्रष्टाचार में सहयोग या लिप्त होने की अपेक्षा मैं पूरी की पूरी कांग्रेस पार्टी को दफन करना बेहतर समझूंगा। उनकी यह टिप्पणी उस समय की है जब भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत कई प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी थी और उनके मंत्रियों के खिलाफ भ्रष्टाचार' के मामले उजागर हुए थे।

आज हमारा लोकतंत्र गाँधी जी की पंचायती लोकतंत्र की धारणा से कोसों दूर है। गाँधी ने जिस पश्चिमी लोकतंत्र का विरोध किया, हमारी राज व्यवस्था उसी को परिलक्षित करती है। सही अर्थों में इसमें न लोकतंत्र है और न हीं विकेन्द्रीकरण करती है। यही निर्दलीय लोकतंत्र तो दूर, संसदीय लोकतंत्र का भी विकृत रूप सामने आ रहा है। यहाँ भ्रष्टाचार कैंसर जैसी व्याधि के रूप में फैला चुका है। स्वतंत्र भारत में गाँधी के अनुयायियों ने ही भ्रष्टाचार पर टिप्पणी को दरकिनार कर दिया है, यद्यपि सभी भ्रष्टाचार तथा भाई-भतीजावाद की कमियों से पूरी तरह वाकिफ है। मनुस्मृति - VII 7143 में कहा गया है कि जिस शासक के शासन में शासन भ्रष्ट लोगों द्वारा संचालित होता है वह शासक मृत समान है। मनु आज भले ही हमें प्रासंगिक न लगें परन्तु यह निश्चित है कि शासन का अधिकार सत्ता में बैठे लोगों को भ्रष्ट होने का अधिकार नही देता है।

हमारे देश में अब राजनीतिक दलों की संख्या में निरंतर विस्तार हो रहा है ऐरने में निर्दलीय लोकतंत्र की किसी भी तरह संभावना नजर नहीं आती जिसका सपना गाँधीजी ने देखा तथा विनोबा भावे व जयप्रकाश नारायण ने विस्तार किया। दलीय नेत्रतत्व अवसरवादिता का शिकार बना है, ऐसे में ये दल निरंतर बनते बिगड़ेते रहते हैं। राजनीति को नैतिकता व आध्यात्मिकता का आधार गाँधी जी ने दिया था और राजनीति को जनसेवा कहा था, वो आज कोरा ढोंग नजर आता है। गाँधी की पंचायती राज व्यवस्था जिला-स्तर तक जरूर अस्तित्व रखती है परन्तु वो भी उनकी धारणा के अनुरूप नही ढल सकी। केन्द्रीय नियंत्रण उसकी भावना को ही मटियामेट कर देने पर तुला है। हर व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने में लगा है जबकि राजनीतिक समाज का लक्ष्य व्यक्ति की आत्मानुभूति है और उसी के द्वारा वह समाज की सेवा कर सकता हैं। गाँधी जी का मत था कि कोई भी अधिकार अलंघ्य और निरपेक्ष नही है, उस पीछे सबसे बडी मर्यादा सत्य व अहिंसा के कर्त्तव्य पालन की है। अधिकारों का क्षेत्र व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक है। स्वंतत्रता से उनका अर्थ है कि व्यक्ति, समाज के हित के लिये, अपने हितों का उत्सर्ग कर दे। स्वराज्य ही सबसे बड़ी स्वतंत्रता है। स्वराज्य का आधार नि:स्वार्थ कर्म और ऐच्छिक सेवा की भावना है, जहाँ बाह्य प्रतिबंधों का अभाव है और व्यक्ति जो प्रतिबन्ध स्वयं अपने ऊपर लगाता है वे अन्तरात्मा से उत्पन्न होते हैं। आजीविकार्थ श्रम के सिद्धान्त में गाँधी ने स्पष्ट किया की शारीरिक श्रम करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होना चाहिए, चाहे तो किसान हो, मजदूर बुद्धिजीवी या फिर उद्योगपति। कोई भी व्यक्ति जो शारीरिक श्रम नहीं करता उसे भोजन का भी अधिकार नहीं होना चाहिए। शारीरिक श्रम से व्यक्ति के बौद्धिक कार्य की गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी। इस से अन्य लाभ यह होगें कि

- श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होगी
- बौद्धिक व शारीरिक श्रम के बीच भेद समाप्त होगा।
- स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होगा।
- उत्पादन बढेगा।
- ऊँचा-नीचा, निम्न-श्रेष्ठ का भेद मिटेगा और समानता को बल मिलेगा।

गाँधी का यह सिद्धांत सादा जीवन, न्यूनतम आवश्यकताओं तथा आत्मनिर्भरता से जुड़ा है। गाँधी का मानना था कि किसी भी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक कोई भी चीज नहीं रखनी चाहिए। वह व्यक्ति जो बिन शारीरिक श्रम के धन सम्पत्ति का स्वामी है उसे ऐसे धन के स्वामित्व का अधिकार नहीं होना चाहिए। यहां तक की यदि व्यक्ति को विरासत में पुश्तैनी जायदाद व सम्पत्ति मिलती है तो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं के अतिरिक्त शेष सम्पत्ति का वह केवल संरक्षक हो सकता है, स्वामी नहीं। ऐसी पूंजी को उसे सार्वजनिक हित में ही प्रयोग में लाना चाहिए।

10.5 सारांश

गाँधी का सम्पूर्ण चिंतन मानव केन्द्रित है, समाज व राज्य का स्वरूप भी व्यक्ति को केन्द्र में रखकर निर्धारित किया गया है। दार्शनिक अराजकतावादी होने के कारण गाँधी व्यक्ति पर किसी बाह्य सत्ता का नियंत्रण नहीं स्वीकार करना चाहते। उनके लोकतंत्र की इकाई छोटी है

क्योंकि इकाई जितनी छोटी होगी पारदर्शिता उतनी ही अधिक होगी और भ्रष्टाचार की संभावना भी नहीं रहेगी। ग्राम स्वराज्य में ग्राम ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी महत्त्व की चीजों के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं होगा। गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। सत्याग्रह के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होंगे। कोई भी दूसरों के शोषण के लिए चलाये जाने वाले व्यापार का हिस्सा नहीं हो इसी कारण उन्होंने औद्योगिकरण व बड़े कारखानों का विरोध किया। गाँधी का विश्वास था कि औद्यौगिकरण से आर्थिक केन्द्रीकरण की प्रवष्त्ति को बढ़ावा मिलेगा, पूंजीवाद के विस्तार से असमानता, प्रतिस्पर्धा तथा भ्रष्टाचार की उत्पत्ति होगी। अत: इस पूरी व्यवस्था में पारदर्शिता लाने, समानता स्थापित करने के उद्देश्य से गाँधी ने ग्राम स्वराज्य में आत्मनिर्भरता पर जोर दिया।

गाँधी ने कहा है कि यदि समान अवसर दियें जायें, तो हर व्यक्ति समान रूप से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। सच्चे नीतिधर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता, बल्कि सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है। उन्होंने कहा कि मेरा आदर्श तो समान वितरण का है पर चूंकि वह पूरा नहीं होने वाला इस लिए मैं न्यायपूर्ण वितरण के लिए कार्य कर रहा हूँ। जब तक मुट्ठी भर धनवानों तथा करोडों भूखे रहने वालों के बीच जमीन आसमान का अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज व्यवस्था कायम नहीं होगी। आज की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बेकारी, गरीबी व कंगाली से ग्रसित है जिसने प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा वर्ग-विग्रहों को जन्म दिया है, ये समाज को धुन की तरह कुरेद कर खा जाते हैं। कारखाने के ऊबाने वाले, एक से काम से आदमी की आत्मा मर जाती है, काम की इच्छा समाप्त हो जाती है और ऐसे में वो काम से भागने का मिथ्या प्रयास करता है। ऐसे में करोड़पति तो वैभव की निरूद्देश्य जिंदगी जीते है वहीं कड़ा शारीरिक परिश्रम करने वाले श्रमिक को भरपेट खाना भी नहीं मिलता। ऐसे में आर्थिक समानता का विकल्प ट्रस्टीशिप है अर्थात् आवश्यकता पूरी होने पर अर्जित या पुश्तैनी सम्पत्ति का वह व्यक्ति, प्रजा की ओर से ट्रस्टी बने और सर्वहित में सद्व्यय करें।

ग्राम स्वराज्य के द्वारा गाँधी ने ऐसी व्यवस्था का जिक्र किया है जहाँ सारे विकारों का स्वत: समाधान संभव है। उन्होंने कहा कि जहाँ केन्द्रीकरण है, चाहे वह राज्य या सरकार के रूप में है अथवा औद्योगिकरण के रूप में, उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसा व बल अनिवार्य हो जाता है। परंतु जहाँ समता के कारण चोरी व लूटने को कुछ नहीं, ऐसे सादे घरों के लिए पुलिस की भी जरूरत नहीं। रक्षकों कि जरूरत बड़े-बडे धनवानों के महल और बडे कारखानों के लिये होती है। पूंजीपति और राजनेताओं का गठबंधन ऐसा है जो वर्तमान व्यवस्था मे अपनी यथास्थिति बनाये रखने के लिए बल तथा अनैतिक साधनों का प्रयोग करते है। ऐसे में राज्य अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार को बढावा देने का माध्यम बन जाता है। गाँवों को केन्द्र में रखकर जिस आत्मनिर्भर भारत का निर्माण होगा वही बाहरी सत्ता अनावश्यक होगी और विदेशी आक्रमण का खतरा भी कम होगा। कारखानों की सभ्यता पर अहिंसा का निर्माण संभव नहीं, वह केवल स्वावलंबी व स्वाश्रयी ग्रामों में ही संभव है। केवल ग्रामीण अर्थरचना ही शोषण का त्याग करती है। ऐसे में स्वदेशो एक सार्वभौम धर्म है।

ऐसी विकेन्द्रित लोकतांत्रिक व्यवस्था में केन्द्र व्यक्ति होगा परंतु उसका पदक्रम नहीं होगा। इसके केन्द्र में व्यक्ति व परिधि पर उसका उच्चतर स्वरूप होगा, ऐसे में केन्द्र परिधि से और परिधि केन्द्र से अपनी सत्ता प्राप्त करेगी। इस तरह दोनों के बीच परस्पर आत्मनिर्भरता होगी। शिक्षा का भी उद्देश्य आत्मा की उच्चतम क्षमताओं का सर्वांगीण विकास है। अक्षर इंसान शिक्षा का हिस्सा जरूर है परंतु उसका लक्ष्य नहीं।

इस तरह गाँधी ने अपनी ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा के द्वारा न केवल राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया है अपितु एक ऐसी राजविहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के बारे में बताया है जो न केवल आत्मनिर्भर है बल्कि हर तरह से एक समतावादी समाज का आधार है। उसमें न तो कोई छोटा-बड़ा या गरीब-अमीर है और न ही षोशक या षोशित है। आजीविकार्थ श्रम सिद्धांत के द्वारा उन्होंने सारी असमानता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। गाँधी ने माना सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होगा। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए गाँधी ने सदैव साधनों की पवित्रता को अहम् माना। साधन पवित्र होने पर हमें लक्ष्य की चिंता नहीं होती क्योंकि सही रास्ते पर चलकर कभी यात्री गलत मंजिल पर नहीं पहुँचता। बार-बार उन्होनें इसी कारण साधनों की शुचिता को बनाये रखने पर जोर दिया। भारत की आजादी की लड़ाई में भी क्रांतिकारियों से उनके मतभेद का मुख्य कारण क्रांतिकारियों के हिंसात्मक साधन थे। गाँधी का सम्पूर्ण चिंतन सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह जैसे उच्च आदर्शो से अनुप्राणित हैं और उन्होंने कभी भी इस विषय को लेकर समझौता नहीं किया। उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति में साधनों की पवित्रता हमेशा उनके विचारों का अहम् हिस्सा और आधार रही।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी जी के चिंतन के मूल तत्वों की व्याख्या करते हुए उन्हे स्पष्ट करें।
2. गाँधीजी के विचारों में विकेन्द्रीकरण के महत्व को समझाये। उनके विचारों को किरन हद तक
3. अराजकतावाद की श्रेणी में रखा जा सकता?
4. गाँधी जी प्रत्यक्ष रूप में भ्रष्टाचार जैसे विषय की चर्चा नहीं करते परंतु उनकी ग्राम स्वराज्य की अवधारणा भ्रष्टाचार विरोधी है। स्पष्ट करे।

10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेरे सपनों का भारत गाँधी जी, संग्राहक आर.के. प्रभु, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
2. सर्वोदय गाँधीजी सम्पादक भारतन कुमारप्पा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद
3. ग्राम - स्वराज्य गाँधीजी, संग्राहक हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद
4. हिन्दी-स्वराज्य गाँधी नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहदाबाद
5. सत्याग्रह-विचार और युद्ध नीतिः काका कालेलकर, गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा

इकाई - 11

गाँधी एवं राष्ट्रीय एकीकरण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 राष्ट्रीय एकीकरण

11.3 गाँधी एवं राष्ट्रीय एकीकरण

- 11.3.1 राष्ट्र राष्ट्रीयता एवं भारतीय राष्ट्रीयता
- 11.3.2 साम्प्रदायिक एकता
- 11.3.3 सब धर्मो की आत्मा एक है
- 11.3.4 साध्य एवं साधन की पवित्रता
- 11.3.5 सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह
- 11.3.6 सर्वोदय
- 11.3.7 लोकतंत्र
- 11.3.8 राष्ट्रभाषा
- 11.3.9 अस्पृश्यता
- 11.3.10 नारी समाज
- 11.3.11 विद्यार्थी एवं युवा
- 11.3.12 व्यक्ति

11.4 वर्तमान भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएँ एवं गाँधीवादी विकल्प

11.5 सारांश

11.6 अभ्यास प्रश्न

11.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

भारतीय समाज एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषता है - विविधता में एकता। किन्तु विदेशी आक्रांताओं द्वारा अपने स्थार्थ पूर्ति हेतु राष्ट्रीय एकता का हनन किया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी के राष्ट्रीयता की दिशा में रचनात्मक प्रयासों के फलस्वरूप भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई। किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् आज भी राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में क्षेत्रियतावाद प्रान्तीयता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि अनेक चुनौतियाँ विद्यमान है। इस संदर्भ में गाँधी के विचार एक महत्त्वपूर्ण एवं उपयुक्त विकल्प के रूप मे है। अत: प्रस्तुत ईकाई

का उद्देश्य राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में गाँधी चिन्तन के विकल्प का विश्लेषण करना है। इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि :-

- गाँधी का राष्ट्र और राष्ट्रीय एकीकरण से क्या अभिप्राय है।
- गाँधी द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में किये गए प्रयास कौन-कौन से हैं।
- वर्तमान राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं के संदर्भ में गाँधीय विकल्प क्या हैं।

11.1 प्रस्तावना

गाँधी भारतीय स्वाधीनता के महान नायक, इतिहास प्रवर्तक, सत्याग्रह एवं अहिंसा पर आधारित सविनय अवज्ञा जनआन्दोलन के प्रणेता, अहिंसा के पुजारी, मानवता के संरक्षक थे। पूरी दुनियाँ में सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, सनातन प्रक्रिया, करूणा के प्रति लगाव, मानवता एवं आबादी की एक जुटता, औपनिवेशिक दासता एवं नस्लवाद से स्वाधीनता का संदेश देने तथा दुनियाँ को एक नया रास्ता दिखाने के लिए इन साधनों का व्यापक स्तर पर इस्तेमाल करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। गाँधी ने इसी व्यापक एवं गहन सोच के आधार पर ही शान्तिपूर्ण आन्दोलन द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय एकता जागत करके भारत को सदियों की दासता की बेडियो से मुक्त कराया। वे भारत ही नहीं किसी भी देश की स्वाधीनता के पक्षधर थे। इसी आधार पर उन्हें पूरी दुनियाँ में महान आत्मा के रूप में जाना जाता है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान ने एक राजनीतिक केन्द्र की स्थापना की और इस विचार को बल मिला कि हम सब भारतवासी है। हम सबका एक ही संविधान, एक ही राष्ट्रीय ध्वज और एक ही राष्ट्रीय चिन्ह है। यद्यपि भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध आदि में भारतीय जनता ने एकता का परिचय दिया था। जो विदेशियों के साथ हमारे लिए भी आश्चर्य जनक था। किन्तु फिर भी स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत में विदेशी शासन की अन्तेष्टि के साथ ही राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकता का सूत्र लुप्त हो गया और देश के विभिन्न भागों में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण करने लगी। परिणाम स्वरूप भारत में साम्प्रदायिकता जातिवाद, हिनोत्मक गतिविधियाँ, क्षेत्रियतावाद भाशावाद सामाजिक-सांस्कृतिक भेद आदि अनेकानेक समस्याएँ एवं भारत की एकता का गंभीर खतरा बन गई है। वर्तमान में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं के निदान तथा राष्ट्रीय एकता की भावना में इजाफा करने के लिए क्योंकि गाँधी चिंतन एव कृतित्व सर्वधर्म समभाव, शान्ति एवं अहिंसा तथा व्यक्ति के अधिकार एवं दायित्व अथवा साहस एव साधन की पवित्रता एवं संतुलन के आधार पर राष्ट्रीय एकता का शंखनाद करता है। गाँधी ने भारत में विभिन्नता (जाति, धर्म, समुदाय, वर्ग) की माला में सद्भाव, दायित्व पालन, व्यक्ति, युवा महिलाओं की समानता सांप्रदायिक एकता के मोती पिरोए है जिसमें राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में सकारात्मक प्रभाव पतिष्ठित होते है। गाँधीय विकल्प ही सर्वश्रेष्ठ है। अत: प्रस्तुत ईकाई में गाँधीय चिन्तन का राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में अध्ययन किया जाएगा।

11.2 राष्ट्रीय एकीकरण

वस्तुत: राष्ट्रीय एकीकरण या एकता एक भावना है। एक नारा है। सामान्यत: इसकी कोई तकनीकी परिभाषा नही है। यद्यपि विभिन्न समाजशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और विद्वानों ने राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय एकीकरण को विभिन्न तरीकों से व्यक्त करने की चेष्टा की है। राष्ट्रीय एकीकरण का संबंध नागरिकों की मानसिक एकता तथा राष्ट्र प्रेम की भावना से है जिसके आधार पर एक देश के नागरिक अपने राष्ट्र के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को सदैव तैयार रहते है। राष्ट्रीय एकीकरण की भावना के बल पर ही देश के नागरिकों में आपस में सहनशीलता की भावना रहती है।

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार - ' राष्ट्रीय एकीकरण एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक प्रक्रिया है। इसके जनसाधारण के प्रति एकता, पारस्परिक अर्न्तनिर्भरता, सामान्य नागरिकता की भावना और राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना सन्निहित है। ' 'भारत में राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ है - सात के सभी लोगों में समरसत्ता, बंधुता और सहानुभूति का भाव उत्पन्न करना, सभी प्रकार के भेदभाव, जाति धर्म से ऊपर उठाकर राष्ट्र के गौरव और उनकी खुशहाली के मार्ग को प्रशस्त करना, भारत की संस्कृति में विविधता व भिन्नताओं के होते हुए भी एक दूसरे के प्रति उत्साह, उमंग व जीवंतता से परिपूर्ण अपने भाव रखना। सभी भारतीय एक ही मातृभूमि के युग है यही भावना रखना राष्ट्रीय एकता का लक्षण है।

11.3 गाँधी एवं राष्ट्रीय एकीकरण

गाँधी के स्वाधीनता प्राप्ति हेतु चलाए गए आन्दोलनों, विभिन्न समाचार-पत्रों, तथा सम्मेलनों में अभिव्यक्त विचारों में हम राष्ट्र, राष्ट्रीय एकीकरण संबंधी विचारों को समझा जा सकता है। यदि हम राष्ट्रीय एकीकरण से अभिप्राय - देशभक्ति, देशहित में बलिदान की भावना, नागरिकों में सहनशीलता, धैर्य, दूसरों के हित को प्रमुखता देकर सहअस्तित्व एवं सहिष्णुता की भावना को बढाना, पवित्र साध्य हेतु पवित्र साधन अपनाने के संदर्भ में करें तो गाँधी ने यंत्र-तंत्र अपने विचार एवं कर्मों द्वारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रीय एकीकरण को बढावा दिया है। उनके विचार निम्न बिन्दुओं में समझ सकते है -

11.3.1 राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं भारतीय राष्ट्रीयता

गाँधी के राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा भारतीय राष्ट्रीयता के संबंध में विचार अत्यन्त विस्तष्त, प्रजातांत्रिक एवं नैतिकता पर आधारित थे। उनके ये विचार व्यक्तिगत अनुभवों की पृष्ठभूमि में ही अंकुरित हुए है। भारतीय उदारवादियों की तरह ही 20वी सदी के प्रारंभिक दशक में ब्रिटिश साम्राज्य की न्यायशीलता में विश्वास था। आगे चलकर अनुभवों के आधार पर उनकी सोच परिवर्तित हो गई।

1892 में अपने भाई की नौकरी के संदर्भ में राजकोट में एक ब्रिटिश अधिकारी रो मिलने गए तब उन्हें अत्यन्त अभद्र, अशिष्ट ढंग से बाहर जाने को कहा। यह गाँधी के लिए आश्चर्यजनक था क्योंकि एक प्रतिष्ठित बेरिस्टर होने के नाते वे ब्रिटिश अफसर से सम्मानपूर्वक

व्यवहार की अपेक्षा रख रहे थे। बाद में दक्षिण अफ्रीका में 'कुली बेरिस्टर' के रूप में बर्ताव किया गया। एक प्रथम श्रेणी का टिकट होने पर भी उन्हें यूरोपीय लोगों के साथ उसमें बैठकर यात्रा करने की इजाजत नही दी गई। तीसरी श्रेणी के में डिब्बे जाने से इनकार करने पर उन्हें सामान सहित बाहर निकाल दिया। ऐसे और भी अपमानजनक अनुभव थे जिन्होंने उनके मन मस्तिष्क में स्पष्ट कर दिया कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारत स्वतंत्र नहीं है। अत: विदेशी शासन से स्वतंत्रता राष्ट्रीयता वाद और एकता के संबंध में उनके विचार का एक महत्वपूर्ण अवयव है। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सरकार के विरूद्ध भारतीयों को समान दर्जा दिलाने के लिए शान्तिपूर्ण आन्दोलन किया। 1908 में जुलुवासियों के विरूद्ध ब्रिटिश सरकार के नस्लवादी युद्ध के बाद साम्राज्यवादी नस्लवाद के प्रति उनकी वितृष्णा अब पुख्ता हो गई। राष्ट्रवाद संबंधी उनके विचारों का अखण्ड भाग बन गई।

सर्वप्रथम गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' में (1906) राष्ट्रवाद की चर्चा की। उन्होंने राष्ट्रवाद के स्थान पर स्वराज्य, स्वदेशी, भारतीय सभ्यता शब्द का इस्तेमाल किया है। उनका मानना था कि उनकी राष्ट्र संबंधी अवधारणा पाश्चात्य दृष्टिकोण से नितान्त भिन्न है - जो कि कभी-कभी सामूहिकतावादी, अखण्डित, आक्रामक एवं विदेशी द्वैष भावना से युक्त हो जाती है। भारत राष्ट्र के संबंध में गाँधी के विचार आध्यात्मिक, अहिंसापूर्ण, समष्टिपरक एवं शान्ति के आधार पर निर्मित थे। उन का अटूट विश्वास था कि अपने विविध वर्णों, धर्मो एवं संस्कृतियों के बावजूद भारत हमेशा से ही एक राष्ट्र रहा है। हालांकि पश्चिम ने इसे कभी स्वीकार नही किया है - भारत अंग्रेजों के आने से पहले से राष्ट्र के रूप में था। हमें एक ही भावना प्रेरित करती रही है। हमारी जीवन शैली एक सी थी। चूँकि हम एक राष्ट्र के रूप में थे इसी कारण ब्रिटिश यही ब्रिटिश भारत की स्थापना कर पाए।

गाँधी ने कहा है कि राष्ट्रीयतावाद कोई वस्तु नही है जैसा कि भारत के चारों कोनों में स्थित चार मठ प्रमाणित करते है। राष्ट्रीयतावाद विदेशी निर्मित वस्तु नही है। भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में गाँधी ने उन तर्को का विरोध किया जिसमें भारत में व्याप्त विभिन्न धर्मो के कारण उसे राष्ट्र नही माना जाता। उनका कहना है - वे सब लोग जो भारत में पैदा हुए हैं या यही रहते हैं - भारतीय है। भारत राष्ट्र के निवासी है। ब्रिटिश सरकार ने अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को बढा चढा कर प्रस्तुत किया है। भारतीयों ने भी लगातार फूट और विद्वेषपूर्ण झगड़ों से इसी तरह के प्रभाव को बढावा देने में सहयोग दिया है। यदि भाइयों में आपसी समझ हो तो कोई बाहरी व्यक्ति फूट के बीज वो ही नही सकता। उन्होंने बार-बार यही समझाया।

भारतीय सभ्यता के लिए गाँधी कहते है कि यह एक गहन. नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर खडी सभ्यता थी। जिसमें अपने ऊपर शासन करने वाले विदेशी शासकों तक के विरूद्ध नफरत की भावना को दूर कर दिया था। उन्हें यही रहने की इजाजत मिलती; बशर्त कि वे भारतीय सभ्यता के अनुरूप जीवनयापन करते। भारतीय सभ्यता मानव अधिकारों, स्त्री महत्व, प्रजातांत्रिक, प्रत्येक जाति, धर्म, बल के प्रति सम्मान व वर्ण के न्यूनतम प्रयोग पर आधारित थी।

गाँधी का मानना है कि भारत प्राचीनकाल से ही एक अखण्ड राष्ट्र रहा है। यंग इण्डिया में स्पष्ट किया कि भारतीय राष्ट्रीयता निष्ठा की क्रम परम्परा की नीति की अवधारणा के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति को अपने में समाहित कर लेती है। क्रम इस प्रकार है - परिवार के लिए आत्मोत्सर्ग, ग्राम के लिए परिवार का त्याग, राज्य के लिए अपने ग्राम का बलिदान, राष्ट्र के लिए अपने राज्य का एवं मानवता के लिए अपने राष्ट्र का बलिदान।

11.3.2 साम्प्रदायिक एकता

गाँधी भारत में साम्प्रदायिक एकता के बहुत बडे हियायती थे। उन्होंने अपना सारा जीवन इसे प्राप्त करने में तथा सुनिश्चित करने के लिए जिया और अन्तोत्गत्वा साम्प्रदायिक समन्वय की वेदी पर ही शहादत भी प्राप्त की।

गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' का एक पूरा अध्याय (अध्याय - X) साम्प्रदायिक प्रश्न से संबंधित लिखा है। उन्होंने भारत में साम्प्रदायिक विविधता होने पर भी एक राष्ट्र की प्रकृति का पक्षपोषण किया है। उनका मत है कि हिन्दू मुसलमान, पारसी और ईसाई - जिन्होंने भी भारत को अपने देश के रूप में अपनाया है। सभी भारतवासी है और उन्हें अपने हित के लिए एकता के सूत्र मे बांधकर ही रहना होगा। उन्होंने एक धर्म एक राज्य वाले सिद्धान्त पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए कहा कि - संसार के किसी भी कोने में एक राष्ट्रीयता और एक धर्म में एक सीमा नही है, न ही भारत में कभी इस प्रकार रहे है।

गाँधी इस तथ्य पर बल देते है कि हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में अच्छे संबंध केवल तब ही रह सकते है, जब दोनों ही पक्ष एक दूसरे के धर्म को समझने का सच्चा प्रयत्न करेगें। जो हिन्दू चीजो को गलत ढंग से समझना नही चाहते, उन्हे कुरान पढ़ना चाहिए। वे पायेंगें कि वहाँ पर ऐसे असंख्य अनुच्छेद है जो हिन्दुओं को वस्तुत: स्वीकार्य है और इसी तरह भगवद्गीता में ऐसे अनगिनत उद्धरण है जिनको मुसलमान नजर अंदाज नही कर सकते। जब दोनों सम्प्रदाय इस प्रकार करेगें तो ब्रिटिश शासक फूट डालने में सफल नही होगें। उन्होंने हिन्दुओं को साम्प्रदायिक एकता की पहल करने को कहा क्योंकि वे बहुसंख्या में है। हिन्दुओं को मुसलमानों में आई असुरक्षा की भावना को दूर करने के लिए और उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने हेतु प्रयास करने चाहिए।

गाँधी की साम्प्रदायिक एकता की पहल एवं प्रयासों के फलस्वरूप ही असहयोग आन्दोलन में दोनों ने भाग लिया। किन्तु 1922 में आन्दोलन स्थगन के बाद साम्प्रदायिक प्रश्न जटिल हो गया। यद्यपि गाँधी ने 1924 में समाचार-पत्र यंग इण्डिया में एक लेख माला-शीर्षक - 'हिन्दू-मुस्लिम तनाव - के कारण और उपचार' ' प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयास भी किए। हृदय की एकता (Heart-unity) जो गाँधी के अनुसार भारत में साम्प्रदायिक एकता के केन्द्र में है - उसे बढ़ाने, तपाने और घटाने के विकल प्रयासों के साथ गाँधी ने हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम सभी धर्मो के अच्छे तत्त्वों के बारे में अपने; समाचार-पत्रों, नवजीवन, हरिजनबंधु (गुजराती), यंग इण्डिया, हरिजन (अंग्रेजी) और हरिजन सेवक (हिन्दी) के विभिन्न स्तंभों में विस्तारपूर्वक लिखा। सभी धर्मो के उदात्त तत्वों को उजागर किया। उन्होंने

हिन्दुओं की सहनशीलता की प्रशंसा की तो बौद्ध धर्म के ब्रह्माण्ड के नैतिक प्रशासन के शाश्वत एवं अपरिवतर्नीय अस्तित्व को आग्रहपूर्वक पुन: घोषित किया। उन्होंने इस्लाम धर्म की एक ईश्वर वरदान, एकरूपता एवं मनुष्य के भाईचारे में विश्वास की प्रशंसा की। साथ ईसाई धर्म की पीड़ा और मानवता की सेवा करने वाली नीतियों की प्रशंसा और अभ्यर्थना की।

गाँधी ने न केवल वैचारिक अभिव्यक्ति की वरन साम्प्रदायिक एकता की हेतु व्यवहारिक प्रयत्न किए दक्षिण अफ्रीका व भारत में उनके आश्रय में आवासियों को साम्प्रदायिक एकता व्यवहृत करने की शपथ ली हुई थी। कांग्रेस दल के संगठन ने भी सब धर्मो के प्रति सम्मान करने की अपेक्षा की गई थी। 1940 के नौआखली दंगों के समय भी साम्प्रदायिकता की आग को शान्त करने अकेले ही गए थे। उन्होंने धमकियों के बावजूद अपनी जान की परवाह नही की और अपना कार्य किया।

इस प्रकार साम्प्रदायिक एकता संबंधी गाँधी के विचार एवं प्रयास अत्यन्त व्यवहारिक एवं प्रभावी है। वर्तमान में साम्प्रदायिकता से राष्ट्रीय एकीकरण में बडी बाधा के रूप में अस्तित्व में है अत: है कि हृदय की एकता में विश्वास करने वालो की संख्या बढे, ताकि असहिष्णुता, साम्प्रदायिकता सिमट का प्रभावहीन हो जाए और अंतत: खत्म हो जाए।

11.3.3 सब धर्मो की आत्मा एक है

धर्म के बारे में गाँधी का तात्पर्य किसी धर्म विशेष या परम्परागत धर्म से है। उस धर्म से है - जो सब धर्मो का आधार है, जिसके द्वारा हमें ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन होने है। धर्म का अभिप्राय मत समान्तर से नही है। इसका अर्थ है- विष्व की एक नियामक एक नैतिक व्यवस्था में विश्वास। यह धर्म हिन्दू धर्म इस्लाम और ईसाइयत आदि से परे है। यह इन सभी धर्मो को अपने-अपने स्थान से नही हटाता। यह उनके सामंजस्य लाता है और यर्थाथता प्रदान करता है। जिस प्रकार एक पेड़ का एक ही तना होता है किन्तु कई शाखाएँ और पत्ते होते हैं। उसी प्रकार सच्चा और पूर्ण धर्म केवल एक है। किन्तु मनुष्य के माध्यम से गुजरता हुआ वह अनेक हो जाता है। एक परमेश्वर में विश्वास सभी धर्मो का आधार है, किन्तु मैं ऐसे समय की कल्पना नही कर सकता जब संसार भर में केवल एक ही धर्म होगा। सिद्धान्त: चूंकि ईश्वर एक है इसलिए धर्म भी एक ' होना चाहिए किन्तु व्यवहार में मुझे अब तक कोई दो व्यक्ति ऐसे नहीं मिले जिनकी धारणा ईश्वर के संबंध में एक जैसी हो। अत: हमेशा ही संसार में विभिन्न धर्म रहेगें जो विभिन्न मानवीय स्वभाव और वातावरण के अनुरूप होंगे। उनका मत था कि, ' हम अपने धर्म को ईसाई, हिन्दू मुसलमान कह सकते है। हम चाहे कुछ भी हो हमारी इस विविधता के नीचे हमारी एकता स्पष्ट है और विविध धर्मो के मूल में एक धर्म है। मेरा अनुभव यह है कि किसी न किसी समय हम हिन्दु मुसलमान भाई-भाई सभी यह जान लेते है कि हम में परस्पर समानताएँ बहुत सी है और भिन्नता कम। 'मुझे प्रत्येक धर्म उतना ही प्रिय है जितना हिन्दू धर्म।... ... धर्म परिवर्तन का विचार मेरे मन में नही आ सकता। हमें हिन्दू को और अच्छा हिन्दू बनने में सहायता करनी चाहिए, मुसलमान को और अच्छा मुसलमान और ईसाई को और अच्छा इंसान बनने में।..... हमें अपने अन्दर से यह दम्भ मिटा देना चाहिए कि

हमारा धर्म अधिक सच्चा है और दूसरे का कम सच्चा है। दूसरे सब धर्मो के प्रति हमारा दृष्टिकोण साफ और ईमानदारी का होना चाहिए। सत्य एवं सदाचार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। प्रार्थना एक आध्यात्मिक अनुशासन है। अनुशासन एवं संयम ही पशु से हमें पृथक करता है और मनुष्य बनाता है। अत: दिन का प्रारम्भ प्रार्थना से करें। स्वैच्छा से किया गया संयम मजबूरी नही होता है..... विश्व की सभी चीजों - सूर्य, चन्द्रमा और तारे भी कुछ नियमों के अनुसार चलते है। इन नियमों के नियमक प्रभाव के बिना यह संसार एक क्षण भी नही चल सकता। यदि आप अपने ऊपर किसी न किसी प्रकार का अनुशासन नही रखेंगे तो आप जीवित नही रह सकेंगे। " प्रार्थना से मन की शान्ति प्राप्त होती है यह गाँधी की अनुभव सिद्ध बात है।

इस प्रकार गाँधी द्वारा सब धर्मो की एकता का विचार तथा आध्यात्मिक नैतिकता, प्रार्थना के विचार वर्तमान में राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में सकारात्मक योगदान के प्रतीक है।

11.3.4 साध्य एवं साधन की पवित्रता.

गाँधी ने इस सिद्धान्त को नकार दिया कि साध्य की प्राप्ति के लिए कोई भी साधन उचित है। भावना की पवित्रता ही काफी नही है। साधनों का पवित्र होना भी जरूरी है।
गाँधी के मतानुसार साधन व साध्य परिवर्तनीय शब्द है। साधन की उपमा बीज से दी जा सकती है और साध्य की वृक्ष से, जो अविच्छिन्न संबंध बीज और वृक्ष के बीच है, वही साधन और साध्य के बीच है। साधन ही सब कुछ है। जैसे साधन वैसा साध्य साधन और साध्य के बीच उन्हें अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है। अधिकार का सच्चा स्त्रोत कर्त्तव्य है।

इस प्रकार यदि साध्य व साधन पवित्र होते है, तो परिणाम भी पवित्र ही प्राप्त होंगे।

11.3.5 सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह.

गाँधी के दो मूल सिद्धान्त - सत्य एवं अहिंसा - उनके एक-एक विचार, शब्द एवं कार्य में पूर्ण रूप से व्यक्त होते है। मन वचन कर्म से उन्होंने सत्य की साधना की और विश्व के समक्ष उन्होंने यह घोषित किया कि 'सत्य ही ईश्वर है। ' सत्य और अहिंसा एक दूसरे से पृथक नही किए जा सकते। वे एक ही सिक्के के दो पहलु है। सत्य साध्य है और अहिंसा साधन है। साधन तो वही हो सकता है जो हमारी पहुँच के अंदर हो और इसलिए अहिंसा हमारा परम कर्त्तव्य है। यदि साधन का ध्यान रखते है तो देर सबेर साध्य को प्राप्त कर लेना निश्चित है। हमारे मार्ग में चाहे जितनी बाधाएँ आए, ऊपर रो देखने में चाहे जितनी विफलताएँ मिले हमें सत्य की खोज नही छोड़नी चाहिए। सत्य जिसके अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नही; क्योंकि वास्तव में सत्य स्वयं ईश्वर है।

समाज का संगठन एवं संचालन अहिंसा के तरीके से नही हो सकता गाँधी इस मत से सहमत नही है। परिवार में जब पिता अपने बिगड़े लड़के को तमाचा लगाता है, तो लड़का बदला लेने को नही सोचता वह पिता की आज्ञा का पालन उस तमाचे के प्रतिरोधक प्रभाव के कारण नही करता, बल्कि इसलिए करता है कि वह अपने पिता के आहत प्रेम को पहचानता है। गाँधी के विचार में यह उस तरीके का एक प्रतीक है जिस तरीके से समाज का संचालन होता है या

होना चाहिए। जो बात परिवार पर लागू होती है वह समाज पर भी लागू होनी चाहिए। क्योंकि आखिरकार समाज भी तो परिवार का ही रूप है।

चाहे व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र सबकी मुक्ति अहिंसा के मार्ग पर ईमानदारी पूर्वक चलने में है। यह मार्ग केवल ऋषियों अथवा संतों के लिए नही वरन् सर्वसाधारण के लिए भी है। अहिंसा मानव जाति का नियम है और यह पशुबल से कहीं अधिक महान तथा श्रेष्ठ है। यह स्वाभिमान व आत्म सम्मान की रक्षा करती है। अहिंसा उच्च कोटि की सक्रिय शक्ति है।

अहिंसा के मार्ग का पहला कदम है कि हम अपने दैनिक जीवन में परस्पर सच्चाई, विनम्रता, सहिष्णुता और प्रेममय दयालुता का व्यवहार करें। केवल अहिंसा वैद्य विधि है। हिंसा कभी वैद्य नही हो सकती। यहाँ विधि से आशय मानव निर्मित विधि से नही वरन् प्रकृति द्वारा मानव के लिए निर्मित विधि से है। ईश्वर में जीती जागती आस्था न हो तो अहिंसा में जीती जागती आस्था हो ही नही सकती। जिस प्रकार किसी अंधे से सुन्दर दृश्यों का आनन्द लेने के लिए कहना व्यर्थ है। उसी प्रकार किसी कायर से अहिंसा का धर्म अपनाने को कहना बेकार है। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है। अहिंसा रेडियम की तरह काम करती है। संघटिक अंगवृद्धि में स्थापित रेडियम की अति सूक्ष्म मात्रा निरंतर चुपचाप तब तक काम करती रहती है जब तक कि रोगग्रस्त ऊतक (Tissue) के समूचे पिंड को स्वस्थ ऊतक में नही बदल देती। इसी प्रकार थोडी सी सच्ची अहिंसा चुपचाप सूक्ष्म और अदृश्य रूप से काम करती है ओर समूचे समाज का कायाकल्प कर देती है। हिंसा एवं अहिंसा के द्वन्द में अन्ततः विजय अहिंसा की हुई है।

चरित्र बल की पूंजी के बिना सत्याग्रह का संघर्ष असंभव है। सत्य के साथ-साथ यदि हम अहिंसा को अपनाकर चले तो दुनियाँ को अपने कदमों में झूका सकते है। सत्याग्रह का सार है - 'राजनीतिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवन में सत्य और विनय का प्रयोग। सत्याग्रह सत्य की अथक खोज और उस तक पहुँचने का दृढ़ संकल्प है। सत्याग्रही की मंशा कभी भी बुराई करने वाले को परेशान करना नही होता। वह उसमें भय पैदा करने नही, बल्कि उसके हृदय को जीतकर उसे सुधारने की कोशिश करता है। सत्याग्रही का उद्देश्य बुराई करने वाले के साथ जोर जबरदस्ती करना नही, बल्कि प्रेम के बल पर उसे सही रास्ते पर लाना होता है उसे अपने हर काम में दिखावे से बचना चाहिए। वह जो कुछ करता है, सहज रूप से और अन्तः के विश्वास सेर प्रेरित होकर करता है। अहिंसा हिंसा से लाख गुण श्रेष्ठ है। क्षमा दण्ड से अधिक पुरुषोचित है। क्षमा वीरों का आभूषण है। अगर दण्ड न देना, तभी क्षमा माना जाएगा जब दण्ड देने की शक्ति हो। किसी असक्षम व्यक्ति की क्षमा का कोई मतलब नही है। क्रोध एवं विद्वेष से रहित कष्ट सहन रूपी सूर्य के सामने कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाता है और घोर से घोर अज्ञान का अंधकार भी छंट जाता है।

इस प्रकार सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह, व्यवहार परिवर्तन तथा अपनी मांग, हितों की पूर्ति के महत्वपूर्ण एवं नैतिक साधन व माध्यम है जिसमें संकीर्णता व द्वेष के स्थान पर प्रेम व सहनशीलता का मार्ग प्रशस्त होता है।

11.3.6 सर्वोदय

गाँधी मानव की अनिवार्य एकता में विश्वास करते थे। अत: उनका मानना था कि अगर एक आदमी को आध्यात्मिक लाभ मिलता है तो उसके साथ सारी दुनियाँ का लाभ होता है, और अगर एक आदमी का पतन होता है तो उस सीमा तक सारी दुनियाँ का पतन होता है।

मनुष्य का चरम ध्येय ईश्वर की प्राप्ति है और उसके सभी राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक कार्यकलाप ईश्वर से साक्षात्कार के इस चरम ध्येय द्वारा ही निर्देशित होना चाहिए। सभी मानवों की प्रत्यक्ष सेवा इस प्रयास का अनिवार्य अंग है क्योंकि ईश्वर प्राप्ति का उपाय यही है कि हम उसे इसकी सृष्टि में ढूढें और उसके साथ एकाकार हो जाए। यह मानवमात्र की सेवा करके ही किया जा कसता है। मैं सृष्टि का अंश हूँ और ईश्वर शेष मानवता से पृथक नही किया जा सकता।

मेरे देशवासी मेरे निकटस्थ पडौसी है। वे इतने लाचार साधनहीन और जड हो गए है कि मुझे अपना सारा ध्यान उनकी सेवा ही केन्द्रित कर देना चाहिए। यदि मैं अपने आपको यह विश्वास दिला सकता कि ईश्वर प्राप्ति हिमालय की गुफा में होगी, तो मैं तत्काल वहाँ के लिए प्रस्थान कर देता। लेकिन मैं जानता हूँ कि मानवता से पृथक ईश्वर के दर्शन कहीं नही हो सकते। मैं जानता हूँ कि मानवता से पृथक ईश्वर के असत्य रूप है कभी वह मुझे चरखे में दिखाई देता है कभी साम्प्रदायिक एकता में और कभी छुआछुत के विवरण में इस प्रकार जिधर-जिधर मेरी अंतरआत्मा मुझे संचालित करती है, वहीं-वहीं मैं ईश्वर के साथ सम्पर्क स्थापित करता हूँ।

गाँधी के सर्वोदय की धारणा राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में एक सकारात्मक एवं मानवतावादी पहल एवं माध्यम है।

11.3.7 लोकतंत्र

लोकतंत्र की भावना कोई यांत्रिक नही है जिसे ढांचे का उन्मूलन करके समायोजित किया जा सके। उसके लिए हृदय परिवर्तन आवश्यक है। उसके लिए भाईचारे की भावना का विकास आवश्यक है। सर्वोच्च प्रकार की स्वतंत्रता में सर्वाधिक अनुशासन तथा नम्रता भी निहित होती है जो स्वतंत्रता अनुशासन तथा विनय से प्राप्त होती है उसे कोई छीन नही सकता। उच्छृंखलता, स्वतंत्रता, अशिष्टता की निशानी है जिनमें व्यक्ति की अपनी तथा पड़ौसियों की भी हानि होती है। लोकतंत्रवादी को पूर्ण रूप से निस्वार्थ होना चाहिए उसे चाहिए कि वह जो कुछ भी सोचे विचारे वह अपने का यो अपने दल को दृष्टि में रखकर नही, बल्कि एक मात्र लोकतंत्र को दृष्टि में रखकर लोकतंत्र के संबंध में गाँधी की धारणा यह है कि उसमें कमजोर से कमजोर तथा बलवान से बलवान व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए। अहिंसा के सिवा और किसी तरीके से ऐसा हो नही सकता। आप विश्व का कोई भी देश ऐसा नही है जो गरीबों के हितों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है। उनके लिए जो कुछ भी किया जाता है वह मेहरबानी के तौर पर होता है। वे अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की धारणा में विश्वास नहीं करते थे।

सार रूप में लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिए सभी की आम भलाई के लिए लोगों के सभी वर्गो के समस्त भौतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक संसाधनों के जुटाव की कला और विज्ञान। लोकतंत्र की सच्ची भावना हेतु असहिष्णुता नही होना चाहिए। सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमी नही चला सकते यह तो नीचे से हर एक गाँव के लोगों द्वारा चलाया जाना चाहिए। कोई भी सरकार पूर्णत: अहिंसावादी बनने में सफल नही हो सकती, किन्तु वे एक अहिंसक समाज की स्थापना में अवश्य विश्वास करते है और उनके लिए प्रयत्नशील रहे है। अनुशासित एवं प्रबुद्ध लोकतंत्र दुनियाँ की- सबसे बढ़िया चीज है। पूर्वागृहयुक्त, अज्ञानात्मक, और अंधविश्वास पूर्ण लोकतंत्र अव्यवस्था को जन्म देता है और स्वयं ही अपना विनाश कर लेता है।

यदि नेता या कार्यकर्त्ता समय की पाबंदी का सख्ती से पालन करे तो इससे राष्ट्र का विशेष लाभ होगा। नैतिक मूल्यों में गिरावट का कारण सत्याग्रह की सच्ची भावना का अभाव है। किसी भी संगठन के लिए अपना हिसाब किताब सही रखना अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बिना सत्य का विशुद्ध रूप में पालन असंभव है।

यदि आम जनता स्वतंत्रता का भोग करना चाहती है तो उसे स्वेच्छा से अनुशासन पालन करने का आध्यात्मिकता का मंत्र सीखना होगा। जनता के स्वराज्य का अर्थ है - व्यक्तियों का स्वराज (स्वशासन) और यह तभी होगा जब व्यक्ति नागरिक होने के नाते अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इसमें कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों की नही सोचता। अधिकार तो जब जरूरत होती है तब प्राप्त हो जाते है, जिसमें व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का और अच्छी तरह पालन कर सके।

लोकमत ही किसी समाज को शुद्ध एवं स्वस्थ रख सकता है। स्वस्थ, तथ्य धारित और संतुलित आलोचना सार्वजनिक जीवन का ओजोज है। लोकतंत्र के पास केवल एक ही बल है और वह है लोकमत का। सत्याग्रह सविनय अवाज्ञा और उपवासों तथा बल के प्रच्छन्न या प्रकट प्रयोग के बीच कोई साम्य नही है। लेकिन लोकतंत्र में उनका भी सीमित उपयोग ही है।

इस प्रकार गाँधी ने जिस तरह के लोकतंत्र की अवधारणा दी है उसमें शासक व शासित दोनों के कर्त्तव्य पालन पर बल दिया है न कि अधिकार अधिग्रहण पर। यदि भारत में इस लोकतांत्रिक का प्रसार हो जाए तो देश में व्याप्त समस्त बुराईयाँ स्वत: ही लुप्त हो जाएगी और एकत्व की भावना का विकास हो जायेगा।

11.3.8 राष्ट्रभाषा

गाँधी के अनुसार हमारी भाषा हमारा ही प्रतिबिम्ब होती है। हिन्दुस्तानी भारत राष्ट्रभाषा होगी पर वह प्रान्तीय भाषाओं का स्थान नही ले सकती। वह प्रान्तों में शिक्षा का माध्यम नही बन सकती और अंग्रेजी तो कतई नही। उसका कार्य प्रान्तों को भारत के साथ अपने आंगिक संबंध को समझने में मदद है।

अंग्रेजी की शिक्षा जिस रूप में हमारे यही दी गई है उसमें अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीयों का दुर्बलीकरण किया है। भारतीय विद्यार्थियों की स्वभाविक ऊर्जा पर जबरदस्त दबाव डाला है और हमें नकलची बना दिया है।..... अनुवादकों की जमात पैदा करके कोई देश राष्ट्र नही बन सकता।

गाँधी कहते है - अंग्रेजी निर्विवाद रूप से विश्व भाषा है। अत: इसे विद्यालय स्तर पर तो नही पर विश्वविद्यालय के स्तर के पाठ्यक्रम की वैकल्पिक भाषा के रूप में द्वितीय स्थान पर रखूंगा। वह कुछ चुने हुए लोगों के लिए ही हो सकती है - लाखों के लिए नही..... यह हमारी मानसिक दासता है। जो हम समझते है कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नही चल सकता है। इस पराजयवाद का समर्थन कभी नही किया जा सकता।

यदि भारत में प्रान्तीय भाषाओं का अधिकतम उत्कर्ष करना है तो प्रान्तों का आधार पर पुर्नगठन आवश्यक है। प्रान्तों के भाषा वार पुनर्गठन से देश की सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। अत: कांग्रेस ने इस सिद्धान्त को पहले ही अनुमति दे दी। किन्तु इस पुनर्गठन से भारत की आंगिक एकता को क्षति नही पहुँचनी चाहिए इसका अर्थ परवाह किए बगैर जो मर्जी आए करे। यदि प्रान्त स्वयं को एक पृथक संप्रभुता ईकाई मानने लगेगा तो भारत की स्वाधीनता का कोई अर्थ नही रह जाएगा और इसके साथ ही, उसकी विभिन्न इकाइयों की स्वतंत्रता भी लुप्त हो जायेगी।

बाहरी दुनियाँ हमें गुजराती मराठियों, तमिलों आदि के रूप में नही जानती बल्कि केवल भारतीय के रूप से जानती है। इसलिए हमें विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़तापूर्वक हतोत्साहित करना चाहिए और भारतीयों की तरह अनुभव और व्यवहार करना चाहिए। इस सर्वोपरि विचार की रक्षा की जाती रहे, तो भारत में भाषा का पुनर्गठन में शिक्षा और व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा। गाँधी के यह विचार आज भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए फलप्रद है।

11.3.9 अस्पृश्यता

गाँधी प्रथम भारतीय नेता थे जिन्होनें अस्पृश्यता उन्मूलन को राष्ट्रीय स्तर का मुद्दा बनाया था और उसे उतना ही महत्व दिया जितना विदेशी सत्ता से देश को स्वतंत्र कराने के उद्देश्य को।

अस्पृश्यता भारतीय समाज, विशेषकर हिन्दू धर्म की ऐसी प्रथा है जिसके अनुसार समाज में कुछ जातियाँ ऐसी है, जिसमें जन्म लेने मात्र से ही अस्पृश्य हो जाता है। सामाजिक जीवन के वरीयता क्रम में उस जाति विशेष को निकृष्टतम समझा जाता है और उच्च जातियाँ उनसे न तो सामाजिक संबंध रखती है और न ही सार्वजनिक सुविधाओं में अपने साथ साझा करने की अनुमति देती है। गाँधी का मत है कि यह ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति पाप है। अत: विषैले नासूर के समान धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के मार्गस्थल को खा रही है। गाँधी कहते है- मेरे विचार से भी पूरे हिन्दू शास्त्र को लिया जाए तो उसमें इसको कहीं भी मान्यता प्राप्त नही है.... इससे सवर्ण तथा अछुत दोनों का पतन हुआ है। अत: यह जितना जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही यह हिन्दू धर्म के लिए, भारत के लिए और सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अच्छा होगा।

गाँधी ने अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु आन्दोलन व्यापक, संगठित एवं व्यवस्थित तरीके से किया। बड़े पैमाने पर लेखन, दौरे, निजी संगठन, कार्यक्रमों द्वारा इस मुद्दे को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में केन्द्रिय मंच पर लाकर खडा कर दिया। 1930 के दशक के बाद तो अस्पृश्यता उन्मूलन उनका चरम लक्ष्य बन गया। अम्बेडकर द्वारा पृथक निर्वाचन की मांग तथा 1932 में

रेम्जेमेक्डोनल्ड चाल अवार्ड का उन्होंने विरोध किया। फिर आमरण अनशन किया। 1932 में जेल से ही अस्पृश्यता पर 13 वक्तव्य जारी किए। जिनमें संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों से अस्पृश्यता प्रभावी का धार्मिक ग्रन्थों में न्यायसंगत ठहराने वाले संदर्भों की मांग की। प्रत्युत्तर में उन्होंने पाया कि इसका कोई उल्लेख नही है। गाँधी ने कहा कि यदि होता तो भी वे उसे स्वीकार नही करते। क्योंकि यह मानवता के विरूद्ध है। अस्पृश्य जाति में जन्म लेकर अपने विगत जन्मों का फल भुगत रहे है। इस पर गाँधी का कहना था कि यदि ऐसी ही बात है तो अब तक उन्हे पर्याप्त दण्ड मिल चुका है और समाज को उनके दुखों को और नही बढाना चाहिए। अत: गाँधी ने 'अस्पृश्य' के स्थान पर 'हरिजन' नाम दिया। उन्होने तीन समाचार पत्रों - अंग्रेजी में 'हरिजन', हिन्दी में 'हरिजन सेवक' और गुजराती में 'हरिजन बंधु' के माध्यम से अस्पृश्यता रूपी बुराई के विरूद्ध जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया। 'हरिजन सेवक संघ', हरिजन दौरे, अस्पृश्यों के मंदिर में प्रवेश हेतु आन्दोलन तथा कानून निर्माण हेतु भी प्रयास किए गए।

गाँधी द्वारा अस्पृश्यता निवारण हेतु किए गए प्रयास एवं कार्यो से समाज में संकीर्ण मनोवृतीय का हास हुआ है और समानता की भावना को बढ़ावा मिला जो कि समाज में एकत्व की भावना के लिए संचरण स्वरूप है।

11.3.10 नारी समाज

नारी समाज के लिए आदर भाव गाँधी के चरित्र का एक मुख्य गुण था। वे नारी को त्याग, बलिदान अहिंसा, करूणा, दया की प्रतिमूर्ति मानते थे। अहिंसा का मतलब है - असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ है, कष्ट सहने की असीम क्षमता। इस समता का सबसे अधिक परिचय नारी-पुरुष की जननी ही देती है। उनका मत था कि नारी को अबला कहना उसकी निंदा करना है। स्त्री-पुरूष ही सहचरी है। उसकी मानसिक क्षमताएँ पुरूष के बराबर है।

महिलाओं के अधिकारों के संबंध में गाँधी कोई समझौतो करने को तैयार नही थे। उनका विचार यानि पत्नी के मार्ग में ऐसी कोई भी कानूनी पाबंदी नही होनी चाहिए जो पुरुषों पर भी लागू न होती हो। पुत्री व पुत्र के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। उन्होंने एक समान सुधार के रूप में, स्त्री उत्थान को अपने रचनात्मक कार्यक्रम' में सम्मिलित किया था। उन्होंने महिलाओं को शिक्षित करने, विधवा विवाह, आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होने तथा सार्वजनिक जीवन में भाग लेने एवं समाज के नैतिक व आध्यात्मिक विकास में योगदान देने की सलाह दी। वे पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बलि प्रथा के विरूद्ध थे।

एक कुशल रणनीतिज्ञ की भांति गाँधी ने बहुत जल्दी यह पहचान लिया था कि उनमें आन्दोलनों की सफलता में स्त्रीयों के योगदान की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में एक सरकारी आदेश जिसमें कोर्ट के बाहर से सम्पन्न सभी भारतीय विवाह को गैर कानूनी घोषित कर दिया। जिसके विरोध में महिलाएँ भी घर से बाहर निकल आई। असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं ने धरना, रैलियों, प्रदर्शन आदि में भाग लिया। साम्प्रदायिक आग को बुझाने में नौआखली में गाँधी का साथ अमतुलस्सलाम ने दिया और वह साम्प्रदायिक सामंजस्य हेतु अनशन पर बैठी थी। गाँधी का कहना था कि - आज बहुत

कम महिलाएँ राजनीति में भाग लेती है और इनमें से अधिकांश स्वतंत्र चिंतन नही करती। वे अपने माता-पिता के आदेशों का पालन करके ही संतोष का अनुभव कर लेती है। अपनी निर्भरता का अहसास होने पर वे स्त्री अधिकार की आवाज बुलंद करने लगती है। महिला कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि वे व्यवहारिक शिक्षा दे या दिलाने की व्यवस्था करे, उन्हे स्वतंत्र रूप से सोचने की सीख देती है और जात-पात के बंधनों से मुक्त कराएँ ताकि बदलाव आए। इससे पुरुष उनकी शक्ति और त्याग की क्षमता को पहचानने तथा उन्हे प्रतिष्ठित स्थानों पर बिठाने के लिए बाध्य होगें। भारत में राष्ट्रीय एकीकरण हेतु समाज के सभी वर्गो में समन्वय एवं सद्भाव को बढ़ाने में महिला समानता एवं उत्थान भी सहायक है।

11.3.11 विद्यार्थी एवं युवा

विद्यार्थियों की समाज, राष्ट्र निर्माण तथा राष्ट्रीय एकीकरण व देश हित में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। विद्यार्थियों के अपने अंतर को टटोलना चाहिए और उन्हे अपने व्यक्तिगत आचरण का मान रखना चाहिए। अच्छी शिक्षा के लिए व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता एक अपरिहार्य शर्त है। समस्त ज्ञान का: लक्ष्य चरित्र निर्माण होना चाहिए। शान्ति, साहस, सदाचार, महान तथ्यों में अपने को लगा देने की क्षमता का विकास करना चाहिए। यह साक्षरता से अधिक महत्वपूर्ण है। किताबी शिक्षा इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल साधन है। सच्चाई सबसे बड़ी कुंजी है। चाहे जो परिस्थिति हो झूठ मत बोलो, किसी बात को मत छिपाओ, अपने अध्यापकों तथा बड़ों पर भरोसा करके उन्हे हर बात सच-सच बता दो। किसी के प्रति दुर्भाव मत रखो, किसी के पीठ पीछे उसकी बुराई मत करो, सबसे बडी बात यह है कि तुम स्वयं अपने प्रति सच्चे रहो। जिससे किसी दूसरे के प्रति झूठे न बनो। ईश्वर में विश्वास मत खोओ ओर इसलिए स्वयं अपने अन्दर भी विश्वास मत खोओ, और याद रखो कि यदि तुम एक भी बुरे विचार, एक भी पापपूर्ण विचार को अपने मन में जगह देते हो तो इसका मतलब है कि तुम्हारे अन्दर इस विश्वास की कमी है। मिथ्यावादिता, अनुदारता, हिंसा तथा इन्द्रियलोलुपता इन सब चीजों का इस विश्वास के साथ मेल नहीं बैठता। भगवद्गीता, कुरान, सरमन ऑन द माउण्ट के अध्ययन में गाँधी ने पाया कि - हम स्वयं अपना अनिष्ट कर सकते है उतना कोई और नहीं कर सकता। विद्यार्थियों को हड़ताल नही करनी चाहिए। उन्हें केवल तभी हड़ताल करनी चाहिए जब कोई दूसरा चारा न हो। वे विद्यार्थियों द्वारा राजनीतिक प्रदर्शन तथा दलगत राजनीति में भाग लेने को बिल्कुल गलत समझते थे। इससे गंभीर अध्ययन में बाधा आती है और वे भावी नागरिक के रूप में ठोस कार्य करने के लायक नही रह जाते। उन्हें अपना कुछ समय हरिजन सेवा में लगाना चाहिए।

11.3.12 युवा-वर्ग

गाँधी का कहना था कि मेरी आशा का केन्द्र देश का युवा वर्ग है। जो युवक दुर्गुणों के शिकार है..... वे भी प्रकृति से बुरे नहीं है। वे मजबूरी में और बिना सोचे समझे दुर्गुणों की ओर आकृष्ट हो गए है। उन्हें समझना चाहिए कि इनके कारण स्वयं उन्हें और समाज को कितनी

हानि पहुँचती है। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि कठोर अनुशासन में रहकर ही वे अपने को और देश की पूरी बर्बादी से बचा सकते है।

गाँधी को उच्च वर्ग के युवाओं में फैशन के प्रति दीवानगी को देखकर बडी मनोव्यथा होती है। वे यह नहीं जानते कि परिचय की इस मोहक चकाचौंध की गुलामी के कारण वे स्वयं की उन निर्धनतम देशवासियों से अलग-थलग कर रहे है। जो कभी इन फैशनों को नही अपना सकते। मैं यह नही भूल सकता कि यदि हमारा युवा वर्ग.... इस झूठी शान के चक्कर में सादगी की वृति को खो बैठा तो यह एक राष्ट्रीय महासंकट होगा, एक राष्ट्रीय त्रासदी होगी।

11.3.13 व्यक्ति

गाँधी ने समाज में व्यक्ति की भलाई और उसके आचरण हेतु विचार दिये है। उनका कहना है कि इस शक्तिशाली विश्व में मनुष्य का भौतिक रूप में कोई महत्व नही लेकिन ईश्वर ने मानव को बुद्धि तथा अच्छे व बुरे में भेद करने की शक्ति प्रदान की है। यदि हम शक्ति का सदुपयोग करते है तो ईश्वर के निकट पहुँचते है और दुरूपयोग करते है तो विश्व को झगड़े, फसाद, रक्तपात, दुख और वेदना से भर देते है। इसके लिए पहली आवश्यकता है - निर्भिकता जोकि हृदय की शुद्धि से आती है। गलती आदमी से होती है। हम अपनी गलतियों को स्वीकार करके, अपने आगे बढने की सीढ़ी बना देते है। गलती की स्वीकारोक्ति, एक झाड की तरह है जो धूल को झाड कर सतह को पहले से ज्यादा साफ कर देती है। आत्मनियंत्रण से व्यक्ति में स्फूर्ति आती है। व्यक्ति को ब्रहमचर्य का पालन मन, वचन एवं कर्म से करना चाहिए। आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में मौन का पालन करना चाहिए। एक निश्चित सीमा तक शारीरिक सुख, सुविधाऐं तथा आराम आवश्यक है। लेकिन उसके बाद उससे मदद मिलने के बजाए बाधा पहुँचने लगती है। इसलिए अपनी आवश्यकताओं की बनते जाने तथा उन्हें पूरी करने की चेष्टा एक प्रवंचना माना है।

जैसे ही व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं को बढ़ाना चाहता है। वैसे ही वह जीवन उच्च विचार' के आदर्श से मुक्त हो जाता है। इतिहास इस बात को अच्छी तरह साबित करता है मनुष्य की खुशी वास्तव में संतोष में है। जो मनुष्य असंतुष्ट रहता है, उसके पास चाहे कितना ही धन हो वह इच्छाओं का दास हो जाता है और अपनी इच्छाओं का दास होने से बढ़कर और कोई दासता नहीं है। व्यक्ति स्वयं अपना सबसे बडा मित्र व सबसे बड़ा शत्रु हो सकता है। जो बाद में व्यक्ति के लिए सही है वही बात समाज के लिए भी सही है।

11.4 वर्तमान भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं एवं गांधीवादी विकल्प

भारत के संविधान द्वारा कानून का शासन, धर्म, वंश, जाति, सम्प्रदाय तथा लिंग के आधार पर स्वतंत्रता एवं समानता व्यक्ति की गरिमा, सुदृढ केन्द्र वाली संघीय व्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता, संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की गई थी। साथ ही एक संविधान, एक राष्ट्रीय ध्वज, इकहरी नागरिकता, एक राष्ट्रीय भाषा, एक राष्ट्रीय गीत, एक झंडा आदि व्यवस्थाएँ की गई; ताकि राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता की सुर तथा भाइचारे की भावना को

विकसित किया जा सके। किन्तु विडम्बना यह है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति व्याप्त विविधता ने राष्ट्रीय एकता को कुंठित कर दिया है। हम अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति हेतु इतने प्रतिबद्ध हो है कि राष्ट्र की परवाह नही करते है। इसीलिए वर्तमान में भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में कई समस्याएँ मुंह बाए खडी है। इनमें मुख्यत: है - साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अल्पसंख्यक व पिछडी जातियों की असुरक्षा भावना, छोटे-छोटे राज्यों की मांग, अत्यधिक आर्थिक विषमता, हिंसात्मक गतिविधियां, छात्रों का राजनीति में लेना, विदेशी तत्वों की घुसपैठ, हिंसात्मक गतिविधि, क्षेत्रियतावाद भाषावाद, सामाजिक-सांस्कृतिक विद्वेश राजनीतिक, प्रशासनिक एवं सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार आदि।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली इन समस्याओं का निवारण, एवं असहयोग की स्थिति से मुक्ति, अनुशासित राष्ट्रीय जीवन के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए गाँधीय चिंतन और सिद्धान्त प्रेरणास्पद, अनुकरणीय, महत्वपूर्ण तथा प्रासंगिक है। गाँधीय विकल्प ' होने के साथ-साथ मानव सभ्यता, संस्कृति का पोशक संरक्षक एवं निरंतर विकास का समर्थक भी है। दूसरे राष्ट्रों, सम्प्रदायों या प्रजातियों का विरोध नहीं वरन् अपने अस्तित्व के साथ उनके अस्तित्व में विश्वास जाता है। स्पष्टत: यह संकीर्ण एवं उग्र न होकर व्यापक एवं सकारात्मक है।

गाँधी मानव की अनिवार्य एकता में विश्वास करते थे। मानव के आत्म तत्व में ईश्वरीय अंश की विद्यमानता मानव सेवा का संदेश देती है। अत: उन्होंने सर्वोदय की अवधारणा दी जिसमें कहते है - मेरे ईश्वर के असंख्य रूप है। कभी वह मुझे चरखे से दिखाई देता है कभी साम्प्रदायिक सौहार्द और कभी छुआछूत निवारण में, इस प्रकार जिधर मेरी अन्तरआत्मा मुझे संचालित करती है, वही मैं ईश्वर के साथ सम्पर्क स्थापित करता हूँ।

गाँधीवादी चिन्तन में साधन एवं साध्य की पवित्रता, सत्य, अहिंसा एवं ' पर बल दिया गया है। जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पृथक्करण, संकीर्णता के हास तथा सद्भाव,, सहअस्तित्व की प्रवृतियों को बढ़ावा मिलता है। इससे राष्ट्र के नागरिकों के बीच पारस्परिक सौहार्दपूर्ण " के विकास में मदद मिलेगी; परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता एवं एकत्व की भावना अपने आप प्रस्फुटित एवं पल्लवित जाएगी।

साम्प्रदायिकता भारत में एक निम्न कोटि की विभाजनात्मक प्रवृति है जिसने देश को विभाजित कर दिया। यद्यपि भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्ष राज्य को अपनाया गया है। सन् 1967 में यूपी., 1978-79 में अलीगढ़ जमशेदपुर, 1935 ने अहमदाबाद, 1987 में मेरठ, 1989 में बदांयू और 1992 में बावरी मस्जिद आदि के कारण जन-धन हानि, अशान्ति व हिंसा भड़की जिसे बढ़ाने में राजनीतिक दलों का भी हाथ रहा है। इससे राष्ट्रीय एकता को जबरदस्त नुकसान होता है। साम्प्रदायिकता की समस्या के निवारण हेतु गाँधीय चिंतन को धैर्य एवं विश्वास के साथ आत्मसात की आवश्यकता है। गाँधी का कथन है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों से अच्छे संबंध तब ही हो सकते है जब दोनों एक दूसरे के धर्म को समझने का सच्चा प्रयत्न करेंगे। सर्व धर्म समभाव का दृष्टिकोण रखेंगे और दूसरे धर्म की अच्छाई को भी खुले हृदय से स्वीकार करने की आवश्यकता है। हृदय की एकता में विश्वास करने वालों की

संख्या में वृद्धि हो। राष्ट्रीय एकत्व के विकास हेतु आवश्यक है कि गाँधी द्वारा दर्शित मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। वह है सभी भारतीय 'हृदय की एकता' में विश्वास करे। सत्य व सदाचार रूपी धर्म में विश्वास बनाए न कि सम्पद्रायवादी या पृथकतावाद की भावना में। इसके लिए प्रार्थना एक आध्यात्मिक अनुशासन के संदर्भ प्रत्येक भारतीय की को अपने जीवन में उतारना चाहिए अनुशासन और संयम ही पशु से हमें पृथक करता है और मनुष्य बनाता है।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रमुख चुनौती प्रान्तीयता, क्षेत्रियतावाद छोट राज्यों की मांग, आन्दोलन की राजनीति या हिंसात्मक राजनीति की है। भारतीय राजनीति में हिंसा की राजनीति के अन्तर्गत आन्दोलन, जुलूस, रैली, पदयात्रा, उग्र प्रदर्शन, हिंसात्मक आन्दोलन, घेराव, तोडफोड, आवश्यक भीड इकट्ठी करना आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। भारत में राजनीतिक हिंसा व अपराधीकरण, साम्प्रदायिक व जातिय हिंसा, नक्सलवादी, आदिवासी, अलगावदी आदि रूपों में हिंसात्मक घटनाएँ देखी जा सकती है। 1973 में गुजरात में आन्दोलन, बिहार में झारखण्ड के आदिवासियों द्वारा पृथक राज्य की मांग को लेकर हिंसक आन्दोलन 1884, असम में बोडो, उल्का उग्रवादियों के आन्दोलन, पंजाब में अकालीदल, दार्जलिंग में गोरखा आन्दोलन हड़ताल व हिंसात्मक तरीके थे। जिन्होंने पृथकतावादी, संकीर्ण एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए हिंसात्मक पद्धति का सहारा लेकर राष्ट्रीयता की भावना को कुंठित कर दिया।

प्रान्तीयता की भावना छोटे राज्यों की मांग से भारतीय एकता का विकास अवरूद्ध हुआ है। इससे न केवल केन्द्र-राज्य संबंध वरन् राज्यों के बीच भी भाषा, सीमा विवाद को प्रमुखता मिली है। जिससे राज्यों की जनता के बीच खाई बढी है। इन समस्याओं के संदर्भ में गाँधी के विचार अत्यन्त फलप्रद है कि लोकतंत्र एक यांत्रिक भावना नही है जिसे ढांचे का उन्मूलन करके प्राप्त किया जा सके। उसके लिए हृदय परिवर्तन आवश्यक है। भाईचारे, सहिष्णुता की भावना आवश्यक है। सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की तकनीक का इस्तेमाल आवश्यक है। हिंसा का परिणाम कभी सकारात्मक या स्थायी नही हो सकता किन्तु अहिंसा का फल स्थायी एवं कम हानिकारक होगा। अत: सत्य अहिंसा व सत्याग्रह की तकनीक ही राजनीतिक मार्गो एवं हितो की पूर्ति का सार्थक माध्यम हो सकता हैं।

गाँधी के अनुसार लोकतंत्र का सार है सभी की आम भलाई के लिए लोगों के सभी वर्गो के समस्त भौतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक संसाधनों के जुटाव की कला और विज्ञान। लोकतंत्र कीं सच्ची भावना हेतु आवश्यक है कि अधिक से अधिक विकेन्द्रिकरण हो तथा नेता या कार्यकर्त्ता समय की पाबन्दी का सख्ती से पालन करे तो वह राष्ट्र का लाभ होगा। नैतिक मूल्यों में गिरावट का कारण सत्याग्रह की सच्ची भावना का अभाव है। जनता में अनुशासन एवं कर्त्तव्य पालन, भावना होना आवश्यक है। लोकमत ही किसी समाज को शुद्ध व स्वरूप रख सकता है। स्वस्थ तथ्याधारित और संतुलित आलोचना सर्वाजनिक जीवन का ओजोन है। यदि समस्त भारतीय हृदय से लोकतांत्रिक हो तो संकीर्ण स्वार्थों का संचार होगा।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रमुख समस्या धर्म, भाषा एवं क्षेत्र के आधार पर संकीर्ण भावनाओं का विकास पृथक राज्यों की मांग आदि के रूप में है। अत: गांधी के इस

विचार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिसमें कहा गया है कि बाहरी दुनियां हमें गुजराती, मराठीयों, तमिलों आदि के रूप में नही जानती बलि केवल भारतीय के रूप में जानती है। इसलिए हमें विघनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़तापूर्वक हत्तोतसाहित करना चाहिए और भारतीयों की तरह अनुभव एवं व्यवहार करना चाहिए। उनका मानना है कि भारत के हिन्दी को राष्ट्र भाषा, अंग्रेजी को वैकल्पिक भाषा और प्रान्तीय भाषा को भी पर्याप्त स्थान दिया जाए। ताकि भारत की सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो शिक्षा और व्यापार को प्रोत्साहन मिले किन्तु प्रान्तीय आंगिक एकता को क्षति नही पहुँचनी चाहिए। तभी भारत में उस राष्ट्रीय एकत्व की भावना का विकास होगा जिसके व्यक्ति जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय, समुदाय या प्रान्त के प्रति सजगता उसकी भारत के नागरिक होने की भावना का अंश बन जाए।

अल्पसंख्यकों तथा पिछड़ी जातियों, दलितों महिलाओं में व्याप्त असुरक्षा की भावना के कारण भी संकीर्णता की मनोवृत्ति दलितोत्थान, सामाजिक स्तर पर मनुष्य-मनुष्य के प्रति समान दृष्टिकोण महिला व पुरुष की समानता एवं अधिकारों संबंधी विचार सहायक होगें। यदि वर्तमान में गांधीय चिन्तन एवं कृतित्व के अनुरूप हमारा व्यवहार हो तो समाज में कोई भी व्यक्ति अपने को उपेक्षित महसूस नही करेगा। साथ ही मानव की मानव के रूप में गरिमा बनी रहेगी जिससे केवल समाज में आन्दोलन, अशान्ति, असंतोष, अविश्वास क्षीण होगा वरन् विकास एवं समान सहभागिता को बढ़ावा मिलेगा।

वर्तमान में युवा वर्ग तथा विद्यार्थीयों का असंतोष, हिंसा, आन्दोलन, तोड़फोड़, उपद्रव आदि रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। जिसमें देशभक्ति की भावना में कभी, राष्ट्रहित के स्थान पर संकरण स्वार्थों की प्राथमिकता को बल मिल रहा है। जिससे जीवन मूल्यों का हास हो रहा है और उनकी ऊर्जा रचनात्मक के स्थान पर गैर जरूरी कार्यो में बर्बाद हो रही है। इससे समाज में पृथक्करण एवं संकीर्णता को बढ़ावा मिला है। इस संदर्भ में गाँधीय चिन्तन का प्रसार एवं उससे प्रेरणा की आवश्यकता है। गाँधी ने विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण करने वाली शिक्षा ग्रहण करने पर बल दिया है, झूठ नही बोलने, दुर्भाव नही रखने, सत्य आचरण, नैतिकता में विश्वास, अपने पर एवं ईश्वर पर विश्वास रखने की शिक्षा दी। मिथ्यवादिता, हड़ताल, राजनीति में प्रदर्शन आदि से दूर रहने को कहा। गाँधी ने उस समय में युवाओं से आहवान किया वह आज भी उतना ही सार्थक है। यदि हमारा युवा वर्ग झूठी शान के चक्कर में सादगी की वृत्ति खो बैठा तो यह एक राष्ट्रीय महासंकट होगा। एक राष्ट्रीय त्रासदी होगी। इस प्रकार गाँधी दर्शन में विचार है कि ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तथा अच्छे बुरे में भेद करने की क्षमता प्रदान की है। यदि हम इस शक्ति का सदुपयोग करते है तो ईश्वर के निकट पहुँचते है। दुरूपयोग करते है तो विष्व को झगड़े, फसाद, दुख, वेदना पहुँचाते हो और पतन के गर्त में डालते है। इसलिए गाँधी के अनुसार व्यक्ति को सादा जीवन उच्च विचार का आचारण करना चाहिए।

गाँधी ने राष्ट्रीय जीवन एवं मानवीय जीवन को एक ईकाई के रूप में मानना जिसमें विभिन्नता में एकता है। यदि भारतीय समाज में आज इन विचारों को ग्रहण कर लिया जाए तो न केवल -आर्थिक असमानता, छुआछुत, ऊँच-नीच की भावना कम होगी वरन् हिंसा उपद्रव, आतंकवाद पर दंगे व हिंसा, सामाजिक, राजनीतिक भ्रष्टचार एवं अपराध पर भी नैतिक,

आध्यात्मिक नियंत्रण होगा। उनके उपरोक्त विचारों का अनुसरण करते हुए हम राष्ट्रीय जीवन को एक नई दिशा प्रदान कर सकते है।

11.5 सारांश

भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषता है - विविधता में एकता। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा भी इसी का अनुकरण किया गया। फिर भी जाति, धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय, आर्थिक विकास आदि की दृष्टि से विविधता वाले भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकीकरण के समान अनेकानेक चुनौतियाँ सदैव विद्यमान रही है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकीकरण, भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण की चुनौतियों तथा उनके समाधान हेतु गाँधी विकल्प को प्रस्तुत किया गया है।

राष्ट्रीय एकीकरण से अभिप्राय - देशभक्ति, देशहित में बलिदान की भावना, नागरिकों में सहनशीलता धैर्य, सहिष्णुता, सहअस्तित्व की भावना, पवित्र साध्य हेतु पवित्र साधन अपनाने के संदर्भ में करे तो गाँधी के विचार एवं कमी द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा दिया गया है। गाँधी द्वारा राष्ट्र, राष्ट्रीयता, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, साम्प्रदायिकता, सर्वोदय, साध्य एवं साधन की पवित्रता, लोकतंत्र, राष्ट्रभाषा, अस्पृश्यता, नारी समाज, विद्यार्थी एवं युवा तथा व्यक्ति के लिए किए गए विचार एवं कार्यो का विश्लेषण राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में किया गया है।

गाँधीय विकल्प सत्य, अहिंसा, सद्भाव, सर्वधर्म सद्भाव के आधार पर राष्ट्रीय एकता का प्रभुत्व पर आधारित है। इसमें दायित्व पालन, साम्प्रदायिक एकता, सहिष्णुता का समावेश है। अत: वर्तमान में इस विकल्प के अनुसरण द्वारा हम न केवल सामाजिक आर्थिक विषमता, छुआछुत, ऊंच-नीच की भावना को कम कर सकते है। वरन् हिंसा, आतंकवाद, अविश्वास, घृणा का हास भी होगा जिससे राष्ट्रीय जीवन को एक नवीन दिशा एवं रक्त संचरण प्राप्त होगा। जो कि स्थायी, मानवीय एवं नैतिक है।

11.6 अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी प्रमुख समस्याओं को इंगित कीजिए।
2. राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में गाँधी द्वारा किये गए प्रयासों का विवेचन कीजिए।
3. अस्पृश्यता निवारण के संदर्भ में गाँधी के विचार एवं कृतित्व का वर्णन कीजिए।
4. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण में साम्प्रदायिकता एवं भाषावाद की समस्या के निदान हेतु गाँधी के विचारों एवं कृत्यों की व्याख्या कीजिए।
5. वर्तमान राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं के समाधान के संदर्भ में गाँधीय विकल्प का विश्लेषण कीजिए।

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एम.के. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1997

2. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1966
3. मश्र, अनिल दत्त, गाँधीयन अप्रोच दू कन्टेम्पोररी प्रोब्लम्स्, मित्तल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
4. कुमार, प्रेम, गाँधी ऐ ह्यामेनिस्टिक मॉडल, आकांशा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2010

इकाई-12

विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं गाँधीवादी

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 विकेन्द्रीकृत व्यवस्था एवं नियोजन

12.3 विकेन्द्रीकृत व्यवस्था एवं नियोजन के आयाम

12.4 पंचायती राज व्यवस्था एवं विकेन्द्रीकृत नियोजन प्रक्रिया

12.4.1 पंचायती राज की विकास यात्रा

12.4.2 73वे संविधान संबोधन के प्रमुख अनुलक्षण

12.4.3 पचायती राज व्यवस्था एवं विकेन्द्रीकृत प्रक्रिया

12.5 विकेन्द्रीकरण नियोजन पर महात्मा गाँधी के विचार

12.5.1 ग्रामीण गणतंत्र के पक्षधर

12.5.2 स्थानीय समुदाय की भागीदारी से भारत के गांवों का पुनर्निर्माण

12.5.3 ग्रांम-स्वराज्य से ही पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना

12.5.4 पंचायत राज ग्रामीण भारत की बुनियाद

12.5.5 औद्योगीकरण का विरोध एवं लघु उद्योगों का समर्थन

12.5.7 सीमित कार्य करने वाले राज्य आदर्श राज्य

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे :-

- विकेन्द्रीकृत व्यवस्था का अर्थ एवं औचित्य क्या है?
- विकेन्द्रीकृत नियोजन मे विकास के विविध चरण कौन से हैं?
- विकेन्द्रीकृत नियोजन के विविध आयाम कौन से हैं?
- पंचायती राज व्यवस्था एवं विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया क्या है?
- विकेन्द्रीकृत व्यवस्था एवं नियोजन के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी के विचार क्या है?

12.1 प्रस्तावना

सित्ता का विकेन्द्रीकरण जन सहभागिता को सुलभ कराते हुए प्रजातंत्र को मजबूत बनाने का काम करता है। सहभागी लोकतन्त्र के साथ विकेन्द्रीकृत नियोजन भी देश की

प्रजातांत्रिक को मजबूत बनाने और सार्थक एवं सन्तुलित विकास के लिए सहायक होता है। विकास के लिए 'विकेन्द्रीकृत नियोजन' की संकल्पना बुनियादी एवं सहभागी लोकतन्त्र, स्थानीय समुदाय की राजनीतिक प्रशासनिक एवं आर्थिक निर्णयों में सहभागिता का पक्ष लेती है। प्रशासन और विकास 'शीर्ष' से नहीं, तथा कुछ लोगों अथवा अभिजातीय समुदाय के लिए नहीं बल्कि बुनियाद अथवा 'आधार' से तथा सभी की प्रगति के लिए संभावनाओं के विचार से जुडी है। गाँधी ने अपने लेखों, विचारों एवं भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनों में चलाये गये अभियानों में विकेन्द्रीकरण को व्यक्ति, समुदाय एवं राष्ट्र की भलाई के लिए अनिवार्य माना है। इस परिप्रेक्ष्य में विकेन्द्रीकृत नियोजन का अर्थ, भारत में इसके उद्भव एवं विकास पंचायती राज व्यवस्था में विकेन्द्रीकृत नियोजन की स्थिति तथा महात्मा गाँधी के चिन्तन में अभिव्यक्त विकेन्द्रीकृत नियोजन से संबंधित विचारों को जानना आवश्यक है।

12.2 विकेन्द्रीकृत व्यवस्था एवं नियोजन

सामान्य अर्थों में विकेन्द्रीकरण शासन सत्ता का केन्द्र में संगीभूत न होकर इकाईयों में वितरण है। यह निर्णय प्रक्रिया में स्थानीय समुदाय की सहभागिता को महत्त्व देता है। विकास के सन्दर्भों में जो यहां हमारे चिन्तन का मुख्य विषय है, विकेन्द्रीकरण का अर्थ है विकास की योजनाओं के निर्माण एवं कार्यान्वयन में राष्ट्रीय या राज्य स्तर की उच्च स्तरीय संस्थाओं की शक्तियों की उपराज्य एवं स्थानीय स्तर की संरथाओं में हस्तान्तरित होना है। इसमें आधार स्तर पर जिला, खण्ड एवं पंचायत संरथाओं नियोजन प्रक्रिया में एक निश्चित भूमिका का निर्वाह करती है। इसमें स्थानीय संस्थाएँ विशिष्ट शक्ति एवं दायित्वों से युक्त होती है। व्यवहारिक रूप से विकेन्द्रीकरण की अवधारणा में स्थानीय क्षेत्र द्वारा अपने उद्देश्य एवं लक्ष्यों को तय करने का दायित्व तथा स्थानीय स्तर पर संसाधनों को प्रोत्साहित करना भी शामिल है।

विकेन्द्रीकरण नियोजन को योजना के ऐरने प्रकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें स्थानीय संगठन एवं संस्थाएं बिना किसी केन्द्रीय संस्था के हस्तक्षेप के योजनाओं का निर्माण कार्यान्वयन एवं अपनायी जाने वाली गतिविधियों का निर्धारण एवं पर्यवेक्षण कर सके।

इसका औचित्य इस कारण है कि विकेन्द्रीकरण नियोजन से ही विकास के लिए स्थानीय समुदाय द्वारा अपनी स्थानीय प्राथमिकताओं के निर्धारण, संसाधनों के आवंटन तथा सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु निर्णय लेने का अवसर प्राप्त कर सकता है। अत: सहभागी लोकतन्त्र, स्वशासन, स्वावलम्बी ढांचे, सुशासन उत्तरदायित्व के निर्धारण तथा समुदाय की दक्षता को बढाकर सभी के विकास को संभव बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण नियोजन आवश्यक एवं अनिवार्य है। इसके अभाव में विकास की तस्वीर अधूरी एवं सतही रहेगी। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का आदर्श शासन में लोगों की सहभागिता को बढाया जा सकता है। यह स्थानीय स्वशासन के माध्यम रो सम्भव बनाया जा सकता है। इन चयनित संस्थाओं, शासन प्रक्रिया में जनसहभागिता तथा लोकतान्त्रिक संस्थाओं को सशक्त बनाकर वे स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र के महत्त्व को जान सकते हैं।

12.3 विकेन्द्रीकृत व्यवस्था और नियोजन के आयाम

विकेन्द्रीकरण के चार मुख्य आयाम - कार्यात्मक, वित्तीय, प्रशासकीय एवं राजनीतिक आयाम माने जा सकते हैं। हमें इन आयामों के सन्दर्भ में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को गहनता से जान सकते हैं जिससे विकेन्द्रीकृत नियोजन के संदर्भ में समझ बनाई जा सके।

12.3.1 कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण

जब कभी कुछ कार्य राष्ट्रीय या राज्य स्तर से उपराज्य स्तर पर हस्तान्तरित हों तब ऐसे कार्यो के चयन में पूर्ण सतर्कता रखनी होगी। स्थानीय स्तर पर केवल कार्यो का हस्तान्तरण अपर्याप्त एवं अनिच्छित परिणाम देगा। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि स्थानीय स्तर पर मौजूद मानव क्षमता हस्तान्तरित किये गये कार्यो के साथ न्याय नहीं कर पायेगी। स्थानीय स्तर पर दिये गये इन कार्यो के सम्पादन के लिए कुछ शक्तियां न देने पर स्थानीय संस्थाएं शक्तिहीन, कार्यभार के बोझ से लदी औपचारिक संस्थाएं ही रह जायेंगी।

हस्तान्तरित किये जाने वाले कार्यो का हस्तान्तरण की जाने वाली शक्तियों से मिलान होना चाहिए। ऐसी शक्ति तीन प्रकार की होगी तथा इसके उपविभाजन अग्रांकित होंगे-।

तालिका - 1,

शक्ति	**उपविभाजन**
निर्णय निर्माण शक्ति	विधान निर्माण एवं क्रियान्वयन की शक्ति
वित्तीय शक्ति	राजस्व खर्च संबंधी शक्ति
व्यक्तिगत मामलों पर शक्ति	सेवा, संस्थापन, नियुक्ति, पदोन्नति स्थानान्तरण अनुशासन आदि

12.3.2 वित्तीय विकेन्द्रीकरण

किसी भी स्तर का नियोजन बिना वित्तीय संसाधनों एवं प्राधिकार के बिना निरर्थक है। अन्य देशों की तरह हमारे देश में भी अधिकांश वित्तीय संसाधनों पर राज्यों का नियन्त्रण है। जिनका धीरे- स्थानीय स्तर पर वितरण किया जाता है। इन संसाधनों का वितरण संवैधानिक प्रावधानों के तहत किया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत प्रति 5 वर्ष में एक वित्त आयोग का गठन किया जाता है। हाल ही में राज्य वित्त आयोग का गठन राज्यों से स्थानीय स्तर पर वित्तीय संसाधनों के हस्तान्तरण के लिए किया गया है।

केन्द्र से स्थानीय एवं उपराष्ट्रय स्तर पर वित्तीय अनुदान के हस्तान्तरण हेतु ,सामाजिक, आर्थिक बिन्दुओं को ध्यान में रखा गया है जैसे - क्षेत्र, जनसंख्या का आधार, विशेष अवस्थिति अथवा सामाजिक विषमताएँ प्रमुख राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति कटिबद्धता, पिछड़ेपन की स्थिति आदि।

इसके साथ ही जिला राष्ट्रीय नियोजन हेतु 'अनिर्धारित कोश (अन्टाइड फंड्ज) ' का भी आवंटन किया जाता है जो जिला स्तर की संस्थाओं को जिला स्तर के नियोजन के उपयोग हेतु सीधे ही दिया जाता है। विकेन्द्रीकृत नियोजन की पूर्ण सफलता हेतु वित्तीय विकेन्द्रीकरण का अत्यधिक महत्व है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि केवल शीर्ष से समस्त स्रोतों के

स्थानान्तरण से विकास की गति नहीं बढ़ायी जा सकती। इसके लिए स्थानीय स्रोतों को सक्रिय करना आवश्यक है।

12.3.3 प्रशसकीय विकेन्द्रीकरण

प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण का अर्थ है सरकारी विभागों एवं संस्थाओं में से कुछ कार्यो एवं शक्तियों को उनके क्षेत्रीय कार्यालयों को सौंपना यद्यपि ऐसे विकेन्द्रीकरण में निर्देशों की शक्ति शीर्ष पर रह सकती है। वित्तीय विकेन्द्रीकरण में अनेक प्रशासकीय क्रियाविधियां शामिल हैं जैसे पर्याप्त वित्तीय संसाधनों का प्रावधान, कार्य प्रक्रिया के नियम एवं विभागीय नियम कानून बनाना।

उक्त प्रकार का प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु आधारभूत कार्य कर पाएगा। इससे स्थानीय रत्तर के अधिकारी एवं कर्मचारियों योजनाओं के कार्यान्वयन में दक्षता आ पाएगी बल्कि विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पक्ष में सकारात्मक दृष्टिकोण भी उत्पन्न हो पाएगी।

12.3.4 राजनीतिक एवं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

अपने श्रेष्ठ रूप में विकेन्द्रीकरण नियोजन लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के समरूप बन जाता है जिसमें सभी लोग नियोजन की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। जब कभी जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नियोजन प्रक्रिया में भाग लेते हैं उसे आशिक विकेन्द्रीकरण कहा जाता है जब जनसंख्या का हर वर्ग समुदाय के स्थानीय मुद्दों पर भाग लेने में सक्षम होता है तो इसे सम्पूर्ण विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के तीन मुख्य लक्षण - स्थानीय स्वायत्ता, शक्तियों का निचले स्तर पर हस्तान्तरण एव राजनीतिक सहभागिता है।

स्थानीय स्वायत्ता का विचार इस पर आधारित है कि स्थानीय समुदाय बेहतरीन तरीके से यह जानता है कि उसका हित क्या है तथा उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। अत: उन्हें निर्णय लेने के लिए सक्षम बनाया जाये तथा उच्च सत्ताओं पर न्यूनतम निर्भर रहते हुए अपने स्तर पर पहल कर सके। स्थानीय समुदाय द्वारा स्थानीय स्वायत्ता की प्राप्ति के सूत्र स्वनिर्भरता एवं आत्मविश्वास है। निचले स्तर पर कार्यो के हस्तान्तरण के द्वारा ही प्रारम्भिक रूप से स्थानीय स्वायत्ता सम्भव है। निचले स्तर पर कार्यो के हस्तान्तरण का सामान्य अर्थ सरकार की शक्तियों, कार्यो. संसाधनों को स्थानीय सत्ताओं को हस्तान्तरित करना है।

12.4 पंचायती राज व्यवस्था एवं विकेन्द्रीकृत नियोजन प्रक्रिया

भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को पंचायती राज के माध्यम से जाना जा सकता है। पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास एवं 73वे संविधान संशोधन के उपरान्त देश में इसका संवैधानिक ढांचा एवं उसके अनुलक्षण विकेन्द्रीकृत नियोजन से उसके अन्तरसंबंधों को प्रकट करते हैं।

12.4.1 पंचायती राज की विकास यात्रा

ऐतिहासिक रूप से पंचायत अर्थात् 'पंच-आयत' शाब्दिक दृष्टि से गाँव वालों द्वारा चयनित पाँच व्यक्तियों का समूह था। व्यवहारत: आज यह उस प्रणाली को इंगित करता है जिसके द्वारा भारत की असंख्य ग्रामीण जनता को शासित किया जाता था तथा जो स्वशासन की मनोवृति को इंगित करता है। संभवत: मानव समाज के उद्भव के साथ ही पंचायती राज संस्थाओं का उद्भव हुआ है। वैदिक काल में 1000 ईसा पूर्व रचे गये ऋग्वेद में 'पंच सो परमेश्वर' की मान्यतानुसार पाँच व्यक्तियों के समर्पित रूप से यज्ञ करने पर याज्ञिक कार्यो की सफलता सम्बन्धी धारणा, वैदिक कालीन सभा' 'समिति' एवं 'विदथ जैसी संस्थाओं से शासन के कार्यो में निर्णय करने की परम्पराएँ स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में पंचायती राज के अस्तित्व का प्रतीक है।

प्राचीन भारत के ही मौर्य शासन काल, गुप्त कालीन भारत एवं सातवाहन ' के शासन काल में शासन की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई 'ग्राम', ग्राम जनपद के रूप में मौजूद ग्राम सभा, दक्षिण भारत में चोल प्रशासन के काल में स्थानीय प्रशासन प्रणाली की विषेशताएँ के रूप में ग्राम व नगर परिषद 'नाडु' प्रतिनिधि परिषदों एवं मध्ययुगीन भारत के दिल्ली सल्लनत एवं मुगलकाल में मुकद्दम, पटवारी एवं चौधरी की मौजूदगी आदि तथ्य इस बात' का प्रतीक है कि शासनिक संचालन में विकेन्द्रीकरण का तत्व सदैव विद्यमान रहा है।

स्वतन्त्रता पूर्व ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन में साम्रज्यवादी हितों को ध्यान में रखते हुए स्थानीय संस्थाओं की औपचारिक स्थापना की गयी। 1687 से 1881 के कालखण्ड में ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन संस्थाओं के संगठन एवं कार्यप्रणाली की दृष्टि से व्यवस्थित रूप दिया गया। इस कालावधि में स्थानीय शासन संस्थाओं के निर्माण जैसे : - 1687 में मद्रास नगर निगम एवं 1726 में बम्बई व कलकत्ता नगर पालिकाओं की स्थापना, 1851 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के उपरान्त ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थानीय शासन संस्थाओं पर ध्यान देते हुए कुछ क्षेत्रों में जिला एवं तालुका फण्ड की स्थापना, 1870 में लार्ड मेयो के प्रस्ताव में पहली बा प्रशासनिक कुशलता हेतु लोकतान्त्रितक को अनिवार्य मानते हुए स्थानीय शासन संस्थाओं की स्थापना को आवश्यक मानना तथा सबसे महत्त्वपूर्ण 1882 में भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं की स्थापना के जनक माने जाने वाले लार्ड रिपन द्वारा पारित स्थानीय शासन संस्थाओं के प्रस्ताव को पारित कर प्रशासकीय कुशलता एवं राजनीतिक जागरूकता की इकाई के रूप में स्थानीय शासन संस्थाओं की स्थापना के लिए रूपरेखा प्रस्तुत कराई गयी। 20 अगस्त 1917 को ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के क्रमिक विकास द्वारा उत्तरदायी सरकार की स्थापना की घोषणा के उपरान्त 1919 में मॉण्टेस्क्यू चैम्सफोर्ड सुधारों, 1925 में विविध प्रान्तों में ग्राम पंचपायतों की स्थापना हुयी तथा 1935 में भारत सरकार अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्ता का प्रावधान किया गया जिसके तहत 1937 की गठित लोकप्रिय सरकारों ने स्थानीय संस्थाओं को उत्तरदायी एवं शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए

जिलाधीश के माध्यम से प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दिए गये लेकिन इन सरकारों ने त्यागपत्र देने से 1939 से 1946 तक स्थानीय शासन संस्थाएं निष्क्रिय रही।

स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन काल में स्थानीय शासन संस्थाओं का संगठनात्मक ढांचा एवं आकार तो दिया गया किन्तु इसका उद्देश्य सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं बल्कि स्थानीय क्षेत्रों पर नियंत्रण रख साम्राज्यवादी हितों का पोषण था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए संघर्श के दौरान महात्मा गाँधी द्वारा आधुनिक भारत में ग्राम स्वराज्य के लिए विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज की स्थापना का औचित्य हो चुका था। भारतीय गणतन्त्र के संविधान के अनुच्छेद 40, भाग. चार. (राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त) में यह ' किया गया कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उसको ऐसी शक्तियाँ तथा अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए है।

संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-2 (राज्य सूची) में भी स्थानीय अर्थात् नगर निगमों, सुधार न्यासों, जिला बोर्डों खनन बस्ती प्राधिकारियों और स्थानीय स्वशासन या ग्राम प्रशासन के प्रयोजनों के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकारियों का गठन व शक्तियों राज्य सूची के विषयान्तर्गत आते हैं।

स्वातन्त्रयोत्तर युग में पचास के दशक में 'विकास' के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के मार्ग का अवलम्बन किया गया। विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं ग्राम स्वराज्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए 2 अक्ट्रबर 1952 को 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' का आरम्भ किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुनरुद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की राष्ट्रीय जनता में सक्रिय रूचि पैदा करना था। किन्तु यह कार्यक्रम सरकारी तन्त्र और ग्रामीण जनता के बीच की दूरी को कम करने के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य में विफल रहा। बलवन्त राय मेहता समिति ने 1958 में दी गयी अपनी सिफारिशों में तीन सोपानों वाली स्थानीय सरकार की प्रणाली की सिफारिश की जिसे पंचायती राज का नाम दिया गया।

2 अक्ट्रबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज व्यवस्था का तत्कालीन प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा विविधवत उद्घोष किया गया। परम्परागत स्वरूप से भिन्न पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के अमियन्त्र के रूप में सम्पूर्ण देश में स्वीकारा गया। किन्तु सम्पूर्ण देश में पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली में एकरूपता का अभाव, नियतकालिक चुनावों के अभाव, पर्याप्त शक्तियों के न मिल पाने एवं स्वायत्ता के अभाव से ये संस्थाएं पूर्णत: सक्रिय रूप से कार्य नहीं कर पायी।

पंचायती राज व्यवस्था में संगठनात्मक, कार्यात्मक, वित्त, प्रशासनिक, कार्मिक नियन्त्रण एवं नियोजन सम्बन्धी समस्याओं को इंगित करने वाली विविध समितियों. अशोक मेहता समिति, डॉ. लक्ष्मीमल सिंधवी समिति (1977), जी.वी.के. राव समिति (1985) डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी (1966), पी.के. थुंगन समिति (1989), हरलाल सिंह खर्रा समिति (1990) आदि सुधार के सुझाव दिए। फलस्वरूप 24 अप्रैल 1993 को 73वे संविधान संशोधन से

पंचायती राज संस्थाओं एवं 74वे संविधान संशोधन से नगरीय स्थानीय शासन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देते हुए वैधानिक मान्यता दी गयी।

12.4.2 73वे संविधान संषोधन के प्रमुख अनुलक्षण

73वे संविधान के तहत संविधान मे एक नवीन अध्याय भाग 9 को अन्तःस्थापित किया गया है। इस भाग में अनुच्छेद 243क से 243ण तक है संविधान में पंचायतों से संबंधित ग्यारहवीं अनुसूची भी रखी गयी है। अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषतायें निम्नांकित है -

- पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक संस्तर प्रदान करना - 73वे संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संविधान द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गयी। अधिकांश विधान मण्डलों ने अनुपूरक विधान बना दिये हैं।
- त्रिस्तरीय प्रणाली - 73वे संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा तीन सोपानों मे पंचायतें बनाने की परिकल्पना की है। जिला स्तर पर जिला परिषद, खण्ड स्तर पर पंचायती समिति एवं गांव के स्तर पर ग्राम पंचायत
- ग्राम सभा की महत्ता - पंचायती राज व्यवस्था की जीवंत ऊर्जावान तथा शक्तिशाली बनाने के लिये ग्राम सभा को नवीन अधिनियम के तहत संवैधानिक दर्जा दिया गया है एवं ग्राम पंचायतों को ग्रामसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। ग्राम सभा को - गाँव की विधान सभा के रूप में परिकल्पित किया गया है।
- प्रत्यक्ष निर्वाचन - पंचायत के सभी स्थान पंचायत क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र के प्रत्यक्ष निर्वाचन से चुने गये व्यक्तियों द्वारा भरे जाने का निर्णय किया गया था। सभी पंचायतों, खण्ड स्तर व जिला परिषदों के लिये चुनाव प्रत्येक निर्वाचन द्वारा होगा। इन संस्थाओं के अध्यक्षों के चुनाव निर्वाचित सदस्यों में से उन्हीं के द्वारा होगा।
- अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिये आरक्षण - अधिनियम में यह उपलब्ध है कि अनुसूचित जातियों व जन-जातियों के लिये आरक्षण होगा। इस प्रकार आरक्षित स्थानों में से 173 स्थान अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिये आरक्षित होंगे।
- महिलाओं के लिये आरक्षण - प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से 173 स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित किये गया था। ग्राम अध्यक्ष पदों के लिये भी एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये जिसे अब बढ़ाकर वर्श 2011 में पंचायती राज संस्थाओं में सभी सीटों पर 50 प्रतिशत महिला आरक्षण तय किया गया है।
- नियमित चुनाव - प्रत्येक पंचायत उसके प्रथम बैठक की तिथि से पाँच वर्षो की अवधि तक कार्य करेगी। विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार उसे इसके पूर्व विघटित किया जा सकेगा। यदि पंचायत पहले विघटित कर दी गई तो विघटन के दिन से 6 मास के भीतर निर्वाचन हो जाने चाहिये। समयपूर्व विघटित पंचायत पुनर्गठन के पश्चात् अवशिष्ट अवधि के लिये ही होगी।

- राज्य निर्वाचन आयोग के गठन का उपलब्ध किया गया कि जिसमें एक राज्य निर्वाचन आयुक्त होगा जिसकी नियुक्ति पंचायतों के निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण उक्त राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा।
- पंचायतों की शक्तियाँ प्राधिकार व उत्तरदायित्व - 73वे संविधान संशोधन में इंगित किया गया है कि राज्य विधान मंडलों को यह विधायी शक्ति है कि वे पंचायतों को ऐसी व प्राधिकार प्रदान करें जिससे वे स्वशासी संस्थाओं के रूप में कार्य कर सकें (अनुच्छेद 243छ-243ज) पंचायतों को सौंपे जा सकने वाले उत्तरदायित्वों में मुख्य हैं -

  (क) आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनायें तैयार करना।

  (ख) आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाओं का क्रियान्वयन।

  (ग) 11 वीं अनुसूची से सम्बन्धित विषय।
- राज्य वित्त आयोग का गठन - संविधान प्रवर्त्तन के दिन से एक वर्ग की अवधि में और उसके पश्चात् प्रत्येक 5 वर्ष बाद राज्य सरकार पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन व राज्य व पंचायतों के बीच स्रोतों के आवंटन संबंधी अनुशंसाये देने के लिये राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाये।

12.4.3 पंचायती राज व्यवस्था एवं विकेन्द्रीकृत प्रक्रिया,

पंचायती राज भारतीय शासन व्यवस्था की विलक्षण व्यवस्था है। विकेन्द्रीकृत नियोजन को लागू करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था देश में विद्यमान सर्वाधिक प्रभावशाली व्यवस्था है। भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को पंचायती राज के माध्यम से जाना जा सकता है। पंचायती राज व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण नियोजन एवं पंचायती राज के आपसी अर्न्तसम्बन्धों को रेखांकित करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था के संक्षिप्त इतिहास विकास यात्रा, महत्त्वपूर्ण अनुलक्षणों तथा नियोजन प्रक्रिया के लिए अपनाये गये व्यावहारिक उपायों को जानना आवश्यक है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया के तीन मुख्य चरण हैं.

1. क्या करना है? 2. क्यों करना है? 3. कौन करेगा?

नियोजन के ये चरण स्थानीय स्तर पर सामाजिक स्थिति, रोजगार की स्थिति या स्थानीय क्षेत्र के संसाधनों की स्थिति से संबंधित हो सकते हैं।

73वे संविधान संबोधन के पश्चात् ग्रामीण एवं 74वे संविधान संशोधन के पश्चात् नगरीय क्षेत्रों में विकेन्द्रीकृत नियोजन के लिए संस्थागत प्रावधान किये गये हैं। ग्रामीण स्तर पर ग्राम स्तरीय योजना का निर्माण ग्राम सभा द्वारा किया जाता है जिसमें ग्राम सभा गाँव की विधानमण्डल की तरह कार्य करते हुए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार नियोजन के प्रस्तावों पर चर्चा करती है। इन प्रस्तावों को खण्ड स्तर पर पंचायत समिति पर भेजने से पूर्व ग्राम पंचायत के सदस्यों द्वारा समर्थित किया जाता है।

खण्ड स्तर पर पंचायत समिति द्वारा पंचायत स्तरीय विकास योजना बनाई जाती है जिसमें नियोजन के प्रस्तावों की छंटनी एवं योजनाओं व बजट को तकनीकी अनुमति प्रदान की

जाती है। जिला स्तर पर जिला परिषद् नियन्त्रण, समन्वय एवं मार्गदर्शन किया जाता है। इस प्रकार राज्य स्तर से नीचे आधार कड़ी गांव-खण्ड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद् द्वारा तालमेल से नियोजन निर्माण किया जाना निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार जिला सरकार की संकल्पना अभिकल्पित की गई है। जिला योजना के माध्यम से जिला स्तरीय योजना तैयार करके देश के विविध राज्यों में विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया अपनायी जा रही है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन के विविध आयाम कार्यात्मक, वित्तीय, प्रशासनिक एवं राजनीतिक है। आज पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय ढांचे जिला, खण्ड एवं ग्रामीण स्तर पर गठित पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से हम विकेन्द्रीकृत नियोजन को परिचालित कर रहे हैं।

12.5 विकेन्द्रीयकृत व्यवस्था और नियोजन पर महात्मा गाँधी के विचार

महात्मा गाँधी के विकेन्द्रीकरण नियोजन संबंधी विचार उनके लेखों संभाशणों एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के अभियानों में प्रकट होते हैं। उनके राजनैतिक एवं आर्थिक विचारों में केन्द्रीकरण का विरोध एवं विकेन्द्रीकरण का समर्थन करते हुए ग्राम स्वराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की गई है। महात्मा गाँधी की मान्यता थी कि ' 'केन्द्रीकरण से हिंसा आती है और हिंसा से शोषण को बल मिलता है। इसलिए शोषण और अन्याय से मुक्त के लिए केवल अहिंसक आचरण का सामाजिक गठन करना पड़ता है। " इस दृष्टि से वे यह मानते थे कि जिस राज्य में शक्ति का जितना ही अधिक केन्द्रीकरण होगा, उसमें व्यक्ति या नागरिक कै विकास की अवस्था उतनी ही अधिक अवरूद्ध होगी। लोकतन्त्र राजतन्त्र से एक कदम आगे तो है, क्योंकि उसमें व्यक्ति के विकास और स्वतन्त्र आचरण को एक सीमा तक छूट है किन्तु कुछ दूर तक जाकर उसका मार्ग भी ठप हो जाता है और उसे भी शासन के ही मुख्यांग (सेना, पुलिस, कानून, अदालत-मतलब बलात् आदेश मनवाने के अस्त्र या साधन): ग्रहण करने पड़ते हैं, जो अन्य-शासन प्रणालियों की शक्ति प्रदान करते हैं। तत्वतः लोकतन्त्र और हिंसा परस्पर विरोधी हैं। जब तक हिंसा है, सच्चा लोकतन्त्र स्थापित नहीं हो सकता।

केन्द्रीकरण न होने पाये, इसके लिए वह पहले तो व्यक्ति और समाज के जीवन में आज धन का जो परिवर्धित महत्त्व है, उसे कम करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने सर्वोदय के सिद्धान्त का प्रतिादन किया है। उनकी मान्यता थी कि लोक शक्ति कुछ लोगों अथवा दलों के हाथ में जाकर बाँझ हो जाती है। लोकतन्त्र की सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि उसमें शासन देश या समग्र जनता के नाम पर किया जाता है, किन्तु सत्ता किसी दल-विशेष के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। स्पष्ट है कि गाँधी व्यक्ति, समुदाय एवं राज्य किसी भी स्तर पर केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं थे। गाँधी के विकेन्द्रीयकृत व्यवस्था और नियोजन संबंधी विचारों को निम्नांकित बिन्दुओं में समेकित किया जा सकता है :

12.5.1 ग्रामीण गणतंत्र के पक्षधर

हरिजन में लिखे अपने लेख (हरिजन 4-4-36) उन्होंने स्पष्ट किया है कि " गाँधीजी का आदर्श राज्य है रामराज्य। इसका अर्थ शब्द नहीं लेना चाहिए क्योंकि उसका मतलब राजा राम का राज्य नहीं है; इसका अर्थ है धर्म का राज्य, न्याय और प्रेम का राज्य। गाँधीजी के शब्दों में उसे अहिंसक स्वराज्य कहना चाहिए अर्थात् ऐसा स्वराज्य जिसमें राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाय कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने से नियंत्रण रखे। 'यह एक सुसंस्कृत अराजकता की अवस्था होगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना ही शासक होगा। वह स्वयं ही अपना नियमन इस प्रकार करेगा जिससे उसके पडोसी के हित में बाधा न हो। इसीलिए आदर्श राज्य में कोई राजनीतिक शक्ति नहीं निहित होगी क्योंकि राज्य रहेगा ही नहीं। '

ग्रामीण शोषण का विरोध करते हुए महात्मा गाँधी यंग इंडिया, (30. 3. 1931) स्पष्ट करते हैं कि ' 'मैंने पाया है कि शहरवासियों ने आम तौर पर ग्रामवासियों का शोशण किया है, सच तो यह है कि ये गरीब ग्रामवासियों की ही मेहनत पर जीते हैं। भारत के निवासियों की हालत पर कई ब्रिटिश अधिकारियों ने बहुत कुछ लिखा है। जहां तक मैं जानता हूं किसी ने भी यह नहीं कहा कि भारत ग्रामवासियों को भरपेट अन्न मिलता है। उलटे, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि अधिकांश आबादी लगभग भुखमरी की हालत में रहती है, दस प्रतिशत अब भूखी रहती है और लाखों लोग चुटकीभर नमक और मिर्चों के साथ मशीनों का पालिश किया हुआ नि: सत्त्व चावल या रूखा-सूखा अनाज खाकर अपना गुजारा चलाते हैं।

शहर अपनी हिफाजत आप कर सकते हैं। हमें तो अपना ध्यान गांवों की और लगाना चाहिये। हमें उन्हें उनकी संकुचित दृष्टि, उनके पूर्वग्रहों और वहमों आदि से मुक्त करना है; और इसे करने के सिवा इसके और कोई तरीका नहीं है कि हम उनके साथ उनके बीच में रहें, उनके सुख-दु:ख में हिस्सा से और उनमें शिक्षा का तथा उपयोगी ज्ञान का प्रचार करें।

गाँधीजी ने ग्राम स्वराज के बारे में लिक्ष है 'ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि गांव अपनी वृहत् इच्छाओं के अनुरूप, अपने आप में पूरी तरह स्वतंत्र गणराज्य हों। गांव की पंचायत कम से कम पांच व्यक्तियों द्वारा चलाई जाए जो ग्रामीण युवा, स्त्री-पुरुषों द्वारा चुने हों और न्यूनतम योग्यताओं को पूरा करते हों। ये अपने कार्यक्षेत्र में समस्त आवश्यक अधिकारों से सम्पन्न हों, वहां स्वीकृत अर्थों में दण्डित करने की कोई व्यवस्था नहीं होगी, फिर भी पंचायतें वैधानिक, कार्यकारी और न्यायिक कार्यो को एक साथ क्रियान्वित करेंगी। कोई भी पंचायत इस तरह का गणतंत्र बन सकेगी, आज होने वाले हस्तक्षेपों से मुक्त होकर यही व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आधारित पूर्ण प्रजातंत्र होगा। व्यक्ति खुद अपनी सरकार का निर्माता होगा। सच्चा स्वराज्य कुछ लोगों द्वारा शक्ति हथिया लेने से नहीं, बल्कि सब लोगों में उसकी क्षमता पा लेने पर आएगा।

12.5.2 स्थानीय समुदाय की भागीदारी से भारत के गांवों का पुनर्निर्माण

महात्मा गाँधी ने गांवों के स्वावलम्बी ढांचे का समर्थन करते हुए स्थानीय प्रयासों से स्थानीय समस्याओं का समाधान का विकल्प रखा है। उनका कथन है कि ' 'हमें आदर्श

ग्रामवासी बनना; ऐसे ग्रामवासी नहीं उन्हें सफाई की या तो कोई समझ नहीं है या है तो बहुत विचित्र प्रकार की, और जो इस बात का कोई विचार ही नहीं करते कि वे क्या खाते हैं और कैसे खाते हैं। उनमें से ज्यादातर लोग चाहे जिस तरह अपना खाना पका लेते हैं, किसी भी तरह का खा लेते हैं और किसी भी तरह रह लेते हैं वैसा हमें नहीं करना है।

लिओनेल कार्टिस ने हमारे गांवों का वर्णन करते हुए उन्हें 'घूरे के ढेर कहा है। हमें उन्हें आदर्श बस्तियों मे बदलना है। हमारे ग्रामवासियों को पुद्ध हवा नहीं मिलती, यद्यपि वे शुद्ध हवा से घिरे हुए हैं; उन्हें ताजा अन्न नहीं मिलता, यद्यपि उनके चारों ओर ताजे से ताजा अन्न होता है। इस अन्न के मामले में मैं मिशनरी की तरह इसीलिए बोलता हूं कि मैं गांवों को एक सुन्दर दर्शनीय वस्तु बना देने की आकांक्षा रखता हूं। "

हर एक देशप्रेमी के सामने आज जो काम है वह यह है कि इस नाम की क्रिया को कैसे रोका जाय या दूसरे शब्दों में भारत के गांवों का पुनर्निर्माण कैसे किया जाय, ताकि किसी के लिए भी उनमें रहना उतना ही आसान हो जाय जितना आसान वह शहरों में माना जाता है। सचमुच हर एक देश भक्त के सामने आज यही काम है। सम्भव है कि ग्रामवासियों का पुनरुद्धार अवश्य हो, और यह भी सच हो कि ग्राम-सभ्यता के दिन अब बीत गये हैं और सात लाख गांवों की जगह अब केवल सात सौ सुव्यवस्थित शहर ही रहेंगे और उनमें 30 करोड़ आदमी नहीं, केवल तीन ही करोड़ आदमी रहेंगे। अगर भारत के भाग्य में यही हो तो भी यह स्थिति एक दिन में तो नहीं आयेगी; आखिर गाँवों और ग्रामवासियों की इतनी बड़ी संख्या के मिटने में ओर जो बचे रहेंगे उनका शहरों और शहरवासियों में परिवर्तन करने में समय तो लगेगा ही।

हरिजन (19.10.1937) में लिखे अपने लेख में महात्मा गाँधी गांव और शहरों के बीच संतुलित विकास का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि ' 'गांवों और शहरों के बीच स्वास्थ्यपूर्ण और नीति युक्त संबंध का निर्माण तब होगा जब कि शहरों को अपने इस कर्त्तव्य का ज्ञान होगा कि उन्हें गांवों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करने के बजाय गांवों से जो शक्ति और पोषण वे प्राप्त करते हैं उसका पर्याप्त बदला देना चाहिये। और यदि समाज के पुनर्निर्माण के इस महान और प्रदात्त कार्य में शहर के बालकों को अपना हिस्सा अदा करना है, तो जिन उद्योगों के द्वारा उन्हें अपनी शिक्षा दी जाती है। वे गांवों की जरूरतों से सीधे संबंधित होने चाहिये। "

हरिजन (16.5.36) के एक अन्य लेख मे वे स्पष्ट करते हैं कि ग्रामीण समस्याओं का हल स्थानीय नियोजन में लोगों की सहभागिता से ही हो सकता है। उन्होंने लिखा है कि ' 'हमें गांवों को अपने चंगुल में जकड़ रखने वाली जिस त्रिविध बीमारी का इलाज करना है, वह इस प्रकार है (1) सार्वजनिक स्वच्छता की कमी, (2) पर्याप्त और पोषक आहार की कमी, (3) ग्रामवासियों की जड़ता।... ग्रामवासी जनता अपनी उन्नति की ओर से उदासीन है। स्वच्छता के आधुनिक उपायों को न तो वे समझते हैं और न उनकी कद करते हैं। अपने खेतों को जोतने-बोनेया जिस किस्म का परिश्रम वे करते आये हैं वैसा परिश्रम करने के सिवा अधिक श्रम करने

के लिए वे राजी नहीं हैं। वे कठिनाइयां वास्तविक और गम्भीर हैं। लेकिन उनसे हमें घबराने की या हतोत्साह होने की जरूरत नहीं है।

12.5.3 ग्राम-स्वराज्य से ही पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना;

गाँधी जी ने प्रकट किया है कि ' 'ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पडोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा; और भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए- जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा- वह परस्पर सहयोग से काम। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपडे के, कपास खुद पैदा कर लें। उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़े व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरा का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके; यों वह गांजा, तम्बाकू अफीम की खेती से बचेगा।

हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभा-भवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा- वाटर वर्क्स होंगे- जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात-पात और ऋमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-सभा में बिलकुल नहीं रहेंगे। आज भी अगर कोई गांव चाहे तो अपने यहां इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है। उसके इसे काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दखलंदाजी नहीं करेगी। क्योंकि उनका गाँव से जो भी कारगर संबंध है, वह सिर्फ मालगुजारी वसूल करने तक ही सीमित है। यहां मैंने इस बात का विचार नहीं किया है कि इस तरह के गांव का अपने पास-पड़ोस के गांव के साथ या केन्द्रीय सरकार के साथ, अगर वैसी कोई सरकार हुई, क्या संबंध रहेगा। मेरा हेतु तो ग्राम-शासन की एक रूपरेखा पेश करने की ही है। इस ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला संपूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे। अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकेगा। क्योंकि हर एक देहाती के जीवन का बडा नियम यह होगा कि वह अपनी ओर अपने गांव की इज्जत की रक्षा के लिए मर मिटे।

उनके अनुसार आदर्श लोकतन्त्र सत्याग्रही ग्राम्य-समाजों का एक संघ होगा। ' 'अहिंसा पर आश्रित समाज में गाँवों में बसने वाले ऐसे समूह सम्मिलित होंगे जिसमें सम्मानित एवं शान्तिमय अस्तित्व के स्वेच्छापूर्ण सहयोग की शर्त होगी। ' यह संघ और उसके सब विविध समूह स्वेच्छया संघटित होंगे। यह समाज एक ऐसा विकेन्द्रित समाज होगा जिसमें समता का स्वर जीवन के प्रत्येक स्तर में व्याप्त होगा। विकेन्द्रीकरण इसलिए आवश्यक है कि केन्द्रीकरण रवे सत्ता कुछ ही लोगों के हाथ में चली जाती है और सत्ता का होने की संभावना बढ जाती है। इससे व्यक्ति में पहल करने की, नवीन बातें खोजने की शक्ति तथा जो भी शक्तियाँ उसमें

होती है, वे दब जाती हैं। वह एक भहायंत्र का पुर्जामात्र बन कर रह जाता है, उसकी दिव्य चेतना और अन्याय का प्रतिकार करने की भावना स्फुरित नहीं होती।

12.5.4 पंचायत राज ग्रामीण भारत की बुनियाद

महात्मा गाँधी पंचायती राज को ग्रामीण भारत की बुनियाद मानते थे। इसके लिए - उन्होंने पंचायती राज की अवधारणा के आधार पर गांव के उन्नति की रूपरेखा को प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि ' 'आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिये। हरएक गांव में जम्हूरी सल्लनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरएक गांव को अपने पांव पर खडा होना होगा- अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होगी, ताकि वह अपना साल कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटने के लायक बन जाये। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पडोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय; या उनकी राजी-खुशी से हुई मदद न ली जाय। कल्पना यह है कि सब लोग आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाज का हर एक आदमी यह जानता है कि उसे क्या चाहिये और इससे भी बढकर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरों को जो चीज नहीं मिलती है वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिये, वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दर्जे की सभ्यता वाला होना चाहिये। ऐसे समाज की रचना सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है।

ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक ही शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पडता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्धु होगा।

हरिजनसेवक 2.8.42 में वे प्रकट करते हैं कि गांव का शासन किस प्रकार संचालित होगा' 'सत्याग्रह ओर असहयोग के शास्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गांव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गांव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। इसके लिए गांव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जायेगा। गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों का चयन चनी -जायेगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यतावाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूंकि इस ग्राम-स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी। "

हरिजन (1.7.47) में लिखे अपने लेख में वे स्पष्ट करते हैं कि पंचायती राज की स्थापना के बाद अनेक समस्याओं का समाधान हो जायेगा। उनकी मान्यता है कि जब पंचायत राज स्थापित हो जायेगा तब लोकतंत्र ऐसे भी अनेक काम कर दिखायेगा, जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है, जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता। अगर लोग जमींदारी और पूंजीवाद की बुराई से सहयोग करना बन्द कर दे, तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जायेगी। पंचायतराज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जायेगी और पंचायत अपने बनाये हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी।

12.5.5 औद्योगीकरण का विरोध एवं लघु उद्योगों का समर्थन

गाँधीजी के द्वारा औद्योगीकरण का विरोध करते हुए कुटीर उद्योग-धन्धों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन किया गया, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करेगा। वे खादी को भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का अमोघ हल मानते थे और उनके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के विचार का प्रतिपादन किया गया। उन्होंने लिखा है कि ' 'आज संसार में दो प्रकार की विचारधारा में प्रचलित हैं। एक विचारधारा जगत को शहर में बांटना चाहती है और दूसरी उसे गांवों में बांटना चाहती है। गांवों की सभ्यता और शहरों की सभ्यता दोनों एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है। शहरों की सभ्यता यंत्रों पर और उद्योगीकरण पर निर्भर करती है; और गांवों की सभ्यता हाथ-उद्योगों पर निर्भर करती है। हमने दूसरी सभ्यता को पसन्द किया है। ' विकेन्द्रीकरण की नीति की सफलता के लिए ग्रामों में ही लघु उद्योग-धन्धों का संगठन होना चाहिए। ये उद्योग-धन्धे मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होंगे। क्या है मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं ' भोजन, वस्तु, निवास तथा इनको उपलब्ध करने के लिए काम। इनके साथ व्यक्ति की मौलिक सद्वृतियों के विकास के लिए प्रेरणायुक्त परिवेश। गाँधीजी इन सब आवश्यकताओं के प्रति बहुत सजग हैं। उनके विचार से प्रत्येक मनुष्य के लिए इनकी पूर्ति होनी ही चाहिए। अन्न ग्रामों में पैदा होता है। भारत की अधिकांश जनसंख्या खेती-किसानी करती है। उसके भोजन के साधन वहीं उपलब्ध हैं, टूटे-फूटे निवास भी वहीं हैं। अब यदि कपड़े और जीविका की समस्या भी वहीं आस-पास हल हो जाय तो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के विषय में हमारे ग्राम, दूसरे शब्दों में इस देश की तीन-चौथाई जनता, आत्मनिर्भर हो सकती है। इसीलिए गाँधीजी ने प्रत्येक परिवार को स्वयं कातने का कार्यक्रम बताया था। यदि यह कार्यक्रम प्रचारित हो तो प्रत्येक गाँव में या दो तीन गाँव के बीच एक जुलाहा-परिवार आजीविका प्राप्त कर सकता है; चर्खे या तकली के लिए कई बढ़ई परिवारों को काम मिल सकता है। साथ ही रंगरेज, धोबी, चमार आदि आजीविका पा सकते हैं। इस तरह न केवल कपड़े के मामले में गाँव आत्मनिर्भर हो सकते हैं, बल्कि अपने ही परिवार और गाँव के निकट जीविकोपार्जन का साधन मिल जाने से श्रमिक की मानसिक शान्ति बनी रहती है। इन गाँवों के निकट (जीवन की आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने वाले अनेक छोटे-छोटे गृह-उद्योग चलाये जा सकते हैं। आर्थिक व्यवस्था के संबंध में अपनाए गए इसी

नैतिक दृष्टिकोण के कारण गाँधीजी के द्वारा औद्योगिक क्रान्ति और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का विरोध किया गया है।

गाँधीजी का मानना था कि अगर गांव नष्ट हो जायेंगे, तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जायेगा। गांवों का शोषण खुद एक संगठित हिंसा है। वे कहते थे कि अगर हमें स्वराज्य की रचना अहिंसा के सुधार पर करनी है, तो गांवों को उनका उचित स्थान देना ही होगा। उन्होंने कहा कि उनका उद्देश्य तो ग्राम-शासन की एक रूपरेखा पेश करने का ही है। उनके अनुसार ' 'इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला संपूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे। अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकेगा। क्योंकि हर एक देहाती के जीवन का सबसे बडा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गांव की इज्जत ' की रक्षा के लिए मर मिटे। ',

12.5.6 सीमित कार्य करने वाला आदर्श राज्य

इसका मतलब यह है कि गाँधीजी की दृष्टि से वही राज्य अच्छा है जो कम से कम शासन करता है, और वह राज्य आदर्श है जो शासन करता ही नहीं, जिसमें सम्पूर्ण इकाइयां स्वयं ही अपना शासन कर लेती है। अधिक से अधिक शासन का कार्य उन आत्म-नियन्त्रित इकाइयों के संयोजन का है- ' 'सूत्रे मणिगणा इव। ' जैसे धागे में मनके पिरोये होते हैं वैसे ही राज्य में आत्मनियन्त्रित व्यक्ति संघटित हो जाते हैं। यह आदर्श समाज 'एक प्रकार का स्वतन्त्र परन्तु आत्मनियन्त्रित व्यक्तियों का समुदाय होगा। 'ऐसे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होगा और वह अपना शासन इस प्रकार करेगा कि अपने पडोसी के लिए कभी बाघारूप न होगा। इसलिए आदर्श राज्य में कोई राजनैतिक सत्ता न होगी क्योंकि उसमें कोई राज्य होगा ही नहीं। "

इसलिए गाँधीजी के स्वराज्य का आदर्श ऐसा नैतिक राज्य हैं जिसका प्रत्येक नागरिक उच्च नैतिक स्तर तक विकसित हो चुका है ओर उसका स्वयं ही अपने लोभ, स्वार्थ या आकांक्षाओं पर इतना नियन्त्रण है कि किसी भी पडोसी या सह-नागरिक के हित को उससे हानि पहुँचने का खतरा नहीं है।

सारतः गाँधीवादी विकेन्द्रीकृत नियोजन से संबंधित विचार एक ओर नैतिक प्रेरणाओं और दूसरी ओर स्वावलम्बी ग्राम स्वराज के ढांचे के विकास पर निर्भर करता है। गाँधीजी के विकेन्द्रीकरण नियोजन संबंधी व्यवहार अव्यवहारिक नहीं है बल्कि उनके जीवन अनुभव के यथार्थ से प्रेरित हैं। गाँधीजी ने स्वप्न देखे अवश्य, किन्तु स्वप्न को व्यवहार के धरातल पर ले आने का आग्रह उनमें बहुत अधिक था। उनके जैसे व्यवहारवादी संसार में कम ही हुए हैं। किसी भी सिद्धान्त को जब तक वह जीवन में उतार नहीं लेते, तब तक उसका उपदेश दूसरों को करते नहीं थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ही एक प्रयोगशाला की भाँति था।

भारत गाँवों का देश है। इसीलिए गांवों की समृद्धि पर ही भारत की वास्तविक समृद्धि निर्भर है। महात्मा गाँधी का यह विचार आज स्वतंत्रता के छ दशक के उपरान्त भी एक सच्चाई

है। गाँधीवादी विकेन्द्रीकृत नियोजन संबंधी विचार व्यक्ति एवं समाज के बीच, तथा समाज के विविध वर्गो के बीच समन्वय, सहयोग, एकीकरण एवं हित-साम्य की स्थापना करती है।

महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचारों में स्वराज्य की कल्पना एवं राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रकट विचारों के अर्न्तनिहित विकेन्द्रीकरण की प्रासंगिकता को प्रकट करते हैं बल्कि व्यक्ति व समष्टि के समन्वय, विकेन्द्रित अर्थप्रणाली की पक्षधरता, मांग व पूर्ति के नियम को नहीं मानती। यह विचारधारा प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग महायान्त्रिक सभ्यता का विरोध श्रम के महत्त्व की स्थापना, लघु उद्योगों पर आधारित स्वावलम्बी ढाँचा और अन्ततः किसी भी प्रकार के शोषण की समाप्ति के सिद्धान्तों पर आधारित है।

12.6 सारांश

विकेन्द्रीकृत नियोजन योजना का ऐसा प्रकार है जिसमें स्थानीय संगठन एवं संस्थाएं बिना किसी केन्द्रीय संस्था के हस्तक्षेप के योजनाओं का निर्माण, कार्यान्वय एवं अपनायी जाने वाली गतिविधियों का निर्धारण एवं पर्यवेक्षण कर सके। यह स्थानीय समुदाय द्वारा विकास के लिए अपना मार्ग तय करने, निर्णय लेने के अवसर का प्रयोग है। देश की 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण आबादी का नियोजन प्रक्रिया से जोडे बिना आर्थिक विकास के कार्यक्रम योजनाएं कागजी होंगे। अतः आधार से विकास सहभागी लोकतन्त्र, समग्र विकास एवं उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिनिधित्व, सक्षम नेतृत्व के विकास के लिए यह आवश्यक एवं औचित्यपूर्ण है। आर्थिक नियोजन के लिए 1951 में प्रारम्भ की गयी प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही विकेन्द्रीकृत नियोजन के महत्व को स्वीकारा गया जिसे 1952 में प्रारम्म किए गये सामुदायिक विकास कार्यक्रमों एवं 1959 में पंचायती राज के उद्घोष से लेकर विविध समय पर विविध निर्णयों एवं अन्ततः 73वे संविधान संशोधन एवं 74वे के माध्यम से स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देकर विकसित किया गया है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन के विविध आयाम कार्यात्मक, वित्तीय, प्रशासनिक एवं राजनीतिक है। आज पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय ढांचे जिला, खण्ड एवं ग्रामीण स्तर पर गठित पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से हम विकेन्द्रीकृत नियोजन को परिचालित कर रहे हैं। आज देश के आर्थिक विकास हेतु निर्मित पंचवर्षीय योजना में जिला स्तरीय योजना को विशेष महत्व दिया जा रहा है। भारत देश की नई दिल्ली या राज्यों की राजधानियां नहीं बल्कि वो लाखों गांव हैं जहां 70 प्रतिशत आबादी का निवास है तथा जहां से 28.14 लाख पंचायत प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आते हैं। महात्मा गाँधी ने दशकों पूर्व ही भारत के राष्ट्रीय के दौरान ही अपने राजनीतिक आर्थिक विचारों में ही जीवन के हर क्षेत्र में केन्द्रीकरण का विरोध एवं (विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता एवं महत्त्व को अभिव्यक्त किया है।)

विकेन्द्रीकरण नियोजन के संबंध में महात्मा गाँधी की दृष्टि को उनके ग्रामीण गणतंत्र की स्थापना, शक्ति के केन्द्रीकरण को हिंसक मानना, सर्वजन हिताय का समर्थन, ग्रामीण स्वराज्य की परिकल्पना, स्वावलम्बी ग्रामीण ढांचे की स्थापना हेतु लघु उद्योग को प्रोत्साहन, औद्योगीकरण तथा पंचायती राज की स्थापना की रूपरेखा में भी देखा जा सकता है। गाँधीजी को विकेन्द्रीकृत नियोजन संबंधी विचारों से स्पष्ट होता है कि नियोजन की उनकी पद्धति समस्त

मानव को साथ लेकर चलना चाहती है। यह केवल एक भौतिक पद्धति नहीं है बल्कि उसमें गहरे नीतिशास्त्रीय मुद्दे भी अन्तर्निहित है। संसार को भावी व्यवस्था में दो ही चीजों गाँव और विश्व के अस्तित्व को स्वीकार कर वे सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ही गांव को मानते हैं जिसके केन्द्र में विश्व सत्ता होगी।

73वे एवं 74वे संविधान संशोधन के पश्चात भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं में विकेन्द्रीकृत नियोजन का ढांचा संस्थागत रूप भले ही ले पाया हो लेकिन इसे कार्यात्मक रूप में ढलने के लिए गाँधीवादी विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाना होगा। निःसन्देह विकेन्द्रीकरण नियोजन यान्त्रिक रूप से दूर गाँधीवादी विकेन्द्रीकरण के विचार व्यष्टि एवं समष्टि के समग्र विकास, आर्थिक समानता एवं मानवीयता एवं नीति के आधारों से जुड़ी है। आज स्वतन्त्रता के 6 दशकों के उपरान्त हम यह स्वीकार करते है कि विषमताओं से मुक्त उन्नत समाज और राष्ट्र के रूप में हमारी समस्याओं का समाधान विकेन्द्रीकृत नियोजन है। सात लाख से ज्यादा गांवों में शामिल किए बिना विकास के सारे प्रयास निकल होंगे। महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता से पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ही भारत के बेहतर भविष्य के लिए ग्राम स्वराज्य, विकेन्द्रीकृत नियोजन, स्वावलम्बी ग्रामीण ढांचे। पंचायती राज के सूत्र सुझाये थे। गाँधीवादी चिन्तन की इस दूरदर्शिता को राजनीतिक, प्रशासनिक इच्छाशक्ति में, अपनाकर सुशासन, सहभागी लोकतन्त्र एवं समग्र विकास के लक्ष्यों को अर्जित कर उन्नत भारत के निर्माण के साकार कर पायेंगे। यही एक मात्र विकल्प एवं विकास का मार्ग है।

12.8 अभ्यास प्रश्न

1. विकेन्द्रीकृत नियोजन का अर्थ एवं औचित्य क्या है'
2. विकेन्द्रीकृत नियोजन के विकास के विविध चरण कौन से हैं?
3. पंचायती राज में विकेन्द्रीकृत नियोजन का विवेचन कीजिए।
4. विकेन्द्रीकृत नियोजन के विविध आयाम कौन से हैं?
5. विकेन्द्रीकृत नियोजन के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी के विचार क्या हैं?

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम. के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम. के. गाँधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1963
3. एम. के. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, गाँधीजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1997
4. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
5. राय, रामाश्रय, सेल्फ एण्ड सोसाइटी ए स्टडी इन गाँधीयन थॉट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985
6. चतुर्वेदी, डी. एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 1991
7. एन. के. बोस, 'सलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
8. कुमरप्पा, जे. सी. गाँधीयन इकोनोमिक थॉट, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी, 1962

9. पीपल्स पार्टिसिपेशन इन प्लानिंग, डी. बन्धोपाध्याय, इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम- 32, नम्बर 39, 1997

इकाई - 13

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 गाँधी और ग्राम स्वराज

13.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

13.3.1 अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था

13.3.2 अर्थव्यवस्था का आधार व लक्ष्य-मनुष्य

13.3.3 समानतार पर आधारित अर्थव्यवस्था

13.3.4 कायिक श्रम और सभी व्यवसायों की समानता

13.3.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

13.3.6 यंत्रीकरण व उद्योगीकरण का विरोध

13.3.7 खादी और ग्रामोद्योग पर बल

13.3.8 ग्राम स्वावलम्बन व सहयोग

13.3.9 स्वच्छता और स्वास्थ्य व्यवस्था

13.3.10 शिक्षा व्यवस्था

13.4 गाँधी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बंधी विचारों की प्रांसगिकता

13.5 सारांश

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप समझ सकेंगे :-

- गाँधीजी के ग्राम स्वराज्य सम्बन्धी विचारों से अवगत हो सकेंगे।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, खादी व ग्रामोद्योग सम्बन्धी अवधारणाओं से परिचित हो पाऐगें।
- ग्राम स्वावल्बन, सहयोग, स्वच्छता, स्वास्थ्य इत्यादि विषयों पर गाँधीजी के विचारो को जान पाऐंगे।
- ग्रामणी अर्थव्यस्था सम्बन्धी गाँधीवादी प्रतिमान को संक्षेप में समझ पाऐंगे।

13.1 प्रस्तावना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग भवेत्।

अर्थात् सबका उदय, सबका उत्कर्ष, सबका विकास, सबका सुख है। गाँधी ने इसी भावना को अपने आर्थिक दर्शन का आधार बनाया। उनके अनुसार सर्वोदय का लक्ष्य है आध्यात्मिक उन्नति एवं जीवन शुद्धि। इसमें समस्त विश्व और प्रत्येक प्राणी का ध्यान रखा जाता है और ' 'वसुधैव कुटुम्बकम् " की धारणा रहती है। इस व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य अपनी सामर्थ्यानुसार श्रम करेगा और उत्पादित वस्तुओं का आवश्यकतानुसार उपभोग कर शेष समाज के लिए छोड देगा। गाँधीजी के अनुसार इस व्यवस्था में ग्रामीण जीवन को अधिक महत्त्व मिलेगा, क्योंकि अन्य कच्चा माल या दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य की जीवन-दायिनी समस्त वस्तुओं का उत्पादन गाँव में ही होता है।

सारी अर्थव्यवस्था की बुनियाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित है। गाँधीजी के अनुसार इस ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो, ग्राम स्वावलम्बन, विकेन्द्रीकरण व लघु-कुटीर उद्योग कंधों पर आधारित है, के विभिन्न पहलुओं का संवर्द्धन व संरक्षण अत्यावश्यक है। उनका कहना था कि भावी विश्व-व्यवस्था की. उज्जवल आशा गाँवों पर अर्थात् सहकारी समाजों पर निर्भर करती है, जहाँ किसी तरह की मजबूरी नहीं है, किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं है, बल्कि सारे काम ऐच्छिक सहयोग के आधार पर चलते हैं।

13.2 गाँधी और ग्राम स्वराज्य

गाँधीजी के अनुसार आदर्श समाज राज्य-रहित लोकतन्त्र है, प्रबुद्ध और जाग्रत अराजकता की अवस्था है, जिसमें सामाजिक जीवन इतनी पूर्णता के स्तर पर पहुँच जाता है कि वह स्वयंशासित और स्वयं नियन्त्रित हो जाता है। उनके अनुसार आदर्श अवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि किसी राज्य का अस्तित्व नहीं होता। गाँधीजी एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे। वे जानते थे कि राज्य का पूर्ण उन्मूलन संभव नहीं है अत: उन्होंने ग्राम स्वराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की। ग्राम स्वराज्य में राज्य का अंत नहीं होता परन्तु राज्य का विकेन्द्रीकरण होता है। गाँधी के अनुसार, ' 'सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठें हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। उसे प्रत्येक गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा। " ग्राम स्वराज्य में प्रत्येक व्यक्ति सीधे रूप में शासन या सरकार का निर्माता होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम से नियन्त्रित होंगे। गाँधीजी के अनुसार, " गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गाँव के व्यस्त स्त्री-पुरूषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। चूंकि इस ग्राम स्वराज्य में सजा अथवा दंड की कोई प्रथा नहीं रहेगी इसलिए यह पंचायत अपने कार्य अपने एक वर्ष के कार्यकाल में स्वयं ही धारा सभा, न्यायसभा, और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी। उनके अनुसार ग्राम स्वराज्य एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रत्येक गाँव स्वाश्रयी और आत्म निर्भर होंगें और गाँव के नागरिक सत्ता नियंत्रित ना होकर स्व-नियंत्रित होंगें, वे प्रत्येक कार्य के लिए सरकार की और ताकने वाले न होकर हर कार्य अपनी सूझ-बूझ से करने वाले उत्तरदायित्व की उच्च विकसित भावना से युक्त

होंगे। ग्राम स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथ में होगी। इस प्रकार गाँधीजी का आदर्श ग्राम-स्वराज्य एक वास्तविक एवं शक्तिशाली लोकतन्त्र है जिसमें राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक स्वतन्त्रता भी विद्यमान रहती है। ऐसा सच्चा विकेन्द्रित लोकतन्त्र सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उदात्त सन्देश देने वाला होगा।

13.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

गांधीजी का कहना था कि भारत गाँवों में निवास करता है। शहरों का कितना भी विकास क्यों ना हो जाये, भारत से गाँव की व्यवस्था समाप्त नहीं की जा सकती है। देश की अधिकांश आबादी गाँव में ही बसती है। अत: जब तक गाँव की व्यवस्था स्वतन्त्र नहीं रहेगी तब तक राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है। जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था शहरों पर निर्भर रहेगी तब तक देश का वास्तविक विकास संभव नहीं है। उनके द्वारा प्रतिपादित ग्राम-स्वराज्य की संकल्पना का आशय ऐसी सरल और सादी ग्राम अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण-रहित और विकेन्द्रित है वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्धक करती है और जीवन क अन्य-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बन के सिद्धान्त को लागू करती है। विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में खादी और ग्रामोद्योग का प्रमुख स्थान है। गाँधीजी का कहना था कि हर व्यक्ति को पूरा काम देने वाली अहिंसक ,एवं विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिए हमें उद्योगवाद का, केन्द्रित उद्योग-धन्धों का और अनावश्यक " का त्याग करना होगा।

गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट हेतु अग्रांकित बिन्दु महत्वपूर्ण है:-

13.3.1 अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था

गाँधीजी अर्शव्यवस्था के अहिंसात्मक आधार पर अत्यधिक बल देते हैं। उनके अनुसार दूसरे का दु:ख अपना दु:ख मानना, दूसरे का सूख अपना दु:ख मानना ही अहिंसा के सिद्धान्त की सामाजिक अभिव्यक्ति है। आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा सह-उत्पादन, सम-वितरण, सह-उपभोग, सह-जीवन के रूप, में दिखाई देती है। यदि हम दूसरों देने भूखा रखकर भोजन करते हैं या वस्त्र धारण करते हैं तो यह हिंसा है। इस प्रकार दूसरों को शोषण या आर्थिक कष्ट न पहुँचाए और सभी प्रकार के आर्थिक कष्ट झेलकर भूखों रहकर ' को भी अपना आखों से भूखा न देखें - यहीं अहिंसक अर्थव्यवस्था व समाज की धारणा है। गाँधीजी के, ' 'भारत वर्ष मे एक समय ऐसा था जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संगठन अहिंसक धन्धों के आधार पर मनुष्य के अधिकारों के आधार पर नहीं परन्तु मनुष्य के कर्त्तव्यों के आधार पर होता था। जो इन धन्धों मे लगते थे वे अपनी रोजी बेशक कमाते थे, परन्तु उनके श्रम से समाज की भलाई होती थी। " अहिंसक धन्धों की धारणा से गाँधी जी का तात्पर्य वह धंधा है जो बुनियादी तौर पर हिंसा से मुक्त हो और जिसमें दूसरों का शोषण या ईर्ष्या ' हो। उदाहरणार्थ एक बढई-गाँव के किसान की जरूरतें पूरी करता था। उसे कोई नकद मजदूरी नहीं थी: परन्तु गाँव वाले उसे अपनी पैदावार में से हिस्सा देते थे।

13.3.2 अर्थव्यवस्था का आधार व लक्ष्य-मनुष्य

गाँधीजी के अनुसार आर्थिक क्षमता के लिए मानव तत्त्व अत्यावश्यक है। अनुसार अर्थव्यवस्था का आधार मनुष्य है सम्पति या सोना-चांदी नहीं है। वह देश सबसे ज्यादा समृद्ध है जो से अधिक संख्या में सज्जन और सुखी मानवों का भरण-पोषण करता है। अर्थात् गाँधीजी रत्नरूपी को अर्थव्यवस्था का आधार बनाने की बजाय सशक्त, तेजस्वी व नीतिमान मनुष्यों रूपी रत्नों को अर्थव्यवस्था का आधार बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि, 'मनुष्य एक इंजन है और उसको गति देने वाली शक्ति है। यह विचित्र इंजन अधिक से अधिक कार्य वेतन के लिए या दबाव से नहीं करेगा। यह तभी संभव होगा जब गति देने वाली शक्ति अर्थात् प्राणी की इच्छा शक्ति या आत्मा में उसी के सही इंधन प्रेम द्वारा अधिक से अधिक बल का संचार किया जायेगा। गाँधीजी आर्थिक सम्बन्धों में स्वार्थ पूर्ज सिद्धान्तों की बजाय प्रेम, कृपा, दयालुता, स्नेह, सहानुभूति इत्यादि का समावेश करना चाहते थे।

गाँधीजी अर्थव्यवस्था मे मनुष्यों को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते थे। उनके अनुसार ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रचना इस प्रकार होनी चाहिऐ जिसमें हर व्यक्ति को इतना काम अवश्य मिल जाए ताकि वह अपनी आधारभूत आवश्यकताऐं यानि रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था का साधन जुटा सके। गाँधीजी का कहना था कि, ' 'जब तक एक भी सशक्त आदमी ऐसा हो जिसे काम न मिलता हो या भोजन न मिलता हो, तब तक हमें आराम करने या भरपेट भोजन करने में शर्म आनी चाहिए। "

13.3.3 समानतार पर आधारित अर्थव्यवस्था

गाँधीजी के अनुसार आर्थिक समानता का तात्पर्य है- सबके पास इतनी सम्पत्ति हो जिससे लोग अपनी कुदरती आवश्यकताऐं पूरी कर सकें। अहिंसा के द्वारा आर्थिक समानता लाने का यही उपाय है कि लोग अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन न करे। हिंदुस्तानी गरीब प्रजा के साथ अपनी तुलना करके अपनी आवश्यकताऐं कम करें। वे अपने धन कमाने की शक्ति को नियंत्रण में रखें तथा सट्टे और लोभ की प्रवृत्ति का त्याग करें। उनके अनुसार आर्थिक समानता की जड़ में द्रस्टीपन निहित है अर्थात् धानिक को अपने पडौसी से एक कौडी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं। इस साध्य हेतु वे जीवन को हर प्रकार से संयमी बनाऐं और अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के बाद जो बचे उसके लिए पुजा की ओर से ट्रस्टी बनें।

धानिक वर्ग को निश्चित रूप से स्वीकार कर लेना होगा कि किसानों के पास भी वैसी ही आत्मा है जैसी उसके पास है। अपनी दौलत के कारण वह गरीबों से श्रेष्ठ नहीं है। आदर्श जमीदार को किसान के लिए पाठशालाऐं खोलना, कुएँ और तालाबों को ठीक करना और उनके मकान की व्यवस्था करनी चाहिए। पूँजीपति वर्ग भारत के सात लाख गाँवों में शांति और सुख को कायम करने में सहभागी बन सकता है।

गाँधीजी का कहना था कि, ' 'सच्चे नीतिधर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता। जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और बलवानों को निर्बलों का शोषण करके धन संग्रह करने की सुविधा देता है उसे शास्त्री का ज्ञान नहीं दिया जा सकता। सच्चा अर्थशास्त्र

तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है, वह समान भाव से सबकी भलाई का -जिनमें कमजोर भी शामिल हैं - प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवन के लिए अनिवार्य है। " इसलिए गाँधीजी समानता हेतु न्यायपूर्ण वितरण की धारणा पर बल देते हैं।

13.3.4 कायिक श्रम और सभी व्यवसायों की समानता

गाँधीजी ने सभी व्यवसायों की अनिवार्य समानता पर बल दिया। उनका मत था कि कायिक श्रम की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेने से, विभिन्न व्यवसायों के मध्य भेदभावों का आधार ही समाप्त हो जाऐगा। उन्होंने शरीर-श्रम के विचार को दिव्य माना और कहा, ' 'ईश्वर ने मनुष्य का निमार्ण श्रम द्वारा अपना भोजन प्राप्त करने के लिए किया और कहा कि जो श्रम किए बिना खाते हैं वे चोर हैं। कायिक श्रम' की धारणा यह अपेक्षा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाने के लिए अनिवार्य रूप से भौतिक श्रम करे। अर्थात् व्यक्ति जो किसी भी व्यवसाय में रत हो, वह शारीरिक श्रम तो आवश्यक ही करेगा। अत: प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीविका को शरीर-श्रम से अर्जित कर श्रम के प्रति मन में प्रतिष्ठा अन्तर्व्याप्त कर बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग परोपकार के लिए करे। इस प्रकार 'शरीर-श्रम' का विचार समानता और सामाजिक सद्भाव दोनों को एक साथ सुनिश्चित करेगा।

13.3.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

गाँधीजी ने अन्याय, शोषण व दमन की प्रतीक केन्द्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विचार प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार, ' 'हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना और साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक और नैतिक यानि आध्यात्मिक उन्नति सिद्ध करना है। यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सद्य सकता है। केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना के साथ मेल नहीं बैठता।"

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में खादी और ग्रामोद्योग का प्रमुख स्थान है। आर्थिक ' संगठन इस प्रकार का हो कि ज्यादातर वस्तुओं का उत्पादन गाँव में ही हो। प्रत्येक गाँव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं. का उत्पादन स्वयं ही कर ले। जो वस्तुएँ गाँव में उत्पादित होती है, उनका पक्का माल भी गाँव में बने। कपास गाँव में पैदा होती है, अत: आवश्यकता इस बात की है कि कपड़ा भी गाँव में ही बने। गाँधीजी तो मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पहनने भर का कपड़ा स्वयं तैयार कर ले। खाली समय में हम अपनी आवश्यकता का सूत चरखने के माध्यम से स्वयं कात लें। यदि इतना भी संभव न हो तो प्रत्येक गाँव सामूहिक रूप से वस्त्र के मामले में स्वावलंबी हो। ग्रामोद्योग की अन्य वस्तुऐं भी गाँव में तैयार होनी चाहिए। गाँधीजी के अनुसार कारखानों की केन्द्रीयकृत सभ्यता पर आज अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते: लेकिन वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी ग्रामों के आधार पर निर्माण की जा सकती है। मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थ-रचना शोषण का ।?सर्वथा त्याग करती है और शोषण हिंसा का सार है। '

13.3.6 यंत्रीकरण व उद्योगीकरण का विरोध

गाँधीजी ने अंधाधुंध यंत्रीकरण का विरोध किया था। उनका कहना था कि, ' 'मेरा विरोध यंत्रों के संबंध में फैले हुए दीवानेपन से है यंत्रों से नहीं। परिश्रम का बचाव करने वाले यंत्रों के सम्बन्ध में लोगों का जो दीवानापन है, उसी से मेरा विरोध है। आज परिश्रम की बचत इस हद तक की जाती. है कि हजारों लोगों को आखिर में भूखा मरना पड़ता है और उन्हें तन ढकने तक को कपड़ा नहीं मिलता। मुझे भी समय और परिश्रम का बचाव अवश्य करना है लेकिन वह मुट्ठी भर आदमियों के लिए नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए। "

गाँधीजी का कहना था कि यंत्रों को काम में लेना तभी अच्छा होता है जब किसी कार्य को निर्धारित समय में करने के लिए श्रम शक्ति कम हो जैसा विदेशों में होता है। किन्तु यह हिन्दुस्तान के लिए लागू नहीं होता क्योंकि यहाँ जितने आदमी चाहिए उससे कहीं अधिक बेकार पडे हुए हैं अत: यंत्रीकरण से बेकारी बढेगी, घटेगी नहीं। उनका मत था कि, ' 'यदि ग्रामवासियों को कुछ काम देना है तो वह यंत्रों के द्वारा सम्भव नहीं है। उनके उद्धार का सच्चा मार्ग तो यही है कि जिन उद्योग-धन्धों को वह अब तक किसी कदर कदर चलें आ रहे हैं, उन्हीं को भली-भाँति जीवित किया जाए। "

गाँधीजी ने भारत की समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् यह' बताया कि बडे पैमाने का उद्योगीकरण भी हिन्दुस्तान के लिए लाभप्रद नहीं होगा। उनके अनुसार उद्योगीकरण ' धन का संचय व व्यवस्था का संचालन कुछ व्यक्तियों के पास होता है जिससे आर्थिक असमानता को मिलता है जो भारत जैसे गरीब देश के लिए घातक है। उनका मत था कि उद्योगीकरण में उत्पादन केन्द्रित होता है। सारा माल गाँव से शहर की ओर जाता है। फलस्वरूप शहरों की वृद्धि और गाँवों का हास होता है। इससे ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था असन्तुलित हो जाती है। उद्योगीकरण से बेरोजगारी में वृद्धि होती है, अनावश्यक एवं विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढाना है और बडे पैमाने के कारखानों में उत्पादन होने से मालिक और मजदूर की भावना विकसित होने से वर्ग-सहयोग की जगह वर्ग द्वेष की भावना का विस्तार होता है। अतएव गाँधीजी यंत्रीकरण को एक निश्चित सीमा तक ही स्वीकार करते थे और कुछ विशेष वस्तुओं को उत्पादन ही भारी उद्योगों के माध्यम से होना चाहिए जैसे - बिजली, रेल, डाक, यातायात, जहाज इत्यादि।

13.3.7 खादी और ग्रामोद्योग पर बल

खादी और ग्रामोद्योग का विचार गाँधीजी के आर्थिक ढाँचे की आधार संरचना है। खादी और ग्रामोद्योग परस्पर अन्तर सम्बन्धित अवधारणा है। गाँधीजी के अनुसार खादी भारतीय मानव -समाज की एकता, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का प्रतीक है। खादी-मनोवृत्ति का अर्थ है- जीवन के आवश्यक पदार्थो के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण अर्थात् प्रत्येक गाँव अपनी जरूरत की तमाम चीजें स्वयं पैदा कर ले और शहरों की आवश्यकताओं के लिए उत्पत्ति भी कर लें। इस तरह खादी ग्राम-रचावलम्बन व आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती है। ग्रामोद्योग सम्बन्धी विचार गाँधीवादी अर्थव्यवस्था का व्यवहारिक स्वरूप है।

गाँधीजी ने गाँवों को ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की है जो पूर्णतया लघु उद्योग व कुटीर उद्योगों पर आधारित होगी। अर्थात् जो सद्यन खेती, छोटे पैमाने पर व्यक्तियों द्वारा खाद्य पदार्थ, सब्जियाँ, फल-फुल उत्पादन और पशुपालन पर आधारित होगी। उनके अनुसार ग्रामोद्योग की वस्तुओं जैसे-हाथ की बनी चीनी हाथकुटा चावल, हाथ कुटा अनाज तेलधाणी को तेल आदि बहुत स्वास्थ्य वर्द्धक होते हैं और इनके उपभोग से मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है। गाँधीजी के अनुसार कुटीर उद्योग-कधों में एक खास तादाद में लोगों को मजदूरी दी जा सकती है इसलिए ये उद्योग खादी के मुख्य काम में सहयोग दे सकते हैं। हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पद्योरना, साबुन बनाना कागज बनाना, चमड़ा बनाना, तेल पेरना और इस तरह के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक व महत्त्वपूर्ण धन्धों के बिना गाँव क आर्थिक रचना सम्पूर्ण नहीं हो सकती अर्थात् गाँव स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर नहीं बनेंगे। हर एक आदमी को, हर हिंदुस्तानी को, इसे अपना धर्म समझना चाहिये कि वह हमेशा गाँवों की बनी चीजें ही उपभोग में लें। अगर ऐसी चीजों की मांग पैदा हो जाये तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हमारी ज्यादातर जरूरतें गाँवों से पूरी हो सकती है। जब हम गाँवों के लिए सहानुभूति से सोचने लगेंगे और गाँव की बनी हुई चीजें हमें पसन्द आने लगेंगी तो ऐसी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न होगी जो गरीबी, भुखमरी और आलस्य या बेकारी से मुक्त नए हिन्दुस्तान के साथ मेल खाती होगी।

13.3.8 ग्राम स्वावलम्बन व सहयोग

गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था की बुनियाद सत्य और अहिंसा है। हमारा प्रथम कर्त्तव्य यह है कि हमें समाज का भार नहीं बनना चाहिए अर्थात् हमें स्वावलम्बी होना चाहिए। इस प्रकार स्वावलम्बन एक प्रकार की सेवा है इसलिए गाँधीजी ने गाँवों के सन्दर्भ में स्वावलम्बन व सहयोग की भावना पर अत्यधिक बल दिया था। उनका कहना था कि, " हर एक गाँव को अपने पाँव पर खडा होना होगा। अपनी आवश्यकताऐं खुद पूरी करनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार स्वयं चला सके। यहाँ तक कि वह सारी दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सके। " गाँधी के अनुसार स्वावलम्बनी बनने का अर्थ पूर्णतया स्वयं पूर्ण बनना नहीं है। किसी भी हालत में हम सभी चीजें पैदा कर भी नहीं सकते और न हमें करना है। जो चीजें हम पैदा नहीं कर सकते उन्हें पाने के लिए उनके बदले में देने को हमें अपनी आवश्यकता से अधिक चीजें पैदा करनी ही होंगी। इसलिए गाँधीजी परस्पर सहयोग पर जोर देते हैं। उनके अनुसार पशु में और मनुष्य में यही भेद है कि मनुष्य सामाजिक प्रकृति वाला प्राणी है। अगर उसे स्वाधीन होने का विशेषाधिकार प्राप्त हुआ है तो परस्पराधीन होना उसका कर्त्तव्य भी है। अत: सभी मनुष्यों को सहयोग से रहना चाहिए और सबकी भलाई के लिए काम करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगें। गाँधीजी ने किसानों को सहकारी पद्धति से खेती करने पर बल दिया ताकि किसानों को अधिक आमदनी हो और खेतों के छोटे-छोटे टूकड़े ना हों।

गाँधीजी के उपर्युक्त विचार वर्तमान परिदृश्य में ग्रामों के विकास के बेहतर आधार हैं। स्वावलम्बन के आधार पर जहाँ ग्रामों से शहरों की ओर जाने वाला पलायन रूकेगा वहीं सहयोग के आधार पर विभिन्न योजनाओं द्वारा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

13.3.9 स्वच्छता और स्वास्थ्य व्यवस्था

गाँधीजी के जीवन में स्वच्छता का अत्यधिक महत्त्व था। वे गाँवों को सुहावने और मनभावन बनाना चाहते थे। उनके अनुसार श्रम व बुद्धि के मध्य अलगाव के कारण गाँवों की लज्जाजनक दुर्दशा और गन्दगी से पैदा होने वाली बीमारियाँ-भोगनी पडती है। अत: उन्होंने गाँव की सारी गंदगी को खाद के रूप में परिवर्तित करके उसके उपयोग करने की योजना प्रस्तुत की। उन्होंने मल-मूत्र एवं अन्य प्रकार की गंदगी को, खाद बनाकर और उसका उपयोग खेतों में करके इसकी आर्थिक महत्ता सिद्ध की। गाँधीजी ने गाँवों के तालाब, कुओं व जलाशयों को स्वच्छ रखने की हिमायत की और कहा कि पानी की सफाई के सम्बन्ध में गाँव वालों की उपेक्षा-वृति ही बीमारियों का कारण है। गाँधीजी ने सफाई स्वयं के द्वारा करने की बात की और कहा कि जब हम, गन्दगी करते हैं तो स्वयं ही उसे साफ भी करना चाहिए। इस प्रकार का सेवा कार्य शिक्षाप्रद होने के साथ ही साथ अलौकिक रूप से आनन्ददायक भी है और इसमें भारतवर्ष के सन्ताप-पीडित जन समाज का अनिर्वचनीय कल्याण भी समाया हुआ है।

गाँधीजी व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यत्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करना महत्वपूर्ण मानते है। उनके अनुसार व्यक्तियों का भोजन संतुलित होने के साथ-साथ पौष्टिक तत्वो से युक्त होना चाहिए। भोजन स्वस्थ्य के लिए होगा न कि स्वाद के लिए। ये भोजन व्यक्तियों में जीवन-शान्ति का पूर्ण विकास करेंगें जिससे रोगों का समूल नाश होने के साथ उनकी काम वासना पर भी नियंत्रण रहेगा। काम तथा आराम दोनों को अलग-अलग रखने की बजाए काम आरामदायक होंगे और आराम काम का होगा अर्थात् व्यक्ति के मन को शान्ति पहुँचाने वाले काम मिलने पर उसे आराम की जरूरत ही नही' होगी। प्रारम्भ से ही शिक्षा-दीक्षा काम के माध्यम से दी जायेगी जिससे उसे काम में आनन्द आयेगा, वो उसे भार स्वरूप नही समझेगा। गाँधीजी कहते हैं कि मानसिक संतुलन ठीक रहने पर व्यक्ति प्रकृति का सहारा लेकर ही अपना जीवन व्यतीत करेगा, प्रकृत, प्रदत्त पेड़ पौधों, जडी-बूटी इत्यादि का प्रयोग कर स्वास्थ रह सकेगा। गाँवों में पानी की निकासी व्यवस्था का उचित प्रबन्ध किया जाऐगा। इस प्रकार संतुलित एवं पौष्टिक आहार के साथ-साथ नागरिक शारीरिक स्वच्छता मानसिक स्वच्छता तथा सामाजिक स्वच्छता का महत्त्व अपना लेगा तो रोगों का स्वत: नाश हो जायेगा जिससे व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी।

13.3.10 शिक्षा व्यवस्था

गाँधीजी ने गाँव के बच्चों को गाँव का आदर्श निवासी बनाने हेतु बुनियादी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात किया। उनके अनुसार बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास करना हैं। उनके अनुसार जिस देश में लाखों आदमी भूखे मरते हैं, वही बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है। इसलिए गाँधीजी चाहते थे कि बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा आरम्भ करे उसी क्षण उसे उत्पादन योग्य बना दिया जाए। उनके अनुसार गरीब देश में हाथ की तालीम देने से दो उद्देश्य सिद्ध होंगें-प्रथमत: बच्चों की

शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और द्वितीयत: वे ऐसा धंधा सीख लेगें जिसका अगर वे चाहें तो उत्तर-जीवन में अपनी जीविका के लिए सहारा ले सकते हैं। इस पद्धति से हमारे बालक आत्मनिर्भर अवश्य हो जायेंगें।

13.4 गाँधी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बंधी विचारों की प्रांसगिकता

वैश्वीकरण के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था नित नई ऊँचाइयाँ छू रही है। भारत की अर्थव्यवस्था सबसे तेज वृद्धि दर वाली वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में से एक है किन्तु यदि तस्वीर का दूसरा पहलू देखने हैं तो स्पष्ट होता है कि आज भारतीय जनता अमीर और गरीब वर्ग में बंटी है जिनके मध्य अत्यन्त गहरी व चौडी खाई है। कुछ लोग ही शानो-शौकत से जीवन व्यतीत कर रहे हैं बाकी अधिकांश अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अभाव, दरिद्रता, अज्ञानता, गंदगी, शोषण, बीमारी आदि निरन्तर बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में इन सबसे मुक्ति का एक ही मार्ग दिखाई देता है वो है गाँधीवादी प्रतिमान।

गाँधीजी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था संबंधी विचारों की प्रांसगिकता निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से की जा सकती है-वर्तमान समय में ग्रामीण जीवन व परिदृश्य अत्यन्त शोचनीय अवस्था में पहुँच चुका है। आज का किसान अपनी फसल का यथोचित मूल्य ना मिल पाने और निरन्तर बढते कर्ज की वजह से आत्महत्या कर रहे हैं। यही गाँधीजी के अत्यधिक उत्पादन की बजाय उत्पादन की प्रकिया में जनता की व्यापकतम भागीदारी तथा उत्पादन-स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सूत्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं? आज समाज में भौतिकवादी मूल्यों की प्रस्थापना के चलते बढे शहरीकरण ने ग्राम के लोगों को शहर में अमानवीय परिस्थितियों में रहने को विवश किया हैं। शहर में इन लोगों को झुग्गी-झोंपडियों में प्राथमिक आवश्यकताओं (बिजली, पानी, शौचालय) के आभाव में नारकीय जीवन जीना पडता है जिससे अपराध वृत्ति, अनैतिकता, शोषण इत्यादि को बढ़ावा मिलता है। ऐसे गाँधीजी का मूलमंत्र ' 'गाँवों को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाओ' ' इस असाध्य रोगों की रामबाण औषधि है। गाँधीजी ने कहा था कि यदि खादी लघु व कुटीर उद्योगों द्वारा गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल जाता है तो इससे अनावश्यक पलायन रूक जायेगा तथा ग्राम भी आत्मनिर्भर, समुन्नत व सुन्दर हो जायेंगें। आज वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था का आधार पूँजी है जिस से भारत इसके सहउत्पदों यथा-हिंसा, आतंकवाद, दंगे, प्रोनवाद इत्यादि त्याधियों से त्रस्त है। आज मानवीय संबंध राजा और प्रजा, मालिक और मजदूर, मैनजर और सेवक और स्वार्थ आधारित हो जाने की वजह से तनाव, अवसाद. अलगाव, चिंता इत्यादि नवीन महामरियों के रूप में अवतरित हुई हैं। गाँधीजी का कहना था कि हमें अर्थव्यवस्था का आधार पूँजी को ना बनाकर मनुष्य को बनाना होगा क्योंकि पूँजी का सार मनुष्यों पर सत्ता कायम करना है, आज के परिदृश्य में सर्वधा उचित सिद्ध हुआ है। उन्होंने औध्योगिक सम्बन्धों में आर्थिक हेतु की बजाय करूणा, दया, सहिष्णुता आदि पर आधारित मानवीय सम्बन्धों पर बल दिया जिससे सब व्यक्तियों के मध्य निःस्वार्थ प्रेम व सहयोग कायम हो और अमन, चैन व शांति स्थापित हो।

इस तरह गाँधीजी का सम्पूर्ण आर्थिक दर्शन वर्तमान समय की समस्याओं को दूर करने हेतु पथ-प्रदर्शक के रूप में पूर्णरूप से प्रासंगिक है।

13.5 सारांश

गाँधीजी ने गांवो के लिए ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की है जो स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर है, जिसमें प्रत्येक श्रम के महत्व को जानता है व श्रमशील है तथा जिसमें प्रत्येक हाथ को काम प्राटत है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह ग्राम-प्रधान विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था लघु और कुटीर उद्योगों पर आधारित होगी। इस उत्पादन प्रणाली में पूँजी की तुलना में श्रम की गरिमा स्थापित होगी अत: उत्पादन शोषण को जन्म नही देगा। स्थानीय उत्पादन स्थानीय उपभोग और विवेक सम्मत वितरण अर्थव्यवस्था के निर्देशक सूत्र होंगे। इस व्यवस्था में अधिक उत्पादन की बजाय उत्पादन की प्रकिया में जनता की अधिकतम भागीदारी पर बल दिया जाएगा। इस व्यवस्था में समाजवादी व्यवस्था के अंतर-न्याय सम्मत वितरण हेतु राज्य की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं होगा अपितु उपभोग का स्थानीयकरण ही यह सुनिश्चित कर देगा कि उत्पादन का समुदाय की आवश्यकता अनुसार वितरण हो।

गाँधीजी के अनुसार देश की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है अगर गाँव नष्ट हो तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जाएगा। अत: वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के माध्यम से ऐरने आत्मनिर्भर स्वावलम्बी, सुसंस्कृत, स्वच्छ ग्रामीण जीवन की दिशा दिखाई देती है। जिसमें अभावों, कटुता, घृणा, द्वेष व भौतिक उपलब्धियों के स्थान पर प्रेम, सहयोग, अन्त निर्भरता, आध्यात्मिकता व नैतिकता से परिपूर्ण जीवन होगा।

गाँधीजी ने कहा था कि ' 'मेरी कल्पना के ग्राम में ग्रामीण व्यक्ति जड़ नहीं होगा-शुभ चैतन्य होगा। वह गन्दगी में, '' अंधेरे कमरे में', पशुवत जीवन यापन नही करेगा। स्त्री और पुरूष स्वतन्त्रता से रहेंगे। वहां कोई रोग नहीं रहेगा। न कोई अभाव में जिएगा और न ऐश-आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी।..... इस व्यवस्था में डाक घर भी होंगे: और शायद रेलवे भी।''

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी की ग्रामस्वराज्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. गाँधीजी के आर्थिक विचारों के प्रमुख आधारों का परीक्षण कीजिए।
3. औद्योगीकरण व यंत्रों के प्रति गाँधीजी के दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए।
4. गाँधीजी के खादी व ग्रामोद्योग सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करें।
5. गाँधीजी के विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के प्रतिमान की प्रांसगिकता को समझाइए।

13.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप कुमार पाण्डेय, गाँधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन, हिन्दी कार्यान्वय निदेशालय,
2. दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996.

3. 2.एम. के. गाँधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1963
4. 3.एमके. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, गाँधीजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1997
5. 4.सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
6. 5.राय, रामाश्रय, सेल्फ एण्ड सोसाइटी. ए स्टडी इन गाँधीयन थॉट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985
7. 6.चतुर्वेदी, डी.एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 1991
8. 7.एन. के. बोस, 'सलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
9. 8.कुमरप्पा, जे. सी. गाँधीयन इकोनोमिक थॉट, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वारानसी, 1962

इकाई - 14

स्थिर विकास एवं पर्यावरण और गाँधी

इकाई की रूपरेखा

14 0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 विकास का पूंजीवादी मॉडल

14.3 आधुनिकीकरण सिद्धान्त

14.4 आधुनिक सभ्यता पर गाँधीजी की आलोचना

14.5 भारतीय सभ्यता पर गाँधीजी की संकल्पना

14.6 गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत विकास का वैकल्पिक मार्ग

14.7 पर्यावरण पर गाँधीजी के विचार

14.8 आधुनिक पर्यावरणविद् और गाँधीजी

14.9 सारांश

14.10 अभ्यास प्रश्न

14.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप समझ सकेंगे कि :-

- विकास का पूंजीवादी मॉडल क्या है।
- आधुनिक सभ्यता पर गाँधी जी की आलोचना।
- गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित विकास का वैकल्पिक मार्ग और
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत स्थिर विकास का सपना।

14.1 प्रस्तावना

पश्चिमी जगत ने पर्यावरण के महत्व को 1972 में क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद अनुभव किया की इससे पहले पश्चिमी जगत अपनी विशिष्ट समृद्धि से प्रसन्न था जिसे उसने विज्ञान और तकनीकी में हुए नये विकास, आधुनिकीकरण के सिद्धान्त तर्कवाद के दर्शन और बढ़ते हाश्वक बाजार से प्राप्त किया था। लोककल्याण कारी राज्य की पश्चिमी यूरोप की नीतियों का पश्चिम की प्रगति और समृद्धि में अत्यधिक योगदान रहा। परन्तु पर्यावरण के संरक्षण की समस्या विद्वानों के लिए लगातार चिंता का विषय बनी रही जैसा कि आन्द्रे गोर ने घोषित किया कि, विकासोन्मुखी पूंजीवाद और समाजवाद मृत है, इसके द्वारा सामाजिक विकास के स्थिर पश्चिमी मॉडल को चुनौती मिल रही है। यह मॉडल जे. बेथम के उपयोगितावादी - पर आधारित था। यह अधिकतम प्रसन्नता और न्यूनतम दुख, में विश्वास

करता था। इसमें माना जाता था की व्यक्ति को अपनी शक्तियों और क्षमता को अधिकतम करना चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्व के बाद के समय में पश्चिम में समृद्धि और विकास दिखाई पड़ा। पश्चिम के विशेषज्ञों का तर्क था कि विकास का यह मॉडल लोगों के न्यूनतम जीवन स्तर को सुनिश्चित करेगा गरीबी उन्मूलन करेगा और पिछडे देशों में आर्थिक विकास लाएगा। परन्तु 1970 के प्रारम्भ से ही बहुत से गहन अध्ययनकर्त्ता और पर्यवेक्षकों ने यह अनुभव किया कि इस तरह का विकास लम्बे समय तक नही चल सकता क्योंकि यह मानव सभ्यता का सम्पूर्ण विनाश कर सकता है। इसलिये यह कहा गया कि समुद्र जीवाणु रहित भूमि बंजर और वायु सांस लेने योग्य नही बची है अत: पूंजीवादी विकास का मुकाबला न केवल आर्थिक सीमा से है वरन् मानव शरीर से भी है। महात्मा गाँधी आधुनिक सभ्यता और विकास के पूंजीवादी मॉडल की कमजोरियों को उजागर करने वाले प्रारम्भिक राजनीतिक विचारकों में से एक थे। उन्होंने पश्चिम को चेतावनी दी थी कि इस तरह के विकास निरन्तर नही चल सकता। उन्होंने आधुनिक विकास सिद्धान्त की दार्शनिक धारणा पर प्रश्न उठाऐ। इस लेख में महात्मा गाँधी के पर्यावरणवाद के सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया।

14.2 विकास की पूंजीवादी पद्धति

आधुनिक सभ्यता विकास के पूंजीवादी मॉडल की जनक है। यह मॉडल मानव के सिद्धान्त पर आधारित या जो यह मानता था कि मानव एक तार्किक प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निश्चित कर सकता है कि उसकी रूचि (हित) किरन में है। इसलिए अलग-अलग मानवों में प्रतियोगिता थी।

स्वतंत्र आत्मनिर्भर और बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे और सुखी जीवन के लिए अपनी शक्तियों को बढाने का इच्छुक था। अच्छे जीवन की उसकी धारणा आवश्यक रूप से उपयोगिता पर आधारित थी। वह निश्चित रूप से मानता था कि इस विश्व में पूंजीवाद ने बाजार को बढाया जिससे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का जन्म हुआ। पूंजीवाद का लालच राष्ट्र की सीमाओं तक ही सीमित नही रहा पूंजीवादी मुनाफा चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक उत्पादन किया गया और इसे बनाए रखने के लिए अति उपभोग को बढ़ावा दिया गया। इसके परिणाम स्वरूप धनी देशों में धनवानों जैसी जीवन शैली अनजाने में अपनाली गई। पूंजीवादी मॉडल ने प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन किया जिसके कारण भूमि जल और वायु में पर्यावरण प्रदूषण फैला।

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता ने राज्य रूपी संख्या को पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास किए साधन सम्पन्न बनाया विज्ञान और तकनीकी की सहायता से राज्य ने सभी शक्तियों को अपने हाथ में केन्द्रीकृत कर लिया और राजनीतिक एकीकरण की प्रकिया को तेज कर दिया। राज्य निजी उधोगों को सार्वजनिक संसाधनों से पूंजी दिलवाने का माध्यम बन गया। इससे सामाजिक उत्पादन के निजी हाथों में जाने को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार की व्यवस्था में सभी विरोधियों की आवाज को सफलता पूर्वक दबाया गया और चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी सत्ता को वैधानिक बना लिया गया। इस प्रकार का राज्य राष्ट्र राज्य कहा गया क्योंकि सभी संकीर्ण विचारों को लोगों की राष्ट्रीय एकीकरण के संरक्षण के लिए माना गया। राष्ट्रवाद राज्य के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप आने का साधन भी नही है वरन पडौसी देशों के विरूद्ध

युद्ध करने का हथियार भी है। राष्ट्रवाद बड़े पैमाने पर विनाश करने वाले हथियारों के उत्पादन के लिए भी जिम्मेदार है जिसमें सबसे खतरनाक परमाणु हथियार भी शामिल है। इस प्रकार राष्ट्रवाद अत्यधिक विनाशक मनोभाव है।

14.3 आधुनिकीकरण सिद्धान्त

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के प्रथम तीन दशकों में दौर में विकास का 'सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण आधुनिकीकरण का सिद्धान्त है। कीन्स की अर्थशास्त्र की लोककल्याणकारी नीतियों की सफलता से पश्चिम ने इस दौरान सापेक्षिक सफलता प्राप्त की जिसने क्षमता में विश्वास के विचार को और सुदृढ़ता प्रदान की परन्तु विरोध के स्वर भी उठे। इन आलोचनाओं के तीन आधार थे-

पहला, फ्रैंकेफर्ट स्कूल और नव वामपंथी आंदोलन ने आधुनिकीकरण की आलोचना इसकी जबरन सकारात्मकता और लोगों को संगठित करने के तरीके के आधार पर की थी।

द्वितीय, तृतीय विश्व के देशों के विद्वानों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की ओर इनका तर्क था कि यह सिद्धान्त विकासशील देशों के अल्प विकास के लिए जिम्मेदार है। उन्होने पर्यावरण के पतन के लिए प्रथम विश्व के देशों को दोषी ठहराया। इन्होनें इंगित किया कि पश्चिमी समाज का धनी वर्ग जिस अभूतपूर्व (धनी) जीवन शैली को अपनाए हुए है वह तृतीय विश्व के देशों के प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन पर आधारित है। इस नीति ने उनकी कृषि का विनाश किया है, समुद्र और नदियों को प्रदूषित किया है और उनके प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त किया है।

तृतीय, 1970 के बाद पर्यावरणविदों ने पश्चिमी मॉडल की आलोचना इसलिए : करना प्रारम्भ किया क्योंकि इससे समाज का जन्म हुआ। इनका तर्क था कि आर्थिक रूप से विकसित समाज ने इस ग्रह (पृथ्वी) की संरचना को अन्दर से खोखला कर दिया है। समुद्र जीवाणु रहित हो गए हैं, भूमि बंजर और हवा सांस लेने योग्य नही रही है। इसलिए अब समय ज्यादा उपयोग करने का नही वरन कम उपभोग करने का है। उनका कहना थ कि प्राकृतिक जगत में मानव की गतिविधियां या कार्यकलाप अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच चुके है और यदि अब इन पर रोक नही लगायी गई तो नये प्रकार के रोग उत्पन्न होगें और जीवन की गुणवता भौतिक उपभोग के बावजूद भी घटने लगेगी।

पर्यावरणवाद के भी कई प्रकार हैं जैसे - प्राकृतिक संरक्षण कर्त्ता, पर्यावरण संरक्षणकर्त्ता, हरित राजनीति सिद्धान्तवादी, वनस्पति संरक्षणकर्त्ता, सधन हरित सिद्धान्तवादी - वनस्पति केन्द्रित विचारों को सबसे अधिक स्वीकृति मिली है। हालांकि यह भावनात्मक वास्तविकता से परे अपील का नैतिक पहलू_ और तार्किक वैज्ञानिक आधार था। पर्यावरणवाद ने राजनीतिक सिद्धान्त पर बहस की प्रकृति को पूर्णतया बदल दिया और विभिन्न समस्याओं के अन्तर सम्बंध पर बल दिया। यह विचार वैश्विक और सामुदायिक था। पर्यावरणवाद के समर्थक साधनों और तकनीकों में परिर्वतन लाकर सामाजिक विकास के मसौदे को बदलना चाहते थे। उन्होंने मौजूद सामाजिक सम्बंधो को मजबूत करने पर बल दिया। इस प्रकार उन्होने ऐसी तकनीक के विकास और उत्पादन की पद्धति की आवश्यकता पर बल दिया -

1. जिसका प्रयोग और नियंत्रण पास पडोस और समुदाय के स्तर पर हो सके।
2. जिससे आर्थिक स्वयत्तता को स्थानीय व क्षेत्रीय समूहों में बढाया जा सके।
3. जो पर्यावरण के लिए हानिकारक न हो।
4. जो उत्पादक व उपभोक्ता द्वारा उत्पादन पर संयुक्त नियंत्रण कर सकने में सक्षम हो।

अंत में ये राजनीति को परमाणु रहित करने के पक्षधर थे।

पर्यावरण विज्ञानियों का मानना था कि प्रकृति पर प्रभुत्व का परिणाम लोगों, थोडे से लोगों का प्रभुत्व है जिन्होंने प्रविधि और तकनीक पर नियंत्रण कर लिया है। इस प्रकार पश्चिम पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है जिसके लिए पर्यावरण विज्ञानी वैकल्पिक मार्ग ढूँढने का प्रयास कर रहे हैं इसमें नैतिक रूप से खोखले आधार वाली और सुखवादी संस्कृति पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। यह बताना जरूरी है कि महात्मा गाँधी प्रारम्भिक विचारकों में से थे जिन्होनें प्रगति व विकास के पूंजीवादी मॉडल के खतरो को इंगित किया था।

14.4 गाँधीजी द्वारा की गई आधुनिक सभ्यता की आलोचना

गाँधी जी पश्चिम द्वारा मानव सभ्यता के जीवन सम्बंधी महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा करने के आलोचक थे। उन्होंने अंग्रेजी उपनिवेशवाद और बुराइयों को आधुनिकीकरण के प्रभाव के रूप में देखा। उन्होंने पश्चिम को भविष्य की अनदेखी करने का जिम्मेदार ठहराया। उन्होने लिखा कि एक गोरा व्यक्ति वर्तमान के लिए उत्पादन करता है। एक सामान्य व्यक्ति वर्तमान को उपभोग के रूप में लेता है। पश्चिम के लोगों ने अब यह अनुभव करना शुरू किया है कि अपने वर्तमान जीवन के लिऐ उन्होने भविष्य को बलिदान कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों को पश्चिम का अंधानुकरण नही करने को कही।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिन्द स्वराज ' में गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के नैतिक आधारी पर सन्देह व्यक्त किया और तर्कपूर्वक कहा कि विकास की समस्या को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। गाँधीजी ने यह पुस्तक 1907 में लिखी हिन्द स्वराज या इंडियन होम रूल गाँधी जी का राजनीतिक वसियतनामा था जिसके मूलभूत विचारों और मान्यताओं को उन्होने पूरे जीवन में कभी नही बदला। पश्चिमी सभ्यता की गाँधी जी द्वारा की गई आलोचनाओं को निम्न 4 भागों में बाटा जा सकता है:-

1. आधुनिक विचारधारा की गाँधी द्वारा आलोचना
2. आधुनिकी सभ्यता की गाँधी द्वारा आलोचना
3. रेलवे व वकीलों आदि पर उनकी आलोचना
4. संसदीय लोकतंत्र की आलोचना

गाँधी तर्कवाद व उपयोगितावाद पर आधारित आधुनिक पश्चिमी दर्शन के आलोचक थे। गाँधी आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते थे जिन्हें विश्व के सभी प्रमुख धर्मो ने प्रतिपादित किया था और विशेषकर जिन धार्मिक मूल्यों की गीता और भक्ति आन्दोलन ने शिक्षा दी थी। वे एक वेदान्ती थे जो मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करना चाहते थे। वे लोगों की एकता में विश्वास करते थे और मानते थे कि सभी मानव बुनियादी रूप से अच्छे है, और केवल इसी अच्छाई के कारण व्यक्ति सम्पत्ति को त्यागने और न्योछावर करने को तैयार रहता है। उसमें नैतिक

कत्थान और अहिंसा को आत्मसात करने और निस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य करने की क्षमता है। इस प्रकार गाँधी जी इस सिद्धान्त में विश्वास नही करते थे कि स्वहित ही मानव का मुख्य सोच है। उन्होने तर्कवाद की आलोचना की और लिखा। " जब यह स्वयं के सर्वशक्तिमान होने का दावा करता है तब तर्कवाद घृणित दानव है। इस सर्वशक्तिमान को महिमा मंडित कर वस्तुओं और पत्थर की पूजा कर उसे भगवान मानते है। मै तर्क के दमन की वकालत नही करता लेकिन इस पर स्वभाविक सीमा लगाने की अनुशंसा करता हूँ। " उनका विश्वास था कि विश्वास तर्क से ऊपर होता है। उनकी दृढ मान्यता थी कि अहिंसा जीवन सिद्धान्त है और ऐतिहासिक रूप से भी मानव हिंसा पर अहिंसा की विजय के इतिहास के अलावा कुछ नही है।

सभी स्थानों पर मानव स्वभाव आगे को बढ रहा है, प्रगति कर रहा है। ' जीवन संघर्ष के सिद्धान्त को मान्यता नही दी और मानव के कर्त्तव्य, बलिदान, स्वविमुखी, दूसरों की देखभाल, को दृढतापूर्वक कार्य को मानव की विशेषता माना। मानव व मानव के मध्य तथा मानव और प्रकृति के मध्य प्रतियोगी सम्बध नही थे वरन् आवश्यक तौर पर सहयोगात्मक थे। उनका दावा था कि यदि इस वात पर विश्वास किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ युद्धरत है। और केवल योग्यतम को जीने का हक है तो विश्व एक दिन भी नही चल सकता। गाँधी प्रकृति और मानव को एक दूसरे के प्रतिकूल नही मानते। उनका मानना था कि प्रकृति जीवंत और जीवनदायी पानी, भोजन व हवा का स्त्रोत है। प्रकृति मानव की आवश्यकता की ;पूर्ति के लिए पर्याप्त देती है लेकिन हर एक के लालच को पूरा करने के लिए यह पर्याप्त नही है। गाँधी जी चाहते थे कि - प्रकृति पर विजय पाने का प्रयास करने के स्थान पर व्यक्ति को इसके प्रति दयालु व कृतज्ञ होना चाहिए। मानव अपने भाग्य का स्वयं निमार्ता है क्योंकि उसे अपनी पसंद चुनने की स्वतंत्रता है। उसने कार्य व उनके परिणाम आपदाओं के सिद्धान्त से शासित होते है। इसीलिए प्रकृति के साथ मानवीय सम्बंध बनाना आवश्यक हैं।

हिंद स्वराज' पुस्तक में गाँधी ने आधुनिक सभ्यता की आलोचना की है इसे असुरी कहा है। उनकी धारणा थी कि भारत को इंग्लैंड की नकल नही करनी चाहिए क्योंकि इंग्लैंड की भी अत्यंत दयनीय है। इंग्लैंड के किसी विशेष दोष के कारण ऐसा नही है वरन् आधुनिक सभ्यता के चक्र के कारण ऐसा हो रहा है। यह सभ्यता केवल नाम भर के लिए है। इसमें यूरोप के देशों का पतन हो रहा है। ये देश आधुनिकता के नाम पर भौतिक कल्याण को बढ़ावा दे रहे है। अंग्रेज लोग अच्छे कपडे पहन अच्छा खा रहे, अच्छी तरह रह रहे हैं पर वे शायद ही प्रसन्न है। आधुनिक सभ्यता से समाज में असमानता हिंसा वर्ग विभेद आलसीपन आया है। सही मापदण्ड नही है विशेषतया तब जबकि इंग्लैंड में हजारों मजदूरों की स्थिति पशुओं से भी बदतर है। यह धर्म व नैतिकता विहीन है। लोगों में आत्मबल की कमी है। इंग्लैंड में चालीस महिलाओं को फैक्टरी या ऐसे ही संस्थनों में बहुत कम मेहनताने पर सख्त मजदूरी करनी पडती है।

गाँधी कहते हैं कि इस सभ्यता ने इंग्लैंड की सजीवता को निगल लिया लेकिन इंग्लैंड वासी इसका परित्याग नहीं करना चाहते क्योंकि वे व्यापार वाणिज्य को बढ़ाने के इच्छुक है ही उनका भगवान है। वे अपने माल के लिए पूरे विश्व को एक बड़े बाजार में परिवर्तित करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि भारत को इंग्लैंड देश ने नही जीता वरन् इस पर आ- धुनिक सभ्यता ने विजय पाई है। इससे भारत में रेलवे व वकील डॉक्टर और मशीने यही से आये हैं।

रेलवे से अंग्रेजो को भारत में अपना शासन फैलाने और उसे बनाए रखने में मदद मिली वकीलों और जजों के बिना भारत में अंग्रेजों को शासन एक दिन भी नही चल सकता। इन्होनें भारत को गुलाम बनाया हिन्दु मुस्लिम मतभेद को बल दिया और ब्रिटिश शासन की सत्ता को स्थापित किया। जो अलग व्यवसाय शुरू हुए उन्होंने अनैतिकता को बढ़ाया। गाँधी जी ने लिखा 'संकीर्ण विचारों वाले तुच्छ अनुयायी विवादों के जन्मदाता है। उनके दलाल जौक की तरह गरीबो का खून चूसते है। उनका कना था कि डॉक्टर का पेशा भी परजीवी के समान है क्योंकि वे भी पैसे के पीछे ही भागते है वे शायद ही कभी ड़ोगों के हित के इच्छुक होते थे।

गाँधी आधुनिक शिक्षा की भी आलोचना करते है क्योंकि यह विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का विकास नहीं करती। आधुनिक सभ्यता की आलोचना करते हुए गाँधी जी ने मशीनों की भी आलोचना की है। उन्होने बताया कि मशीनों ने भारतीय हैडंलूम को नष्ट कर दिया है। यंत्रों ने आधुनिक पूंजी व फैक्टरी व्यवस्था को जन्म दिया है। फैक्टरी मालिक लोगों को गरीब बनाकर धन सम्पदा संचित कर रहे है। उनकी धारणा थी कि भारतीय मिल मालिक भी उतने ही शोषण कर्त्ता होगें जितने कि अमेरिका या यूरोप के मालिक है। उनकी मान्यता थी कि यंत्र बेकार है क्योंकि यंत्र बडी संख्या में लोगों को कंगाल और उन पर निर्भर बना रही है। यह स्वदेशी की भावना गाँधी दृढता पूर्वक कहते है कि ओद्दैगीकरण आधुनिक सभ्यता का परिणाम है। ठीक ऐसे ही आधुनिक यूरोप राज्य और संसदीय व्यवस्था आधुनिक सभ्यता के साधन है।

उनका कहना था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद) संसदों की जननी नहीं है वरन् एक बांझ स्त्री और वेश्या हैं। बिना बाहरी दबाव के ब्रिटिश संसद ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। यह बीज वेश्या के समान है क्योंकि यह मंत्रियों के नियंत्रण मे कार्य करती है जो समय -समय पर बदलते रहते है और इसके द्वारा कुछ सकारात्मक योगदान भी नहीं दिया जाता। ब्रिटिश संसद में ईमानदार लोग चुनकर नही आते और चुने हुए सदस्य हमेशा अपने हितों के बारे में सोचते हैं। वे सिर्फ भय या व्यक्तिगत स्वार्थ से कार्य करते है। ये सदैव अगले चुनाव में पुन: चुने जाने के बारे में सोचते है। यह दुनिया की बातूनी दुकान है। इसके सदस्य बिना विचार किए अपने दल को ही वोट देते है। इसकी कार्य प्रणाली में बहुत अधिक धन व समय खर्च होता है। अपनी इच्छा लोगों पर थोपते है। अंग्रेज मतदाताओं के लिए अखबार (समाचार पत्र) उनकी बाइबिल है। ये अखबार प्राय: अप्रमाणिक होते है।

प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की आलोचना के बाद गाँधी आधुनिक राज्य की आलोचना करते हुए तर्क देते है कि सह हिसा और दमन पर आधारित है यह बहुमत के शासन के सिद्धान्त पर आधारित है। परन्तु हर समय बहुमत का निर्णय ही सही नही होता और हमेशा बहुमत की निरकुंशता का खतरा बना रहता है। उन्होंने इस विचार का समर्थन नही किया कि संवैधानिक सत्ता द्वारा पारित कानून का ऑखमूद कर समर्थन किया जाए चाहे वह हमारी आत्मा के विरूद्ध ही क्यों न हो।

गाँधी जी का तर्क था कि अन्यायपूर्ण कानून को मानना अमानवीय है अन्यायी कानून की अवज्ञा करना स्वराज की कुंजी है।

गाँधी जी का कहना था कि उनका स्वराज अंग्रेजी शासन से अलग है क्योंकि वे नही चाहते कि भारत पश्चिम की नकल करे हम बिना अंग्रेज लोगों के अंग्रेजी शासन स्थापित नही

कर सकते। उन्होंने इटली का उदाहरण देते हुए बताया कि मैजिनी के सपने को नही समझा गया हालांकि इटली विदेशी आधिपत्य से मुक्ता हो गया। इटली में शासन लोगों का नही वरन् राजकुमारों नोबल्स और अमीरो का हो गया। उनका कहना था कि भारतीय राजाओं का शासन अच्छा नही था और सिर्फ इसलिए क्योंकि वे भारतीय थे उनका शासन स्वदेशी नही माना जा सकता। उन्होने लिखा मेरी राष्ट्रभक्ति मुझे यह नही सिखाती कि मैं इस बात से सहमत हो जाऊँ कि जनता का दमन भारतीय राजाओं के पांवो तले हो सिर्फ इसलिए कि अंग्रेज चले गये हैं। यदि मेरे पास शक्ति है तो में भारतीय राजाओं के अत्याचारों का भी उतना ही विरोध करूँगा जितना कि अंग्रेजो का करता हूँ। उन्होंने पश्चिम की नकल करने पर जापान की भी आलोचना और द्वितीय विश्वयुद्ध की उसकी नीतियों की भी भर्त्सना की।

14.5 भारतीय सभ्यता पर गाँधी जी' की संकल्पना

सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता पर गाँधी जी द्वारा की गई आलोचनाऐ इस रूप में है कि वे अलग अलग ईकाइयों को आधुनिक सभ्यता में अर्न्तसम्बंधित और जुडी हुई मानते है। उनका कहना था कि इस सभ्यता का अंधानुकरण बहुत से अन कहे है दुख कष्टो का कारण बनेगा। जब गाँधी इन आलोचनाओं को लिख रहे थे उस समय सम्पूर्ण विश्व विज्ञान और तकनीकी की नई खोजों से प्रकाशित हो रहा था। उन्होने इस बात पर बल दिया कि भारतीय सभ्यता ही सच्ची सभ्यता है क्योंकि इसने ग्रीस व रोम द्वारा की गई ' को छोड दिया है और आज भी अपनी मजबूत बुनियाद पर खडा है।

गाँधी जी के अनुसार सभ्यता आचरण का वह तरीका है जो व्यक्ति को कर्तव्य का मार्ग बताता है। कर्त्तव्य करने का अर्थ है नीति की पालना करना नीति का पलनका अर्थ है अपने मन इन्द्रियों को वशमें रखना भारतीय सभ्यता इच्छाओं को सीमित करने में विश्वास करती है क्योंकि जितना हम कामनाओं, इच्छाओं में संलग्न होते है वैसे ही वे बढती जाती है। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने भोग कि सीमा तय कर दी थी। उनका मानना था कि मोटे तौर पर सुख मानसिक स्थिति है यह आवश्यक व्यक्ति अपनी अमीरी की वजह से सुखी नही है। गाँधीजी का तर्क था कि भारत में जीवन को नष्ट करने वाली होड को समाज मै जगह नही दी गई क्योंकि यह सब अपना-अपना व्यवसाय करते थे। ऐसा नहीं था कि भारतीय मशीनों का आविष्कार नही कर सकते थे। बल्कि वे जानते थे कि यंत्रों के कारण लोग इनके गुलाम बन जाएगें और नैतिकता छोड देगें। इसलिए उन्होने शारीरिक श्रम करने पर बल दिया। वे जानते थे कि बडे शहर बुराइयों के घर होंगे लोग सुखी नहीं रह सकेंगे इसलिए व छोटे गांवों में रहते थे। शहर गरीबों के शोषण हेतु थे भारतीय राजाओं और राजकुमारों के मुकाबले ऋषि और फकीरों को ज्यादा सम्मान व महत्व देते थे। सामान्य नागरिक सुख से रहता था और कृषि कार्य करता था। गाँधीजी ने स्वीकार किया कि भारतीय सभ्यता में भी कुछ दोष थे और उन्होने इन ' को दूर करने के प्रयास करने पर जोर दिया। उन्होने लिखा 'दुनिया के किसी भी हिस्से में और कोई भी सम्पूर्णता तक नही पहुँची है। भारतीय सभ्यता की प्रकृति नैतिक प्राणी को उन्नत करना है। इस प्रकार

गाँधी भारतीय सभ्यता के माध्यम से आधुनिक सभ्यता की चुनौतियो का सामना करने के इच्छुक थे और सभी मान्यताओं पर तर्क करते है। उनका तर्क था कि विज्ञान और तकनीकी

के क्षेत्र ' प्रगति के बावजूद पश्चिम में मानव वास्तव में सुखी नही है और तृतीय विश्व के देशों मे उपनिवेशवाद और ' संसाधनों के विदोहन ने लोगों के दुखों को अत्यधिक बढाया है। यह सभ्यता पश्चिम के लिए भी अच्छी है और गरीब देशों के लिए तो अभिशाप की तरह है। पर गाँधी जी जानते थे कि प्राचीन भारतीय सभ्यता यथावत वापस नही आ सकती और विकास के पूंजीवादी मॉडल को विस्थापित करने के लिए नये वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्था को आगे आना होगा।

14.6 गाँधी द्वारा प्रस्तुत विकास का वैकल्पिक मार्ग

गाँधी ने विकास का वैकल्पिक मार्ग दिया जो निम्न पांच सिद्वान्तों पर ' हैं-

1. मानव सम्बन्धित नया दर्शन
2. विकेन्द्रित आर्थिक विकास
3. ग्राम स्वराज की अवधारणा
4. सत्याग्रह की अवधारणा
5. विश्व शांति और शांतिपूर्ण साधनो से संघर्ष समाधान

गाँधी ने तर्कवाद और अनुभववाद पर बल देने वाली आधुनिक पश्चिमी विचारों का विरोध किया है। उन्होंने तर्क और विज्ञान को सर्वोच्च स्थिति देना स्वीकार नहीं किया वे मुख्य रूप से आध्यात्मिक थे और आत्मा की स्वतंत्रता को प्राप्त करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। वे सुख प्राप्त करने के लिए प्रकृति को रौदना उचित नही मानते थे उनका तर्क था कि गीता की शिक्षाओं का सार अहिंसा है और प्रत्येक व्यक्ति को आत्म नियंत्रण और निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य की पालना करनी चाहिए।

गाँधी इंद्रिय सुख में लगे रहने के पक्षधर नही थे और व्यक्ति के द्वारा उच्च नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति को महत्व देते थे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा जो अर्थशास्त्र वैभव की पूजा को बढावा दे वो कर्म के स्थान पर सम्पत्ति को अंधाधुंध बढाने पर जोर देता है ऐसा विज्ञान असत्य और निराशाजनक है। यह जल्दी ही मृत्यु की ओर ले जाता है। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों पर अडिग रहता है। जिनके पास सामान से भरे रेफ्रिजरेटर हैं अलमारियों में ढेरों कपडे व प्रत्येक गैराज में कार और हर कमरे में आराम के साधन है वे लोग भी मानसिक रूप से असुरक्षित और दुखी हैं। ऐसे मानव का क्या जो अपने व्यक्तिगत को खोकर यदि मानव सम्मान को प्राप्त करे और मशीन को पुर्जा मात्र बन जाए। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में हाडमास के मानव के रूप में सदस्य हो। इस तरह गाँधी एक ऐसे मानव के सिद्धान्त प्रस्तुत करते है जो राज्य समाज अर्थव्यवस्था और प्रकृति में अपनी स्वायत्तता और स्वतंत्रता को सुरक्षित रख सकें। गाँधी जी आधुनिक पूंजीवाद और औधोगीकरण की आलोचना करते है। उनका मानना था कि औधोगीकरण के कारण समृद्ध पश्चिमी देशों ने तृतीय विश्व का शोषण किया है। इसने लोगों को अमीर और गरीब दो वर्गो में बाट दिया और कुछ थोडे से धनवान लोगों के हाथ में शक्ति का केन्द्रीकरण कर दिया औधोगीकरण कुछ थोडे से लोगों पर बहुमत के नियंत्रण के अतिरिक्त कुछ भी नही है। इन थोडे से अल्पसंख्यकों ने बाजार का शोषण किया बाजार में प्रतियोगिता का नाश किया और बहुत बडी संख्या में लोगों को बेरोजगार किया। उनका दृढ विश्वास था कि मशीनें हानि प्रद है। जो

काम मशीनें करती है वे काम लाखों हाथ आसानी से कर सकते है अन्यथा वे बेकार बेरोजगार होगे। यंत्रीकरण तब उचित है जब काम करने वाले हाथ कम संख्या में हो। ' 'व्यक्ति की आत्मनिर्भरता और रोजगार के लिए गाँधी ने चरखे से कताई और खादी की वकालात की उससे अमीर देशों द्वारा गरीब देशों का और अमीर लोगों द्वारा गरीबों के शोषण से मुक्ति भी मिलेगी उन्होने लिखा' ' (खादी) प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण है। यदि व्यक्ति को स्वयं की शक्ति के गर्व को महसूस करवाती है जो व्यक्ति में है और भारतीय मानवता के समुद्र की प्रत्येक बूंद के रूप उसकी पहचान से उसे गौरवन्वित करती है। 'खादी के साथ-साथ गाँधी प्राकृतिक चिकित्सा का समर्थन करते है और आधुनिक औषधियों का विरोध करते है। उनकी मान्यता थी कि सभी बीमारियां प्रकृति के नियमों की अवहेलना का परिणाम है और उन नियमों की पालना से स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त होगा। आधुनिक तरीके के जीवन से व्यक्ति शारीरिक और मानसिक स्वस्थ्य प्राप्त कर सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा रोगी को जीने की सही पद्धती सिखाती है जिससे न केवल व्यक्ति विशेष रोगों में अपना बचाव कर सकता है वरन् भविष्य में बीमार पडने से भी बच सकता है। एक सामान्य चिकित्सक रोगों का अध्ययन करने में रूचि रखता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सक स्वस्थ्य के अध्ययन में ज्यादा रूचि रखता है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी को बीमारी को जड़ से खत्म करने पर जोर है जो जीवन की ऐसी शुरूआत है जिसमें बीमारी और रोगों के लिए कोई स्थान नही है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा इलाज का तरीका नही वरन् एक जीवन पद्धति है जिसका उद्देश्य शरीर मन और मस्तिष्क का शुद्धीकरण करना है।

गाँधी ने आर्थिक विकास के पश्चिमी मॉडल का विरोध किया क्योंकि यह असमानता का जनक है। गाँधी के लिए आर्थिक समानता का अर्थ है - पूंजी व श्रम के मध्य अन्तर की समाप्ति गरीब और अमीर के बीच की खाई को पाटना। इसे प्राप्त करने के लिए कुछ थोडे से अमीरों के स्तर को घटाकर और लाखों अंधे भूखे-नंगे भारतीयों के स्तर को ऊपर उठाकर होगा। गाँधी मानते हैं कि यह परिवर्तन केवल अहिंसक तरीके से ही लाया जा सकता है जिससे इस परिवर्तन को स्थायी रूप से प्राप्त किया जाए। इस तरह 'स्वराज' स्वयं के सहयोग से ईट दर ईंट जोड़ कर बनेगा।

14.7 पर्यावरण पर गाँधी के विचार

पर्यावरण सम्बंधी गाँधी के आर्थिक विकास के वैकल्पिक मॉडल में स्वदेशी की अवधारणा तथा आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की स्पष्ट घोषणा है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीय हल स्वदेशी था और गाँधी के राजनीति में प्रवेश से पहले ही दादा भाई नौरोजी श्री अरविंद और तिलक जैसे दृढनिश्चयी नेताओं द्वारा इसका प्रचार किया गया था। गाँधी ने इसे नया अर्थ दिया और दावा किया कि 'स्वदेशी' का अर्थ है आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था गाँधी स्वदेशी को हमारी ऐसी भावना के रूप में परिभाषित करते है जो हमें हमारे आस पास मौजूद वस्तुओं और सेवाओं तक सीमित करती है बजाय दूर दराज मौजूद वस्तुओं के ' 'यह अपने पास पडौसी के प्रति अपने कर्तव्यों व एहसानो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना है। स्वदेशी के अनुयायीयो को अपने पर्यावरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिऐ और अपने पडौसी की मदद के लिए प्रयत्न रहना चाहिए। गाँधी के अनुसार यह सार्वभौमिक धर्म है

जिससे निकटतम उपलब्ध संदर्भों के प्रति कर्तव्यों का पालन करके धीरे-धीरे कर्तव्यों की परिधि को व्यापक बनाया जाना है। वे यह भी कहते है कि स्वदेशी का अर्थ अपने चारों ओर चीन की दीवार बनाना नही है। वे इस बात को महत्व देते है कि सभी जीवित प्राणी एक दूसरे से जुड़े है और सभी को अपने सामर्थ्य के अनुसार सेवा करनी चाहिए। इससे अपने आस पड़ोस के लगाव के साथ विश्व बंधुत्व का सामजस्य विकसित होगा। अपने लाखों देशवासियों को बर्बाद करने और ':पैमाने पर उत्पादित विदेशी सामान के उपयोग में गाँधी विश्वास नही करते थे। यह न तो किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति पूर्ण निष्ठा है और न संकीर्ण क्षेत्र तक सीमित कूप मंडूकता। यह मित्रता और आपसी सहयोग के दायरे को बढाने में विश्वास करती है। गाँधी का मानना था कि अपने पडौसियो की सहायता करके सम्पूर्ण मानवता की सेवा की जा सकती है इसकी एक मात्र शर्त है कि यह सेवा निस्वार्थ हो और क्षिनी भी मानव के शोषण पर आधारित न हो यह सेवा की भावना गति पकडेगी लोगों को इकट्टा करेगी और सवर्ण पृथ्वी को एक घेरे में ले लेगी। गाँधी जी कहते है समुद्र से अलग होकर एक बूंद बिना कुछ किए नष्ट हो जाती है। लेकिन समुद्र के रूप में जुडकर अपने सीने पर विशाल जहाज को ले जाने का गौरव प्राप्त करती है। गांधी का स्वदेशी की अवधारण का आधार ग्राम व कुटिर उधोगो के प्रति उनका लगाव है। गाँधी जी पश्चिम की विनाशक आर्थिक नीतियों के आलोचक थे क्योंकि वे विकास शील देशों की मानव शक्ति का यथा उपयोग करने के स्थान पर कच्चे माल पर जोर देते थे जिससे कुछ थोडे से लोगों के हाथों में अत्यधिक शक्ति और भाग्य केन्द्रीकृत हो गई थी। इस लिए गाँधी की दृढ मान्यता थी कि जहाँ तक भरत का प्रश्न है। मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग और कच्चे माल का वितरण गांवो में करना ही वास्तविक नीति होगी जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ही वस्तुओं की उत्पादन है। बजाय कच्चे माल को गांवो से बाहर भेजने अथवा महंगे दामों पर तैयार विदेशी माल खरीदने से जब गाँधी जी 30 के दशक के प्रारम्भ में इंग्लैंड गए तो उनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन से सम्बंधित प्रश्न पूछे गए। गाँधी ने बताया कि बडे पैमाने पर उत्पादन करने के पीछे की सनक ही विश्व संकट के लिए उत्तरदायी है।

गाँधी के बड़े पैमाने पर उत्पादन के विरूद्ध विचार निम्न तर्को पर आधारित थे:-

1. बड़े पैमाने पर उत्पादन समाज में बड़े पैमाने पर उचित वितरण को सुनिश्चित नही करता।
2. यदि बडे पैमाने पर उत्पादन विकेन्द्रित तरीके से भी किया जाए तो भी शक्ति के कुछ विशिष्ट केन्द्र बन जाते हैं जिनके निर्णयों पर लोगों को निर्भर रहना पडता है।
3. यूरोपीयन शक्तियाँ विश्व की तथा कथित कमजोर और असंगठित नस्लों का शोषण करती है जिससे विश्व में असमानता बढ़ती है।
4. लोगों के उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन करके बडे पैमाने के उत्पादन के दोषपूर्ण प्रभावों को कम किया जा सकता है परन्तु इसे देश की समृद्धि और सोने को सुरक्षित करने के लिए ऐसा लम्बे समय तक नही चल सकता।
5. उत्पादन के स्थानीय होने पर ही वितरण की समानता हो सकती है। परन्तु ऐसा संभव नही हो सकता क्योंकि पूंजीपति अपने द्वारा उत्पादित माल को बेचने के लिए विश्व बाजार पर कला करना चहते है।

6. वास्तव में वे बड़े पैमाने के उत्पादन के विरोधी नही है वे चाहते है कि लोग अपने घरो में साधारण मशीनों से उत्पादन करे। इस प्रकार बडे पैमाने पर उत्पादन भी स्थानीय आधार पर होगा।

इस प्रकार गाँधी के लिए समानता का विचार महत्वपूर्ण था और उन्होने थोडे से विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के प्रति पक्षपात पर आधारित आधुनिक सभ्यता का विरोध किया। इसलिए उन्होंने लिखा, " मै विशेषधिकारों और एकाधिकारों से घृणा करता हूँ। जिसे सम्पूर्ण जनता के साथ नही बांटा जा सकता वह मेरे लिए वर्जित है। " गाँधी जी ने खेती और हस्तशिल्प उधोगों के विकास पर बल दिया। वे इस बात को नही मानते थे कि शहर भारत के सच्चे प्रतिनिधि है। उनका मत था कि थोडे से शहरी धनी लोगों के लिए ग्रामों का शोषण होता रहा है।

गाँधी जी अपने आदर्श ग्राम स्वराज की अवधारणा को प्रस्तुत किया और बताया कि यह जाति विहिन और वर्ग समाज होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता और क्षमता के अनुसार प्राप्त करेगा। इस व्यवस्था में कोई उच्च या निम्न नही होगा और सभी सेवाऐं (कार्य) समान मानी जाएगी तथा उन्हें वेतन मजदूरी भी समान मिलेगी। व्यक्तिगत प्रगति के स्थान पर लोगों का उद्देश्य समाज की सेवा के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति व आत्म चेतना का विकास करना होगा। ऐसे स्वराज में प्रत्येक व्यक्ति कठोर परिश्रम करेगा। शिक्षा व संस्कृति के लिए पर्याप्त स्वतन्त्र अवसर और सुविधा होगी इस दुनिया में हस्त शिल्प कुटीर उघोग और लघु स्तर पर सहकारी खेती थी, लेकिन जाति और सम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान ही था। उन्होंने लिखा 'यह स्वदेशी है जिसमें आर्थिक सीमाऐं निर्धारित होगी लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दयरा अत्यधिक बढ जाएगा। इस व्यवस्था में सम्पूर्ण और उसके एक अंग में कोई संघर्ष नहीं होगा संकीर्ण स्वार्थी या आक्रमक राष्ट्रवाद का भय नही होगा। " राज्य की शक्ति को कम करने के लिए गाँधी शक्ति के विकेन्द्रीकरण को आवश्यक शर्त के रूप में मानते है। गाँधी का मानना था कि हिंसा पर आधारित केन्द्रिकृत शक्ति और बल के कारण आधुनिक राज्य व्यक्ति के अधिकारों का शत्रु बन गया है।

हिन्द स्वराज' में गाँधी राज्य निर्माण के पश्चिमी मॉडल का विरोध करते है और भारतीयों को इसकी नकल नही करने की सलाह देते है। उन्होंने लिखा राज्य हिंसा का संगठित और केन्द्रीकृत रूप है। व्यक्ति में आत्मा होती है जबकि राज्य आत्माविहीन मशीन है जो हिंसा से कभी अलग नही हो सकती क्योंकि इसका अस्तित्व ही उससे है। गाँधी राज्य की शक्ति को कम करके इसे पीड़ितों को देना चाइते थे। शक्ति को कम करने और राज्य की सहायता करने के लिए गाँधी पंचायत प्रजातंत्र की पद्धति सुझाते है, जो सबसे निचले स्तर पर मौजूद लोगों को निर्णय करने की शक्ति देता है। उन्होंने इस मॉडल को सरकार की संसदीय प्रणाली से बेहतर माना है। गाँधी का पंचायत का प्रजातांत्रिक रूप निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं:-

1. ग्राम गणराज्य आत्मर्निभर होने और अन्न, दूध, कपास और कपड़े उत्पादित करेगें।
2. प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगा और गांव के अपने स्कूल थियेटर सार्वजनिक सभागृह और खेल के मैदान आदि होंगे।

3. प्रत्येक गतिविधियों का आधार सहकारिता होगा। गांव स्वच्छ पानी की करेगा और सार्वजनिक कुओं और पानी सम्बंधी अन्य कार्यो की देख भाल करेगा।
4. जाति और अस्पृश्यता जैसी स्थिति नहीं होगी।
5. अहिंसा और इसकी असहयोग की पद्धती को ग्राम समुदाय की स्वीकृति।
6. बारी-बारी से सभी के लिए ग्राम सुरक्षा का कार्य करना अनिवार्य होगा।
7. पंचायत में 5 सदस्य होंगे जिनका प्रतिवर्ष चुनाव होगा ये पंचायत ग्राम छ कार्यपालिका व्यवस्थापिका और न्यायपालिका सम्बंधी कार्य करेगी।
8. सभी निर्णय सर्वसहमति से लिए जायेगे समाज में असमानता के बडे में तीन प्रकार के भेदभाव थे। ये तीन कारण थे:
    1. शारीरिक व मानसिक श्रम में विभेद
    2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में मध्य भेदभाव
    3. कृषि और उद्योगों के मध्य भेदभाव

गाँधी जी 'ग्राम स्वराज ' में इस भेदभाव को समाप्त करने के इच्छुक थे। उन्होंने शारीरिक और मानसिक श्रम में भेद नही किया और कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रोटी पसीने की कमाई से प्राप्त करनी चाहिए। बड़े पैमाने पर अत्याधिक उत्पादन करने बडी औद्योगिक इकाई लगाने और विकेन्द्रित आर्थिक गतिविधियों पर रोक लगाकर शहर और ग्राम के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। गाँधी का कुटीर और ग्रामीण उधोगों की अवधारणा विशेष तौर पर कृषि और उधोगों के बीच के अन्तर को कम करने पर आधारित थी क्योंकि वे इन दोनों के मध्य एक सामंजस्य बैठाना चाहते थे।

गाँधी के आदर्श राज्य 'स्वराज' में लोगों को सभी अधिकार प्राप्त होंगे और निर्वलतम भी उतना ही शक्ति और सत्ता प्राप्त करे जितना कि शक्ति शाली। उन्होंने लिखा ' 'स्वराज्य की प्राप्ति थोड़े से लोगों द्वारा सत्ता अर्जित करना नहीं है वरन् सभी के द्वारा इतनी शक्ति प्राप्त करना है कि इसके दुरूपयोग को रोक सकें विरोध करने की क्षमता आत्मा की स्वतन्त्रता आत्मनिर्भरता पर आधारित है जिसे एक अनुशासित सहयोगी जीवन उत्पन्न होगा गाँधी के लिए सार्वजनिक जीवन की मूल ईकाई ग्राम गणतंत्र थे। यह संरचना अनगिनत ग्रामों से मिलकर बनेगी जो हमेशा विस्तृत होती जाएगी कभी भी इसके वृत कम नहीं होगें। जीवन एक पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसका शिखर उसके तल से स्थिर है वरन् यह समाज के भीतर सागरीय वृतों के समान होगा जिसके केन्द्र में व्यक्ति होगा जो अपने निकटवर्ती वृत अर्थात ग्राम के हित में त्याग करने को तैयार रहेगा। और अंत में इसमें व्यस्त लोक कल्याण की भावना ऐसे मनुष्यों की विराट समष्टि में विलीन हो जाएगी जो अहंकारी नहीं अपितु विनम्र होगे और उस विशाल वृत की गरिमा को अनुभव करेगें जिसके कि वे स्वयं भी अनिवार्य घटक हैं। इस व्यवस्था में सबसे बडा वृत अपने भीतर छोटे वृतों को कुचलकर शक्ति प्राप्त करेगा। गाँधी चाहते थे कि व्यक्ति को पूर्ण अधिकार और सत्ता मिले और राज्य की शक्ति को सीमित किया जाएगा। उनका कहना था कि सविनय अवज्ञा अथवा सत्याग्रह की सहायता से लोग राज्य की शक्ति को चुनौती दे सकते है। सत्याग्रह का उद्देश्य राज्य की गलत नीतियों का अहिंसक तरीके से विरोध करना सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं को बुराइयों व विकृतियों से मुक्ता करना

तथा गलत नीतियाँ अपनाने वालों को उनकी कमियां बताकर उनका हृदय परिवर्तन करना है। गाँधी ने सत्याग्रह को सदैव बहादुरों और भययुक्त निडर व्यक्ति का अस्त्र माना।

गाँधी ने हिंसा का विरोध किया और घृणा को जहर फैलाने के कारण आधुनिक राष्ट्रवाद की आलोचना की युद्ध की नीति निरंकुशता को शुद्ध और सादा बना देती है। गाँधी का तर्क था कि जो लोग शांति के लिए कार्य करना चाहते- है उन्हें निरंकुश के दबाव को बढाने में मदद नही करनी चाहिए तथा विवादों के शांतिपूर्ण समाधान नहीं है। शांति बल प्रयोग से नहीं लायी जा सकती। पूर्व के पृष्ठों में हमने संक्षिप्त में गाँधी द्वारा पर्यावणवाद के रूप में प्रतिपादित राजनीतिक सिद्धान्त की चर्चा की। यह गाँधी की विशेषता है कि उन्होने पर्यावरणविदों के अधिकांश तर्को की कल्पना की और वैकल्पिक मॉडल की रूप रेखा प्रस्तुत की जिसमें आधुनिक पर्यावरण विज्ञानियों की चिन्ता का निराकरण है।

14.8 आधुनिक पर्यावरणविद और गाँधी

आधुनिक पर्यावरण विज्ञानियों ने महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिनमें शामिल हैं- स्थानीय उत्पादन मशीनों का सीमित प्रयोग क्षेत्रीय और स्थानीय समूहों के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता उत्पादन प्रकिया पर उत्पादक और उपभोक्ता का संयुक्त नियंत्रण युद्ध तथा परमाणु हथियारों का प्रयोग। यदि हमें गाँधी के आर्थिक राजनीतिक युद्ध और शांति सम्बंधित विचारों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करें तो हमें अनुभव होगा कि गाँधी इनसे अधिकांश विचारों को वे सामाजिक व राजनीतिक जीवन में प्रयुक्त करना चाहते थे। उनका द्रव विश्वास था कि पृथक होकर या बचाव सम्बंधी उपायों का अपना कर पर्यावरण का सरंक्षण नहीं किया जा सकता बल्कि विकास की मुख्य समस्या को समझना होगा। जब तक कि बाजार के शोषण पर आधारित और बडे पैमाने पर उत्पादन की व्यवस्था पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था को चुनौती नहीं मिलेगी तथा इसकी नीतियों को नहीं बदला जाएगा तब तक प्रकृति के क्षरण और पर्यावरण के विनाश को रोकना सम्भव नहीं है। गाँधी उस आधुनिक सभ्यता को अभिशाप की संज्ञा देते हैं जो शक्ति के केन्द्रीयकरण दबावकारी राज्य व्यवस्था विज्ञान और तकनीकी को प्राविधिक प्रयोग और तर्कवाद की विकृत व्यवस्था पर आधारित हो। उनका कहना बिल्कुल सही था कि समाज में असमानता का कारण विशाल और जटिल मशीनों का उपयोग है क्योंकि उत्पादन के आधुनिक तरीके धनवानों के सहायक हैं। उनका मानना था कि प्रकृति के साथ उचित व्यवहार होना चाहिए। उन्होंने इस हेतु वैकल्पिक पद्धतियां दी जैसे -प्राकृतिक चिकित्सा सहकारी कृषि और प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर राजनीतिक शक्ति का विकेन्दीकरण और सत्याग्रह तकनीक।

गाँधी जी एक ऐसे राष्ट्र से सम्बंधित थे जहाँ उत्पादन के विभिन्न तरीके मौजूद थे और प्रयोग करने के लिए प्रचुर अवसर थे। पश्चिम ने भारत की बहुमूल्य संस्कृति को नष्ट किया हांलाकि पूरी तरह नहीं हो पाया गाँधी ने भारतीय सभ्यता की आर्थिक राजनीतिक व सांस्कृतिक विविधताओं का रचनात्मक उपयोग किया और एक वैकल्पिक प्रतिमान दिया। गाँधी भारतीय सभ्यता के प्रशंसक थे। परन्तु वे इसकी कमियों को भी जानते थे इसी लिए वे उस प्राचीन सभ्यता को हूबहू पुर्नजीवित नही करना चाहते थे वे इसमें स्वतंत्रा की भावना और स्वायतता जागत कर उसे परिवर्तित करना चाहते थे। इस प्रकार ग्राम गणराज्य का उनका

सपना एकदम स्पष्ट था जिसमें सडकें थी शिक्षा और मनोरंजन की सभी महत्वपूर्ण सुविधाऐं थी।

पर्यावरणवाद से स्थिर विकास और प्रगति की सीमाओं के बारे में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़े हुए हैं क्योंकि हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों का भलीभांति संरक्षण करना पड़ेगा परन्तु दोनों बातें तब तक संम्भव नहीं है जब तक कि हम अपनी मांगों को सीमित करने का निर्णय नही लेते और प्रगति तथा भौतिकता की अवधारणा पर पुनर्विचार नही करते। गाँधी चाहते थे कि लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो व सम्मानजनक जीवन मिले। वे भौतिक सुखों में अत्यधिक लिप्तता के विरोधी थे क्योंकि इसकी बहुत अधिक कीमत थी। गाँधी जी का राजनीतिक सिद्धान्त वास्तव में एक ऐसा राजनीतिक सिद्धान्त था जो स्थिर विकास इच्छाओं की संतुष्टि और शांति पर आधारित थी। अन्याय के विरूद्ध संघर्ष के लिए दी गई सत्याग्रह अथवा सविनय अवज्ञा की अवधारणा गाँधी की हरित सिद्धान्त को महत्वपूर्ण देन है। विश्व भर में चल रहे शांति आन्दोलनों को इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए और अन्याय के खिलाफ इस अस्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

14.9 सारांश

पर्यावरण की राजनीति अभी अपने शैशव काल में है। राजनीति विज्ञान की धारा पर आधुनिकतावाद के अनुयायियो का गहरा प्रभाव है। पर्यावरणवाद के अनुयायी गाँधी के विचारों का लाभ पुरा नहीं उठा रहे हैं। गाँधी, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध वैचारिक और व्यवहारिक विरोध किग्रा, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, पर्यावरण से जुडी अनेक समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। प्रतिबद्ध रूप से इन विचाराकें को अंगीकृत कर विश्व की अनेक वर्तमान समस्याओं का निदान पाया जा सकता है। इस दिशा में अभी लम्बी यात्रा तय करना बाकी है। यह कहा जा सकता है कि उनकी नीतियों का सुदृढ विरोधियों पर परिवर्तन होना अभी बाकी है। इसलिए जब भी एक न्यायपूर्ण स्थिर समाज की स्थापना के लिए संघर्ष और विश्व व्यवस्था के लिए उत्साह होगा तो यह और कुछ नही होगा बस गाँधी जी को पुन: वापस लाना होगा।

14.10 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक सभ्यता पर गाँधीजी द्वारा की गई आलोचना का वर्णन करें।
2. गाँधीजी द्वारा बताये विकास के मार्ग का मूल्याँकन करें।
3. पर्यावरण पर गाँधीजी के विचारों का वर्णन करें।
4. भारतीय सभ्यता और विकास के वैकल्पिक मार्ग पर गाँधीजी की ' का विवेचन कीजिए।
5. वर्तमान में मानवता के समक्ष विद्यमान पर्यावरण संकट और गाँधीवादी की विवेचना कीजिए।

14.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम. क्लॉक, एनवायरनमेन्टलिस्म इन अर. बेले की सम्पादित थ्योरीज एंड कान्सेटटस ऑफ पॉलिटिक्स एन इट्रोडेक्शन, मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, मैनचेस्टर, 1993.
2. पी. एन. सेठ थ्योरी ऐंड प्रैक्टिस ऑफ एनवसयरनमेंटलिस्म: ग्रीन प्लस गाँधी, गुजरात विद्यापीठ, अहमदावाद, 1999
3. एम. के. गाँधी, हिन्द स्वराज अथवा इंडियन होम रूल, नवजीवन, अहमदाबाद, 2003
4. डी. जोशी, गाँधीजी ऑन विलेजेस, मणिभवन संग्रहालय, मुम्बई 2003

इकाई - 15

अहिंसात्मक संघर्ष निवारण एवं गाँधी

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 अहिंसा
15.3 गाँधी की अहिंसा
15.4 वर्तमान सन्दर्भ में गाँधीवादी अहिंसा की प्राथमिकता
15.5 सारांश
15.6 अभ्यास प्रश्न
15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है

- अहिंसा की पारिभाषिक शब्दावली की पर्याप्त समझ विकसित करना।
- गाँधी की अहिंसा संबंधी विचार को समझाना।
- अहिंसात्मक संघर्ष समाधान का अर्थ और पद्धती समझना।

15.1 प्रस्तावना

एक बार एमर्सन ने कहा था, "सभ्यता की सही जाँच, जनगणना नहीं होती, न ही नगरों का आकार या लम्बाई-चौडाई होती है, न फसलें होती हैं, बल्कि सभ्यता का पैमाना तो वे मनुष्य होते हैं जो कि कोई देश उत्पन्न करता है। "हम सब जानते हैं कि आधुनिक समय में पश्चिमी सभ्यता ने मानव जीवन पर अपना व्यापक प्रभाव डाला है और इस प्रभाव के अनेक दुखद पहलू भी हैं। इन समस्याओं से निकलने ' लिया गाँधी के विचार और कार्य मार्ग प्रशस्त करते हैं। गाँधी की सभ्यता को समझने की दृष्टि नैतिक थी ' उन्होंने विश्व एवं इतिहास के आध्यात्मिक स्पष्टीकरण को स्वीकार किया था। उनके अनुसार, "सभ्यता की एक पद्धति है जो मनुष्यों को कर्त्तव्य के मार्ग का संकेत देती है। "

आज का सम्पूर्ण परिदृश्य सम्पूर्ण मानव जीवन को एक उथल-पुथल की स्थिति में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और यहाँ तक की सांस्कृतिक मनुष्य जीवन को प्रस्तुत करता - और ऐसा लगता है कि आज के सन्दर्भों में मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन एक गम्भीर संकट से गुजर रहा है। आज की दुनियाँ में पूरी तरह विस्फोटक प्राणघातक चिन्ह, पृथ्वी के सम्पूर्ण नमो पर बिखरे दिखाई देते हैं। इस प्रकार मनुष्य ने स्वयं अपने को अमानवीय बना लिया है और वह अवर्णनीय रूप में स्वयं के प्रति क्रूर हो गया है।

आज लोग पूर्ण विस्तार, अव्यवस्था, हिंसा और युद्ध में परिवर्तित होते उपद्रवों को महसूस करते हैं। जीवन के मूल्य दैनिक जीवन के पक्षों से असम्यृक्त होते जा रहे हैं और हम एक ऐसी दुनियाँ में जी रहे हैं जहाँ एक ओर, विशाल और तकनीकि में जैसा कि परिलक्षित है अन्तरिक्ष यात्रा से परमाणु ऊर्जा, संचार आदि क्षेत्रों में हम प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं और दूसरी ओर मनुष्य का मस्तिष्क उपकरण, मनोवैज्ञानिक रूप में बढ़ने, खिलने, अपने को समसामयिक शोध के तरीकों से मुक्त करने, महसूस करने और अपने संगी-साथी मनुष्यों से सरल व्यवहार करने में पूर्णत: असफल हो रहा है।

आज, विज्ञान द्वारा प्रदत्त अपने ज्ञान से शान्ति और प्रगति का मार्ग खोजने के बजाय, मनुष्य अपने विनाश के साधन विकसित कर रहा है। अणु की विनाशकारी शक्ति, दूर तक मारक मिसायलों की उड़ाने और प्लेनेट को जीतने की होड़, मानवजाति की सुरक्षा के लिए खतरे की घंटी बन गये हैं। इन सबके अलावा, बढ़ता स्वार्थ, झूठा दिखावा या ढकोसला और शैतान की पूजा (धन को एक भगवान या बुरा प्रभाव डालने वाला माना गया है) कि कर्तव्य विमूढ़ बनाने वाली कठोर वास्तविकता है।

हम इन खतरों से केवल अहिंसा के सिद्धान्त का अनुसरण करके ही, लड़ सकते हैं - अहिंसा जो कि गाँधीजी का सर्वाधिक प्रिय शब्द था। उनके अनुसार प्रेम, त्याग और सत्य के धर्मसंगत मार्ग पर चलकर ही मानवजाति को पूर्णत: विनाश से बचाया जा सकता है और मनुष्य केवल इस विश्वास के माध्यम से अपने चरित्र को ऊँचाईयों तक ले जा सकता है और इस दुनियाँ के नरक को स्वर्ग में बदल सकता है। वास्तविक तथ्य यह है कि अहिंसा का व्यावहारिक तौर पर हर देश में उपदेश दिया जाता है एवं अभ्यास किया जाता है और हर जगह लोग ऐसा करते हैं। यह कई विचारकों एवं धर्मों के प्रवर्तकों ने सिखाया है कि हिंसा को हिंसा या बुराई से नहीं जीत सकते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि महात्मा गाँधी एक ऐसे मनुष्य थे, जिन्होंने प्रेम और अहिंसा के संदेश का प्रसार करने की खातिर अपना जीवन दिया।

गाँधीजी अहिंसक शान्तिपूर्ण प्रतिरोध के महान विचारक थे। गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित अनेक राजनीतिक अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है सत्याग्रह। सत्याग्रह सम्बन्धी उनका दर्शन उनकी सक्रीय राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों के साथ उद्भव होता रहा। गाँधीजी ने अनेक राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक मुद्दों को लेकर विभिन्न सत्याग्रहों का नेतृत्व किया। जो सफलता उन्हे मिली वह इस बात का संकेत है कि सत्याग्रह के माध्यम से समाज में विद्यमान अनेक समस्याओं का प्रभावी निस्तारण किया जा सकता है यदि उसे अपनाने वाला व्यक्ति सत्याग्रह की मूल बातों को ध्यान रखे और सच्चे सत्याग्रही के जो गुण गाँधीजी ने बताये हैं उनका वह अनुकरण करे।

15.2 अहिंसा

अहिंसा को हिंसा के इस्तेमाल से बचने के एक सिद्धान्त के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, विशेषकर विरोध करने के साधन के तौर पर, हिंसा का न होना या हिंसा से मुक्ता होना। फिर भी, अहिंसा को परिभाषित करना आसान नहीं है क्योंकि इसकी परिभाषा नये आयामों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदल जाती है और इससे कई प्रकार के प्रश्न

भी उत्पन्न होते हैं। क्या यह एक नया शब्द है जिसमें बहुत पुरानी स्थापित स्थितियों का अभ्यास शामिल है? क्या अहिंसक व्यक्ति होने का अर्थ अहिंसक है? क्या अहिंसा में दबाव होता है, एक स्थापित व्यवस्था की तैयार स्वीकृति ' आखिर सीमा क्या हे, यदि कोई सीमा तो क्या शारीरिक शान्ति के उपयोग को छोड देना अहिंसा है? अहिंसा के तौर-तरीके या पद्धतियाँ क्या हैं? वे प्रभावकारी हैं? क्या ऐसी स्थिति में अहिंसक बने रहना सम्भव है जबकि किसी एग्नोस्टिक प्रवृति अपनी स्वीकार न करने की स्थिति को समर्थन देना पडे। ये सब प्रश्न दर्शाते हैं कि अहिंसा के दर्शन एवं इससे विषयों के बारे में साधारणत: कुछ कहना सरल नहीं है।

आज शान्ति पर शोध इस एक मत पर पहुँच गई है कि शान्ति का विलोम, नहीं, बल्कि हिंसा होता है। इसी के अनुसार हिंसा का विलोम अहिंसा है, जो शान्ति की पहचान के लिए उपयोग में लाया जाता है। एक उपविषय से अधिक, यह एक ही विषय की भिन्न तरीके से देखने का एक रास्ता सिद्ध कर सकता है। यह निष्कर्ष सहज ज्ञान की दृष्टि से सन्तोषजनक लगता है और यह सुझाता है कि अहिंसा अध्ययन में शान्ति के अध्ययन का भी बहुत कुछ लेना-देना है।

दुर्भाग्यवश, अहिंसा का व्यवस्थित प्रणाली से अध्ययन और इसका एक मैकेनिज्य के रूप में विकास काफी हाल ही का है क्योंकि इस शब्द का इस्तेमाल (और इस विषय के पीछे के पीछे के अर्थ को समझने) में विरोधाभास रहा है। वर्णात्मक स्तर पर, अहिंसा और हिंसा कहे बीच का भेद कोई समस्या नहीं है और अप्रकाशित है अहिंसा, हिंसा की अनुपस्थिति है। फिर भी, युद्ध की अनुपस्थिति, पहली समस्या यह खड़ी होती है क्योंकि सब प्रकार की हिंसा भौतिक नहीं होती। अधिकांश (लेकिन सब नहीं) सिद्धान्तवादी, आजकल एक' गाली देने वाले शब्द का विचार करेंगे या ऐसा संकेत देंगे जिसके साथ धक्का-मुक्की न. हो जो कि वे अहिंसा के अर्थ के रूप में बताना चाहते हैं। दूसरी ओर, कुछ लोग किसी के द्वारा की गई -मुक्की बिना किसी प्रकार घृणा या डर के की गई हो तो कुछ लोग इसे अहिंसा मान सकते हैं।

गाँधी के शब्दों में अहिंसा वास्तव में, लोगों की कल्पना में जो अहिंसा है, उससे ' है। गाँधी की अहिंसा के बारे में इतनी गलतफहमी है कि इसे बहुधा कायरता के समान मान लिया जाता।

15.3 गाँधी की अहिंसा

हम सब जानते हैं अहिंसा और सत्य विचार की मुख्यधारा के दो मौलिक जुडवां सिद्धान्त है। उनकी यह दृढ मान्यता थी कि हिंसा की ओर मनुष्य की प्रवृति एक शक्तिशाली भाव है। यह पशुवत पुरखों के क्रमिक विकास का अवशेष है। घृणा रो पूरी तरह रहित आध्यात्मिक अहिंसा, पूर्णत: विकसित मानव की पराकाष्ठा है। यद्यपि उनके कई विरोधी हैं लेकिन उन्हें यह आशा थी कि अन्त में अहिंसा की जीत होगी। अहिंसक संघर्ष राजनीतिक. एवं सामाजिक बदलाव का एक शान्तिपूर्ण साधन था। यह लोकतांत्रिक है क्योंकि लोकतंत्र का सार यह है कि हिंसा छोड़ दी जाये और उत्प्रेरणा पद्धति को अपनाया जाये। गाँधीजी के अनुसार, प्रेम

एवं प्रेरणा, न कि घृणा, बदलाव लाने के साधन होने चाहिए। उन्होंने इस बात को दृढ़ता के थ नस्लवादी एवं राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए अहिंसा ही एकमात्र साधन उपलब्ध हैं।

गाँधी का विश्वास था कि अहिंसक कार्य अपने विरोधी को दण्ड देने या उसे, पहुँचाने का प्रयास नहीं करता। यही तक की उसके साथ असहयोग करते समय हमें उसे यह अनुभव चाहिए कि हमारे लिए वह मित्र हैं और हमें मानवीय सेवा के माध्यम से उसके हृदय को छूने का प्रयास चाहिए।

गाँधी के लिए यथार्थ में त्याग का अर्थ था, जो त्याग किसी को दर्द पहुँचाता है, वह कभी त्याग नहीं होता। सच्चा त्याग सुख पहुँचाने वाला और श्रेष्ठ बनाने वाला होता है। इसी प्रकार मौन को भी वे सुनहरा विषय मानते थे।

वास्तव में, अहिंसा को सबसे बड़ा गुण माना गया है। भारतीय नैतिक एवं धर्म गुरूओं ने इसको एक सर्वश्रेष्ठ गुण के रूप में मानने का उपदेश दिया है। जैन, बौद्ध एवं हिन्दू परम्परा में अहिंसा को कर्म के रूप में अपनाने के सैद्धान्तिक आधार प्रतिपादित किये हैं। समस्त मनुष्यों एवं प्राणियों के प्रति अहिंसा एवं मैत्रीभाव की वैश्विक दृष्टि की शिक्षा का उल्लेख 'इसोपानेशद्, 'गीता', 'पुराणों', 'योग सूत्रों' आदि में निहित है जिसने गाँधी को प्रभावित किया। उन्होंने बचपन से माँ पुतलीबाई से बचपन में ही किसी से घृणा न करने की सीख ली। अपने पड़ोसियों से भारतीय सूत्र कि सत्य से बढ़कर कुछ नहीं और 'अहिंसा ही सबसे बड़ा गुण है' (अहिंसा परमोधर्म) सीखे।

उन्होंने पुराणों में पढ़ा कि मित्र और शत्रु में भेद नहीं क्योंकि वे दोनों परमात्मा के अंग हैं और ईश्वर सब में मौजूद है इसलिए समस्त प्राणियों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम और सेवाभाव रखें। जैन एवं बौद्ध धर्मों से भी उन्होंने यही सन्देश ग्रहण किया।

दरअसल, गाँधी के लिए अहिंसा से अभिप्राय था - समस्त संरचना के प्रति प्रेम और सेवा। अर्थात् पूर्ण निःस्वार्थ भाव एवं सेवा को समर्पित भावना से विश्व के साथ तादात्मय एवं समभाव स्थापित करना अहिंसा, यथार्थ में हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत है।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अतिरिक्त, गाँधीजी, सुकरात, ईसामसीह और आधुनिक युग के महापुरूषों गल्सटॉय, शस्किन, कार्लाइल, हेनरी डोवडे थोरो आदि से प्रभावित हुए थे। वे एडविन आर्नोल्ड के भी ऋणी थे जिनके 'दी लाईट ऑफ एशिया' जिसने उन्हें भगवान बुद्ध के जीवन का स्पर्श दिया। गीता के अंग्रेजी अनुवादक ने उन्हें गीता का ज्ञान सौंपा। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कई अच्छे इसाईयों के सम्पर्क में इसाई धर्म को समझा। रॉल्सटॉय की पुस्तक - 'दी किंगडम ऑफ गॉड विदिन यू इसाई धर्म को मनुष्य के वेदान्तिक विचार के करीब लाने वाली सिद्ध हुई। थोरो के 'सिविल डिस्ऑबिडियन्स ने गाँधी के सत्याग्रह के सिद्धान्त एवं क्रियान्वयन को प्रभावित किया। इस्लाम का अर्थ शान्ति, सुरक्षा एवं मुक्ति और सलायालेकम अर्थात् 'आपको शान्ति-सुरक्षा' जैसे विचारों एवं कुरान के इस सिद्धान्त ने कि हिंसा की जगह अहिंसा को प्राथमिकता दो, ने उन्हें प्रभावित किया।

गाँधी की अहिंसा इस प्रकार किसी धर्म, जाति या देश की अहिंसा नहीं है बल्कि यह समस्त मानवजाति की विरासत है। चीन के तीन धर्म सम्प्रदायों - कन्फूसियनिज्म, ताओज्मि एवं बुद्धिज्म में उन्होंने अहिंसा के तत्व पाये। जुडो जी में भी यही भाव निहित हैं।

गाँधी ने अहिंसा की धारणा की खोज नहीं की बल्कि सदियों की अहिंसा के दर्शन की विरासत को नया आधार दिया। वे इस प्रकार बताते हैं कि "अहिंसा एक विश्वव्यापी कानून है जो हर स्थिति में अनुकूल है।" इसके अलावा गाँधी का सत्याग्रह भी अहिंसा से अलग नहीं किया जा सकता। दुनियाँ से भी धर्मों में जैन धर्म ने अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया है। इसके पाँच प्रमुख गुणों में अहिंसा, सत्य, असत्य, पुरूष वर्ग एवं अपरिग्रह शामिल हैं। इनमें मस्तिष्क की शुद्धता के लिए अहिंसा पर विशेष ध्यान दिया गया है। गाँधी, जैन धर्म के सम्पूर्ण अहिंसा के प्रभाव में बड़े हुए। वे जैनियों के अन्तिम तीर्थांकर महावीर स्वामी को अहिंसा के अवतार मानते थे।

गाँधी के अहिंसा के दर्शन को पुष्ट करने में गीता, रामायण एवं महाभारत जैसे ग्रन्थों के अध्ययन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। एक उर्दू की कहावत है कि 'आदम गॉड नहीं है, लेकिन वह उस ईश्वरीय शक्ति की चमक या 'स्पार्क' है। " इसी तरह कृष्ण को एक सम्पूर्ण अवतार माना जाता है और जो धर्म का पालन करने वाले में उस ईश्वरीय शक्ति की चमक व्याप्त होती है। गीता ने वास्तव में गीता के मस्तिष्क में एक आदर्श मनुष्य की तस्वीर प्रस्तुत की। उन्होंने माना कि आदर्श व्यक्ति है जो कर्मयोगी है अर्थात् जो सुख और दुख, अच्छे और बुरे, सफल और असफल जैसे परस्पर विरोधी शब्दों से अपमानित है। गाँधी अहिंसा के सिद्धान्त के आदर्श पुरूष थे। वे मानते थे कि बिना विराग के मनुष्य सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का अनुसार नहीं कर सकता। वह विनम्र, दयालु, दुख-सुख के भारों से मुक्त, डर और घृणा, सम्मान और लज्जा तथा अच्छे और बुराई परिणामों से सम्बन्ध नहीं रखता। सर एडविन ऑर्नोल्ड द्वारा अनुवादित गीता द्वितीय अध्याय ने गाँधी के मस्तिष्क पर सर्वाधिक प्रभाव डाला। सत्य की खोज में गीता उनकी मार्गदर्शक एवं रोजमर्रा के जीवन का सन्दर्भ ग्रन्थ बन गई। अपने सब कष्टों एवं समस्याओं का निदान वे इस आचरण के शब्दकोष में ढूँढते थे।

तथ्य यह है कि, गाँधी ने गीता की मौलिक शिक्षा के अनुरूप अपने जीवन के ढाला। गीता में कहा गया है, "केवल वह व्यक्ति सन्त कहा जा सकता है, केवल वह विद्वान कहलाता है जो दूसरों को अपने भीतर देखता है और अपने को दूसरों के भीतर पाता है। " जो सुख-दुख को समान समझे वही कर्मयोगी है। जैसा कि गीता में कहा गया है। गीता की सीख मानकर वे मानते थे कि अच्छे कर्म त्याग की भावना के साथ किये जाने चाहिए। विशेषकर दरिद्र नारायण (अर्थात् गरीबों और पिछड़ों के भगवान) की सेवा के कार्य।

गाँधी की अहिंसा के बारे में इतनी अधिक गलत धारणा है कि बहुधा इसे कायरता के समान बताया जाता है, यद्यपि गाँधी ने कहा था 'जहाँ कहीं कायरता एवं अहिंसा के बीच एक को चुनना हो तो, मैं हिंसा की राय दूँगा। " उनके अनुसार अहिंसा और कायरता का एक दूसरे से कोई नाता नहीं है। दूसरी ओर, "अहिंसा वीरों का गुण है और हिंसा की अन्तिम सीमा। " वास्तव में, हमें सही और झूठी अहिंसा की पहचान होनी चाहिए।

शाब्दिक तौर पर, अहिंसा का अर्थ है किसी को चोट न पहुँचाना या न मारना। यह उपनिषद्, बौद्ध एवं जैन तथा हिन्दू धर्मों का मत है। जैन धर्म तो चोट न पहुँचाने या न मारने के इस सिद्धान्त को) मानवता तक ही नहीं बल्कि हर प्राणीमात्र तक फैलाते हैं।

गाँधी, मानवजीवन की जरूरतों के प्रति भी सचेत थे। वे कहते हैं कि आदमी चेतन या अचेतन में बाहरी हिंसा के बिना नहीं रह सकता। मनुष्य के पीने, खाने, पीने और घूमने की प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि एक प्रकार की हिंसा होती है और कोई जीवन नष्ट होता है। भले ही यह अति अल्प हो। वे कीटनाशकों या दवाओं के माध्यम से जीवनहीन की अनुमति नहीं देते। दरअसल, गाँधी की अहिंसा का दर्शन गणित की गणना या केलकूलेशन से अधिक है। यह ईश्वर को पहचानने के समान है। यह कोई आसानी से समझने का दर्शन नहीं है, इससे भी कठिन है इसे व्यवहार में अपनाना, उतना ही कमजोर जितने हम स्वयं हैं।

नकारात्मक भाव या अर्थ में अहिंसा का अर्थ है - न मारना। लेकिन गाँधी, की अहिंसा की धारणा में यह शाब्दिक अर्थ तक सीमित नहीं हैं। अहिंसा के माने शब्द, कर्म एवं विचार में अहिंसा का होना है। गाँधी की अहिंसा का इसलिए, नकारात्मक स्तर पर लालच, लोभ, क्रोध, गर्व या घमण्ड और असत्य या झूठ से मुक्ता होता है क्योंकि हमारे भीतर ये छह शत्रु हैं। यह नकारात्मक गुण है - क्रोध न करना, चोरी न करना, अधिक संग्रह न करना, लगाव न करना, न डरना, रस न लेना, किसी के हृदय को चोट न पहुँचाना और अन्त में किसी को न मारना। यही कारण है कि इस सर्वोत्तम गुण को 'अहिंसा' के रूप में परिभाषित किया गया है।

लेकिन यथार्थ के धरातल पर अहिंसा नकारात्मक, स्थिर या असक्रिय नहीं है। सकारात्मक अर्थ में अहिंसा का अर्थ है - 'सक्रिय प्रेम'। इस कारण सकारात्मक दृष्टि से यह गतिशील धारणा एवं सिद्धान्त है। यह प्रेम के बदले प्रेम नहीं बल्कि ईश्वर की समस्त रचना के प्रति प्रेम है। इसलिए गतिशील अहिंसा का अर्थ है - 'सीधे आचरण' या कार्य या 'मौन एवं नि:स्वार्थ दर्द। ' ईसा मसीह की तरह गाँधी एक हिंसा भरी दुनियाँ में आये, मानवता के लिए कष्ट और पीड़ा सही और मानवता के लिए जिये और मरे। अहिंसा का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते ही उन्होंने प्राण त्यागे, वे एक मार्गदर्शक, जननेता और महात्मा बन गये। उनकी प्रेम की नैतिक, मौलिक रूप से अहिंसा की दिशा में जाती है, बुराई के सामने कभी न झुकना अर्थात् समस्त जीवों के प्रति प्रेम। उन्होंने बाईबल की शिक्षा का अनुसरण किया, 'हर किसी को दो जो तुमसे मांगे और अपनी सम्पत्ति वापिस मत मांगों उस व्यक्ति से जिसने तुम्हें लूटा है। " महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि अहिंसा का उत्तम प्रेम से होता है और इस कारण इसकी परीक्षा हृदय की आन्तरिक भावनाओं में होती है।

सब लोग अपने जीवन को बनाये रखने, अपनो की सुरक्षा करने या दूसरों के लिए कुछ न कुछ जीवन नष्ट करते हैं। इसलिए सब प्रकार की हिंसा को जानकर गाँधी ने प्रगतिशील अहिंसा का संकेत दिया। इसका अर्थ है पूर्ण अहिंसा वह है जहाँ हिंसा को उस हद तक छोड़ना जहाँ तक सम्भव हो।

इस प्रकार, प्रगतिशील अहिंसा की अवधारणा में यथार्थ एवं आदर्शवाद दोनों निहित हैं। एक ओर वे मनुष्य के जीवन की लागत पर प्रेस्ट एवं वर्मिन की अहिंसा के नाम पर अनुमति

नहीं देते वही दूसरी ओर वे किसी को जरूरत से अधिक नीम की पत्ती छोड़ने की अनुमति भी नहीं देते। इन सबका अर्थ है कि गाँधी ने जीवन की ग्रेड्स एवं अहिंसा की ग्रेड्स को पहचाना है। तर्कसंगत एवं मानवीय प्रवृति गाँधी की अहिंसा को और अधिक स्वीकार्य एवं व्यावहारिक बनाती है। फिर भी यह तर्क करना कि चूँकि हम सम्पूर्ण या एब्सोल्यूट अहिंसा को नहीं अपना सकते, गलत होगा कि हम उतना ही अल्प अपनाऐं जितना अपना सकते हैं। इसके बजाय हमें सोचना चाहिए कि दृढ़ निश्चय मनुष्य को बड़ी ऊँचाईयों तक ले जाता है और यूँ कि अभ्यास मनुष्य को पूर्ण बनाता है इसलिए हम प्रेम एवं दया को जितना अपनाने का प्रयास करेंगे, उतने ही आप हम - उनमें वृद्धि कर पायेंगे और नैतिक स्तर पर ऊँचे उठ पायेंगे। गाँधी की अहिंसा, भौतिक चोट पहुँचाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह बुरी इच्छा क्रोध, घृणा और द्वेष को दिल से निकालने में सहायक हैं। वास्तविक अहिंसा की जाँच हमारी इच्छा की अच्छाई एवं इरादे पर निर्भर है। अहिंसा, दरअसल, "सबसे लम्बा प्रेम एवं सर्वोत्तम दान है। " जैसा कि गाँधी मानते हैं। क्रोध, घृणा एवं बदले की भावना का अहिंसा में कोई स्थान नहीं है। गाँधी कहते हैं कि 'यदि हृदय में घृणा है तो हम वास्तविक अर्थों में अहिंसक नहीं हो सकते" "अहिंसा की जडें प्रेम में है न कि घृणा में। यही तक कि गाँधी के असहयोग की जडें प्रेम थी न कि घृणा में। " भारतीय दर्शन 'जीव दया या भूत दया' से वे अनुप्रेरित थे। इसी तरह उन्हें इसाई धर्म का यह वाक्य भी स्मरण था, "अपने शत्रु से प्रेम करो, उन्हें आशीर्वाद दो जो तुम्हें अभिशाप दे रहे हैं, जो तुम्हें घृणा करते हैं, उनके लिए अच्छा करो। " सबको अपने समान समझें (आत्मवत् सर्वभुतेशु जैसा कि हमने महान ग्रन्थों में लिखा है और यही अहिंसा का आध्यात्मिक स्वरूप है।

जैसा कि हिंसा की अपनी तकनीक है। अहिंसा की भी अपनी तकनीक है। गाँधी ने अहिंसा के पाँच सरल सूत्र बनाऐं हैं -

1. अहिंसा में रच शुद्धिकरण निहित है जैसा कि मनुष्य के लिए सम्भव है।
2. अहिंसा की ताकत हर व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर करती है न कि अहिंसक व्यक्ति- की हिंसा चोट करने की इच्छा में।
3. अहिंसा बिना अपवाद के हिंसा से सर्वोपरि है।
4. अहिंसा में हार जैसी कोई चीज नहीं है। हिंसा का अन्त वाकई हार है।
5. अहिंसा का अन्तिम परिणाम अवश्यमभावी विजय है।

फिर भी, गाँधी का अहिंसा की तकनीक विकसित करने में योगदान है न कि इसकी खोज करने में। उनके अनुसार सत्य एवं अहिंसा उतने ही पुराने हैं जितने पुराने पर्वत हैं। लेकिन गाँधी ने अहिंसा को समाज बदलने में लागू किया। इसलिए अहिंसा समाज को बदलने का एक गतिशील हथियार बन गया। उनके अनुसार हिंसा के माध्यम से किसी वास्तविक समाज परिवर्तन का विचार, एक गलत धारणा है। यथार्थ में सामाजिक बदलाव से तात्पर्य है - हमारे मूल्यों, विचारों, विचारधाराओं में बदलाव से है। यह नासमझी है की हम किसी व्यक्ति के विचारों को बाहरी भौतिक ताकत के बल पर बदलने की बात सोचें। वास्तव में शारीरिक या भौतिक शक्ति में प्रतिक्रिया की रचना होती है और इसके परिणाम विपरीत प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि जितनी अधिक हिंसा होगी, उतनी ही कम क्रान्ति होगी।

हिंसक क्रान्तियों के खतरों से इतिहास भरा है। बिना अहिंसा के कोई शान्ति और कोई प्रगति और विकास नहीं होता। हिंसक क्रान्ति के बाद शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित हो जाती है जैसा कि फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् वह नेपोलियन के हाथों में चली गई। ऐसी क्रान्ति से शक्ति जनता के हाथों में नहीं आती। साथ ही इस प्रकार की क्रान्ति में जनभागीदारी बड़े पैमाने पर वहीं हो पाती। हिंसक क्रान्ति, विपरीत क्रान्ति या काउन्टर-रिवोल्यूशन पैदा करती है। कभी समाप्त नहीं होता। अहिंसक क्रान्ति में बच्चे, बड़े, महिलाऐं भाग ले सकते हैं जैसा कि अहिंसक सत्याग्रह होता है। अत: अहिंसक क्रान्ति सर्वोत्तम, त्वरित एवं सुरक्षित मार्ग है और यह सफलता का सुनिश्चित मार्ग है। ओर हिंसा से कुछ भी स्थायी, कुछ भी अच्छा परिणाम हासिल नहीं किया जा सकता है।

अहिंसा को आधार बनाकर गाँधी ने सत्याग्रह का विज्ञान विकसित किया जिसमें सिविल डिसऑबीडियन्स अर्थात् सरकार की अनुज्ञा, असहयोग, हड़ताल, पिकेटिंग, उपवास, कर न देने का आदि शामिल है। सत्याग्रह का अपना अनुशासन होता है। यह युद्ध से भी अधिक शक्ति रखता है। इसके लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों से सम्पन्न नया नेतृत्व चाहिए। यह व्यक्ति एवं समाज को बदलने का अमोध अस्त्र है। हृदय परिवर्तन, विचार-परिवर्तन एवं परिस्थिति को बदलने का सही मार्ग है।

15.4 वर्तमान सन्दर्भ मे गाँधीवादी अहिंसा की प्राथमिकता

अशान्ति और सैनिक खतरों से घिरी आज की दुनियाँ में यह हर कोई जानता है कि युद्ध के परिणाम मानवता का विनाश होता है। ऐसे समय की उथल-पुथल में गाँधी ने एक सरल, ' एवं आश्वस्त करने वाला सन्देश दिया- यह सम्भव है कि किसी मैत्री एवं शान्ति के वातावरण में लोग बड़े पैमाने पर हिंसा के बावजूद, शान्ति स्थापना के सक्रिय प्रयासों से टेक्नोलॉजी और सुख-सुविधाओं का संसार 'बसाना' सभ्य समाज ने सम्भव बनाया है।

गाँधी ने सब प्रकार के पेचीदा संकटों सवालों के समाधानों के उत्तर उपलब्ध कराये हैं। गाँधी अपने सत्य और अहिंसा के फार्मूलों का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में पहले ही कर चुके थे जहाँ उन्होंने सटीक तरीके से शोषण और काले रंग के प्रति भेदभाव के खिलाफ आवाज बुलन्द की थी। उसके बाद भारत में आकर उन्होंने आजादी हासिल करने का बिगुल भी इन्हीं पद्धतियों के माध्यम से बजाया। जब मानवतावाद के सिद्धान्त पर हथियारों के विनाशकारी हमले हो रहे थे, उन्होंने शान्ति का पैगाम दिया। गाँधी की कोशिशों का परिणाम था कि उन्हें सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का आध्यात्मिक एव नैतिक तरीकों से समाधान खोजने की दिशा में मान्यता मिली। उनका दृढ मत था कि राजनीति बिना नैतिक सिद्धान्तों के अधूरी है। अनेक बाधाओं और नियम परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष करने और भारत को आजादी दिलाने का शान्तिप्रिय साधनों से कार्य शुरू किया। उनके प्रयास आगे बढे और वे आजादी की इस शान्तिपूर्ण जंग में सर्वाधिक लोकप्रिय नेता बन गये।

अहिंसा को आधार बनाकर उन्होंने सत्याग्रह के विज्ञान के सहारे सविनय अवज्ञा आन्दोलन, हड़ताल, पिकेहट, उपवास, स्वयं का पवित्रीकरण, कर न देने आदि के अभियान चलाये। वे मानते थे कि यदि इरादे नेक हैं तो सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है। गाँधी के

असहयोग के पीछे घृणा और द्वेष के बजाय प्रेम और शान्ति थी। उनके संघर्ष में शारीरिक क्षमता के बजाय दृढ-इच्छा शक्ति का सम्बल था। वे मानते थे कि हिंसा, वास्तव में आदमी के भीतर दुर्बलता के एहसास की अभिव्यक्ति है। जब दिल साफ है, इरादा नेक है तो वहाँ डर नहीं होता। जीवन अनमोल उपहार है और जब कोई अपने जीवन का होम करने का इरादा लेकर चलता है तो उसके सामने कठोर हृदय भी पिघलने लगते हैं और अज्ञान का अँधेरा छँटने लगता है।

अहिंसा के रास्ते तनाव, संघर्ष एवं वेमनस्य को समाप्त करने की व्यूहरचना में सर्वप्रथम हिंसा के डर के माहौल को बदलने का होता है। ऐसा करने से तनाव का स्तर गिरता है और एक दूसरे पक्ष के बीच बातचीत का मार्ग खुलता है और लोग यथार्थ को समझने के करीब आते हैं। इस प्रक्रिया से तनाव को जकड़ और ढीली पडती है।

गाँधी की अहिंसा का मार्ग कीटों भरा जरूर है लेकिन समस्याओं के समाधान का यह सफल एवं श्रेष्ठ मार्ग सिद्ध हो चुका है। अहिंसा की राह पर आगे बढ़ने का पहला कदम यह है कि दैनिक जीवन में सत्य, विनय, सहनशीलता एवं प्रेम भरी दया जैसी बातों को जीवन में ढाला जाये। दूसरी बात यह है कि अहिंसा को ठीक मान लेने मात्र से ही काम नहीं चलता। यह अहिंसा में विश्वास, बुद्धिमतापूर्वक एवं रचनात्मक होना चाहिए।

दरअसल, अहिंसा झूठा दिखावा या कायरता नहीं है और न ही इनका सुरक्षा-कवच या शिल्ड है। इसमें कहीं मिलावट नहीं होती। पूर्ण निःस्वार्थ होकर कदम न बढाया जाये तो अहिंसा के रास्ते आगे बढ़ना मुमकिन नहीं होता। अहिंसा की राह में मस्तिष्क की ताकत के बजाय हृदय की ताकत की जरूरत होती है। इसमें भावना का स्पर्श चाहिए। वर्तमान की समस्याओं पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट है कि इनके समाधान के लिए गाँधी की अहिंसा का माध्यम सर्वोत्तम एवं प्रासंगिक है। धैर्य, सभी कोशिश, बिना स्वार्थ-भाव के आपसी बातचीत एवं बिना तनाव के आपसी बातचीत एवं बिना तनाव के समस्याओं का समाधान सरलता से किया जाना मुमकिन है।

15.5 सारांश

जैसा कि हम जानते हैं कि गाँधी केवल सामाजिक एवं राजनीतिक नेता ही नहीं थे बल्कि वे एक सक्रिय व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय आजादी के आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप दिया। उन्होंने भेदभाव, साम्राज्यवाद, अन्याय, अत्याचारों एवं शोषण के खिलाफ बगावत की। उन्होंने आमजन की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक बेडियों के बंधनों से मुक्त करने के लिए भी संघर्ष किया।

यों तो हर देश में अहिंसा के सिद्धान्त के महत्व को समझा जाने लगा है अपनाया जाने लगा है लेकिन गाँधी तो अहिंसा के पुजारी थे - बहुत विशेष व्यक्तित्व थे और उन्होंने तो सत्य, प्रेम. और अहिंसा के सन्देश का व्यापक प्रसार करने की प्रक्रिया में अपना जीवन तक कुर्बान कर दिया। गाँधी ने स्वयं अपने जीवन में अहिंसा की शिक्षा का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। यही तक कि एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका ने गाँधी की महानता को इन शब्दों में दर्शाया है- ' 'गाँधी उन कुछेक व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अपने विचार की अमिट छाप छोड़ी है। गाँधी का

यह विचार उनकी अहिंसा का विचार था। 'इतिहास लेखकों ने भी गाँधी ' महानता को स्वीकारते हुए कहा है - 'भारतीयों ने अपनी आजादी की लडाई के दौरान दो शक्तिशाली हथियार पाये - एक अति योग्य नेता - जो नया हथियार पाया वह गाँधी ने सुझाया था - उनके शक्तिशाली नेतृत्व ने सौंपा था - यह हथियार - अहिंसा थी। "

गाँधी ने जो साधन हाथ में लिया और जिसका इस्तेमाल किया वह, आदमी के द्वारा विनाश के सर्वाधिक ताकतवर हथियार से भी ताकतवर हथियार था। उनका मानना था कि अहिंसा को अपना कर व्यक्ति बडे से बडा काम कर सकता है। गाँधी का मानना था कि यदि सत्य और अहिंसा में व्यक्ति की आस्था अठल है और वह निरन्तर प्रयासरत रहता है तो ऐसा कोई कार्य नही है जो कि वह कर नही सकता। गाँधी की अहिंसा, विश्वव्यापी सिद्धान्त है। इसकी प्रासंगिकता कल भी थी और आज भी है। भविष्य में भी इसकी प्रासंगिकता कायम रहेगी।

समाज के संघर्षों के निदान का यह शक्तिशाली उपकरण है। इसके परिणाम इसके ठीक लागू करने एवं इसकी समझ पर निर्भर है। आज के विश्व-परिदृश्य का विश्लेषण करें तो अहिंसा रास्ते आगे बढ़ना और अहिंसा के रास्ते आगे बढ़ना और अहिंसा में अपनी समस्याओं एवं संकटों का हल खोजने के संदर्भ मे अहिंसा का महत्व एवं उपयोगिता स्पष्ट नजर आती है। आज की हिंसा से घिरी दुनियाँ की ' का सामना करने मे सर्वोत्तम सम्बल है - 'अहिंसा'।

गाँधीजी ने प्रतिरोध के लिए एक नैतिक व मूल्यवान साधन प्रदान किया है। यह कहना शायद सही है कि सत्याग्रह गाँधी द्वारा प्रस्तुत अहिंसा दर्शन का क्रियात्मक पहलु है जो अपने मूल " कुछ निश्चित नैतिक या आध्यात्मिक सिद्धान्तों को स्वीकारता है। इसकी शक्ति पर गाँधी को इतना विश्वास कि वे इसे व्यक्ति द्वारा अकेले या समूह में सामना करने वाले विविध संघर्षों का शान्तिपूर्ण तरीके से की सम्भावना या क्षमता रखने वाले साधन के रूप में स्वीकारते हैं। सत्याग्रह अपने प्रयोगकर्ता के नैतिक उन्नयन के साथ-साथ विरोधी को भी प्रेरित करती है कि वह स्वैच्छिक रूप से अन्याय और बुराई को त्याग दें। प्रकार सत्याग्रही और विरोधी दोनों ही सत्याग्रह के स्वीकार करने तथा संघर्षों के समाधान के पश्चात् बेहतर अस्तित्व स्तर पर पहुँचते हैं। जन चेतना जाग्रत करने, अनुशासित कर आत्म-पीड़न के लिए साहस करने में सत्याग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधीजी के चिंतन में सत्य की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है ' उनके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि और मानव अस्तित्व का मूल सत्य है। उनके लिए सत्य की खोज ही जीवन लक्ष्य है और व्यक्ति द्वारा अपने अनुभव पर प्राप्त सत्य पर चलना ही उसका धर्म है। गाँधीजी इस बात पर बल देते थे कि सत्य केवल अहिंसक और नैतिक साधनों के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है। उपर्युक्त सोच आधर पर स्थिर रह कर अन्याय और अत्याचार का विरोध करना ही सत्याग्रह है। गाँधीजी के द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह दर्शन में परम्परागत नैतिक मूल्य केवल व्यक्ति विशेष के लिए आध्यातमिक प्रगति का साधन न होकर सम्पूर्ण समाज की प्रगति का साधन बना। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह संघर्ष-समाधान का अहिंसक प्रतिरोध है जो संघर्ष से लिप्त सभी पक्षों और समाज को प्रगति की ओर ले जाने की सोच रखता है। इसका प्रयोग सार्वभौम रूप से किया जा सकता है काई भी व्यक्ति जो सत्य और नैतिक मूल्यों के प्रति सच्ची आस्था रखता हो वह इसका सफल प्रयोग कर संघर्षों का शान्तिमय और प्रभावी समाधान ढूँढ सकता है। उपर्युक्त आधर पर कहा जा सकता है कि गाँधीजी का सत्याग्रह दर्शन

उनके द्वारा राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान है। यह व्यक्तियों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक अच्छे समाज, राष्ट्र व विश्व का निर्माण करने की असीम सम्भावना रखता है।

15.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी के अहिंसा पर विचारों का वर्णन कीजिए। उनका महत्त्व क्या है?
2. अहिंसा से आप क्या समझते हैं? क्या वह आज भी प्रासंगिक है?
3. गाँधी की अहिंसा सम्बन्धित विचारों के उद्भव या क्रमिक विकास पर एक विस्तृत लेख लिखें।
4. अहिंसा के प्रकार पर गाँधी के विचारों का वर्णन कीजिए।
5. अहिंसा पर गाँधी के विचारों का पोषण करने वाले विभिन्न प्रभावों की चर्चा कीजिए।
6. गाँधी ने अहिंसा के जिन सरल सूत्रों की विवेचना की है उनका वर्णन कीजिए।

15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी एम.के. फ्रोम यरावदा मंदिर नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1999
2. गाँधी एम.के. सत्याग्रह इन साऊथ अफ्रीका नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1995
3. गाँधी एम.के. साल्ट सत्याग्रह नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1959
4. कृपलानी जे.बी., गाँधी हिज लाईफ एण्ड थोट, प्रकाशन अनुभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1970
5. प्रभू आर.के. एण्ड राव, दी माइन्ड ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1996
6. उम्मन, टी.के., प्रोटेस्ट एण्ड चेंज स्टडीज इन सोशल मूवमेंट्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990
7. कुमार बी. अरूण, गाँधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2008
8. चटर्जी, मारग्रेट, गांधी एण्ड द चैलेंज ऑफ रिलिजियस डाइवर्सिटी, प्रोमिला - कम्पनी, प्रकाशक नई दिल्ली, 2005
9. वेबर थॉमस, गांधी एज डिसीप्लिन एण्ड मेन्टोर, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007
10. रोलैण्ड रोमन, महात्मा गाँधी, रूपा - कंपनी, नई दिल्ली, 2007

ISBN 13/978-81-8496-379-3